रूखी ज़मीन पर हरियाली

(श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के मैथिली उपन्यास ‘मौलाएल गाछक फूल’ का हिंदी अनुवाद)

मौलाएल गाछक फूल

मैथिली उपन्यास

जगदीश प्रसाद मण्डल

रूखी ज़मीन पर हरियाली

हिंदी अनुवाद

प्रो. (डॉ.) भवानन्द मिश्र

रूखी ज़मीन पर हरियाली

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिंदी अनुवाद

प्रो. (डॉ.) भवानन्द मिश्र

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

ROOKHI ZAMEEN PAR HARIYAALI, *the Hindi translation of Shri Jagdish Prasad Mandal's acclaimed Maithili novel Maulayal Gachhak Phool, adds another steady light to the wide literary horizon shaped by this distinguished author. Translated with care by Prof. (Dr.) Bhawa Nand Mishra, the book preserves Mandal's enduring bond with Mithila's soil, its people, and the inner pace of their lives.*

The novel traces the subtle struggles, muted longings, and quiet hopes that sustain everyday existence. It shows how even the driest stretches of life hold the faint but resilient promise of growth. Through its unfolding world, Mandalji reveals the shifting values, moral crossroads, and human ties that define rural experience.

Dr. Mishra's translation keeps the original's earthy resonance intact. The language moves gently, with an unforced poetic depth, allowing each scene to open toward reflection as well as realism. Every chapter holds a measured balance between hardship and the steady search for renewal.

As with all of Mandal's writings, this novel affirms his faith in human dignity and his compassionate attention to truth. It draws the personal and the collective into quiet harmony, reminding us that even barren ground carries within it the possibility of green.

Published by: Pallavi Prakashan
Tulsi Bhawan, Nehru Marg, Ward no. 06, Nirmali, District- Supaul, Bihar: 847452

First Edition: 2025
ISBN: A/F
Price: 499/-
Copyright: © Publisher

Printed by: Manav Art (Pallavi Prakashan)
Typography: Dr. Umesh Mandal, umeshberma@gmail.com
Cover Design: Mrs. Poonam Mandal, Nirmali, Supaul, Bihar- 847452

Website: http://pallavipublication.blogspot.com
E-mail: pallavi.publication.nirmali@gmail.com
Mobile: +91 99316 54742, +91 62006 35563
Font source: https://fonts.google.com/,
https://github.com/virtualvinodh/aksharamukha-fonts

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the prior written permission of both the author and the publisher.

समर्पण

मिथिला की पुण्य भूमि से नवप्रभात की पुकार लाने वाले- वे श्रमशील हाथ और संघर्षशील आत्माएँ, जिन्होंने अपने पसीने और तप से मानवता को जय का पथ दिखाया- यह कृति उन्हीं कर्मयोद्धाओं को सादर समर्पित है।

अनुवादक की अनुभूति

'रूखी ज़मीन पर हरियाली' उपन्यास की शुरुआत सूखे की भयावह छाया से होती है, एक ऐसा दृश्य जहाँ धरती प्यास से फटी पड़ी है, कुएँ और पोखर सूख चुके हैं, और हवा में धूल और निराशा घुली हुई है। यह सूखा सिर्फ प्रकृति की क्रूरता नहीं है, बल्कि उस असंतुलित व्यवस्था का संकेत है जिसने मनुष्य और मिट्टी, दोनों को निर्जीव बना दिया है।

लेखक ने इस चित्रण को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है, जो पाठक को सीधे उस भूखे और थके हुए समाज के बीच पहुँचा देता है, जहाँ बच्चे रोटी के लिए रो रहे हैं और स्त्रियाँ अपने घर के बर्तन तक गिरवी रख रही हैं। बालक बौएलाल का यह वाक्य- "माँ, भूख से प्राण निकल रहे हैं", पूरे युग की विवशता को समेटे हुए है। यह संवाद मात्र एक बच्चे की करुण पुकार नहीं है, बल्कि उस सामाजिक तंत्र की असफलता का प्रमाण है जिसने जीवन का आधार ही छीन लिया है।

इस गहन संकट के बीच भी लेखक ने आशा का एक बीज खोज निकाला है। रामाकान्त द्वारा सूखे पोखर को पुनः भरना मात्र जल-संरक्षण का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह मानवीय उत्तरदायित्व और सामूहिक शक्ति की पुनर्स्थापना का संकेत है। यही वह क्षण है, जब उपन्यास अपनी सामाजिक चेतना की पराकाष्ठा को छूता है।

कथानक में आगे बढ़ते हुए हम देखते हैं कि शशि नामक पात्र, जब शिक्षक बनने की आकांक्षा से साक्षात्कार देता है, तब उसे अपनी योग्यता के बावजूद रिश्वत के दलदल से होकर गुजरना पड़ता है। यह प्रसंग व्यवस्था की जर्जरता को उजागर करता है और यह स्पष्ट करता है कि सुधार अब कोई विकल्प नहीं, बल्कि एक अनिवार्यता बन चुका है।

'रूखी ज़मीन पर हरियाली' केवल गरीबी और अभाव की कथा नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की दृढ़ता और उसके भीतर छिपी पुनर्निर्माण की शक्ति की गाथा है। स्वतंत्रता संग्राम की स्मृतियाँ, गाँव में विद्यालय निर्माण का सामूहिक संकल्प, वृद्धा द्वारा अपनी भूमि का दान, और शिक्षकों का स्वेच्छा से समाजसेवा में लगना, ये सभी घटनाएँ इस उपन्यास को एक जीवंत समाज-परिवर्तन के दस्तावेज में परिवर्तित कर देती हैं।

जगदीश प्रसाद मण्डल ने मिथिला की धरती से उपजे इस कथानक को यथार्थ की गर्म मिट्टी में रोपकर मानवीय संवेदना की हरियाली उगाई है। उनका दृष्टिकोण सिर्फ ग्रामीण जीवन का चित्रण नहीं है, बल्कि उसकी आत्मा की पुनर्खोज है। लेखक के यहाँ समाज, शिक्षा, श्रम और आस्था एक-दूसरे में घुल-मिलकर जीवन का सम्पूर्ण अर्थ रचते हैं।

रामाकान्त का चरित्र इस रचना की आत्मा है। उन्होंने अपनी दो सौ बीघा ज़मीन जरूरतमंदों में बाँट दी, और उनके डॉक्टर पुत्रों ने ग्रामीणों को नि:शुल्क चिकित्सा देने का संकल्प लिया। यह परिवार उस मानवीय धारा का प्रतिनिधित्व करता है, जो व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर समाजसेवा को जीवन का उद्देश्य मानती है।

सुबुध और हीरानन्द जैसे शिक्षकों के माध्यम से लेखक ने शिक्षा को परिवर्तन की सबसे प्रभावशाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। सुबुध निर्धनों को शिक्षित करने के लिए नौकरी छोड़ देते हैं, जबकि हीरानन्द जातिगत भेदभाव से आहत होकर समाज में समरसता की आवश्यकता पर बल देते हैं। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास शिक्षा, नैतिकता और सामाजिक सुधार की एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

महिलाओं का चित्रण इस कृति का एक अन्य सशक्त पक्ष है। सोनेलाल की पत्नी की बीमारी, घरेलू संघर्ष और उपचार की विवशता के प्रसंग मिथिलांचल की स्त्रियों की श्रमशीलता और सहनशीलता को नई संवेदना के साथ उभारते हैं। लेखन में भांग, ब्रांडी, ओझा और हकीम जैसे स्थानीय जीवन के तत्व जिस ईमानदारी से प्रस्तुत हुए हैं, वही इसे यथार्थ के धरातल पर जीवंत बनाए रखते हैं।

'रूखी ज़मीन पर हरियाली' जाति, वर्ग और भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक विकारों का निडर प्रतिरोध करती है। यह उन मूल्यों की पुनर्स्थापना की आकांक्षा रखती है जो समानता, न्याय और मानवीय गरिमा पर आधारित हैं। इसमें भौतिक सफलता की अपेक्षा आत्मबल, आत्मप्रेरणा और सेवा की भावना को प्रतिष्ठा दी गई है। यही कारण है कि यह रचना केवल एक कथा न रहकर, एक जीवंत समाज-दर्शन में परिवर्तित हो जाती है।

मैथिली भाषा में रचित इस उत्कृष्ट कृति का हिंदी में अनुवाद मेरे लिए भावनात्मक और सांस्कृतिक, दोनों स्तरों पर एक गहरी जिम्मेदारी रहा। मैंने अनुभव किया कि इस रचना की संवेदना, इसकी जनपक्षधरता और सामाजिक दृष्टि हिंदी पाठकों तक पहुँचना आवश्यक है। यह अनुवाद इस उद्देश्य से किया गया कि दोनों भाषाओं के पाठक एक साझा चेतना के सेतु पर मिल सकें, जहाँ साहित्य मात्र शब्द न रहकर जीवन का अनुभव बन जाए।

मुझे विश्वास है कि यह हिंदी रूपांतरण पाठकों को न सिर्फ छुएगा, बल्कि भीतर कुछ बदलेगा। यह उपन्यास हमारे समय का दर्पण है, भूख और आशा, संघर्ष और करुणा, सेवा और विद्रोह का वह अद्भुत संतुलन, जो मनुष्य की असली पहचान बनता है।

'रूखी ज़मीन पर हरियाली' मात्र पढ़ने की वस्तु नहीं, बल्कि आत्मसात करने योग्य अनुभव है। यह हमें याद दिलाती है कि धरती चाहे कितनी भी रूखी क्यों न हो, यदि मनुष्यता की जड़ें जीवित हैं, तो हरियाली अवश्य लौटेगी।

- प्रो. (डॉ.) भवानन्द मिश्र

सहरसा,

छठ पूजा, 2025

मो.: +91 87891 78991

1.

दो वर्ष की लगातार अनावृष्टि के बाद की तस्वीर अत्यंत भयावह थी। दिन हो या रात, हर घड़ी गर्मी का प्रकोप एक-सा बना रहता। लोग पूरी रात पंखा झेलकर समय काटते और आधी रात में बार-बार उठकर पानी पीते। सुबह होते ही सूर्य अपनी उग्रता के साथ धरती पर उतर आता, मानो कोई दुश्मन हमला करने आ गया हो। सूरज जैसे सबके दरवाज़े पर पहुँच गया था।

रास्तों और पगडंडियों की मिट्टी सूखकर सीमेंट जैसी सख़्त हो गई थी। चलते समय पैर फिसलते रहते। कुएँ और पोखरों का पानी अपनी अस्मिता बचाने के लिए धरती के गर्भ में समा गया। दो वर्षों से एक भी बूँद वर्षा न होने के कारण धरती की सुंदरता धीरे-धीरे नष्ट होने लगी।

पानी की कमी से घास पांडु रोग-सी पीली पड़कर झरने लगी। पेड़-पौधे बेरंग हो गए। बेल, अनार, नारियल जैसे फलदार वृक्ष सूखने लगे। आम, जामुन, गमहारी, शीशम जैसे वृक्षों के नीचे पत्तों का ढेर लग गया।

सुबह दस बजे से ही बाध में लू चलने लगती। धरती पर बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जातीं और उसकी रूपरेखा ही बदल जाती। लोग चिंतित होकर आपस में यही कहते, क्या खाएँ, क्या पिएँ, कैसे जिएँ? घास-पात और चारे की कमी से जानवर भी सुखकर हड्डी जैसे हो गए। भारी संख्या में लोग मरे। इस अवसर का फायदा उठाकर रोग-व्याधियाँ भी विकराल हो उठीं। मवेशियों से लेकर मनुष्यों तक की जान आफ़त में पड़ गई।

खेती पूरी तरह चौपट हो गई, जिससे लोग थाली-लोटा बंधक लगाकर मोरंग, दिनाजपुर, ढाका की ओर पलायन करने लगे। किसानों की जो दशा हुई, वही मजदूरों की भी रही। लोग भारी संख्या में इस आशा में कबुला करने लगे कि शायद कभी इन्द्र भगवान दया करें।

तीन दिन से अनूप के घर में चूल्हा नहीं जला था। नल-दमयंती की तरह पति-पत्नी अनूप और रधिया दुःख के पहाड़ तले एक-दूसरे का मुँह टुकुर-टुकुर

ताक रहे थे। किसी में कुछ कहने का साहस नहीं था। बारह वर्षीय बेटा बौएलाल बिस्तर पर पड़ा माँ से बोला- “माँ, भूख से प्राण निकल रहे हैं। पेट में बगहा लग गया है। अब नहीं जी पाऊँगा।”

बेटे की बात सुनकर रधिया और अनूप दोनों की आँखों में आँसू आ गए। मुँह से शब्द जैसे ग़ायब हो गए। पास बैठी रधिया उठी, बाल्टी-लोटा हाथ में लिया और कुएँ की ओर चल पड़ी।

कुएँ का पानी नीचे सरक गया था, जिससे बाल्टी की रस्सी छोटी पड़ गई। जितना भी झुककर रधिया पानी खींचने की कोशिश करती, बाल्टी ऊपर ही रह जाता। उसके मन में आया, जब बुरा समय आता है तो ऐसे ही कुसंयोग होते हैं। बौएलाल अब नहीं बचेगा। पाँच संतानों में से एक पिहुआ बचा है, अब यह भी चला जाएगा। हे भगवान, किस जन्म के पाप का दंड दे रहे हो?

कुएँ से बाल्टी निकालकर उसने घाट पर रख दिया और रस्सी लाने के लिए घर लौट आई। रधिया का निराश चेहरा देखकर अनूप ने पूछा- “क्या हुआ?”

टूटे स्वर में रधिया बोली- “क्या होगा! जब विधाता का ही डंडा पड़ा है, तो क्या कर सकते हैं। रस्सी छोटी पड़ गई है, उसी के लिए आई हूँ।”

उसकी बात सुनकर अनूप ने ओसारे की बंधन खोली और रस्सी थमा दी। रस्सी जोड़कर रधिया फिर कुएँ पर गई और किसी तरह पानी भर लाई। लोटे में पानी लेकर आँगन में आई और बौएलाल को पीने को कहा।

बौएलाल इतना दुर्बल हो चुका था कि बिस्तर से उठ भी नहीं पा रहा था। ओसारे पर लोटा रखकर रधिया ने उसे बाँह पकड़कर उठाया और बिठाया। फिर अपने हाथों से लोटे से पानी लिया और बेटे की आँख-मुँह पोंछा। बौएलाल का शरीर थरथर काँप रहा था। यह देख रधिया का भी शरीर काँप उठा। उसने लोटा बेटे के मुँह से लगाने की कोशिश की ही थी कि उसके काँपते हाथों से लोटा गिर पड़ा और सारा पानी ज़मीन पर बह गया।

दोनों हाथों से छाती पीटती हुई रधिया जोर से चीख उठी- “अब बौएलाल नहीं बचेगा! जो घड़ी है, जो पहर है!”

रधिया की बातें सुनकर अनूप फफककर रो पड़ा। उसकी कराह सुनते ही

टोले के बच्चे, बुज़ुर्ग और रिश्तेदार एक-एक कर घर की ओर आने लगे। सबके मुँह सूख गए थे। कौन किसे शब्दों से ढाढ़स बँधाए, सबकी हालत एक जैसी थी।

अनूप की आवाज़ सुनकर उसकी ममियौत बहन रूपनी अपने आँगन से चिल्लाती हुई दौड़ी आई। बौएलाल को देखकर उसने कहा- "भैया, बच्चे के शरीर में अभी प्राण हैं। व्यर्थ में तुम दोनों क्यों रो रहे हो? जब तक साँस है, उम्मीद है। चुप हो जाओ, चुप हो जाओ।"

इतना कहकर रूपनी ने बौएलाल को समेटकर अपनी गोद में बिठा लिया और उसकी ललाट सहलाने लगी। कुछ ही देर में बौएलाल ने आँखें खोलीं और धीमे स्वर में बोला- "दीदी, भूख से पेट में बगहा लग गया है।"

बौएलाल की यह बात सुनकर रूपनी ने पूछा- "रोटी खाओगे, बेटा?"

सिर हिलाते हुए बौएलाल ने उत्तर दिया- "हाँ।"

उसकी 'हाँ' सुनते ही रधिया भीतर गई और फूलही वाला वह लोटा निकाल लाई जो उसे पिता ने विदाई में दिया था। उसने लोटा अनूप को थमा दिया। अनूप लोटा लेकर दुकान की ओर दौड़ा। दुकान में लोटा बेचकर उसने गेहूँ खरीदा और लौट आया।

आँगन में पहुँचते ही रधिया ने हड़बड़ी में चूल्हा जलाया और गेहूँ भूनने लगी। भूने हुए गेहूँ को दोनों ने मिलकर जाता में पीसा। जैसे ही एक रोटी लायक आटा तैयार हुआ, रधिया ने उसे समेटकर चूल्हे पर डाल दिया। बाकी गेहूँ अनूप अकेले ही पीसता रहा।

रोटी पकाकर रधिया बौएलाल के पास गई। बौएलाल में खुद से तोड़कर खाने की ताकत नहीं थी। रधिया छाती दबाकर धीरे-धीरे उसके मुँह में रोटी डालने लगी। पूरी रोटी उसने खा ली। रोटी खाते-खाते उसमें थोड़ी ताकत लौट आई। उसने खुद लोटा उठाया और पानी पी लिया। लेकिन पानी पीते ही हाँफने लगा और ज़मीन पर मुँह के बल लेट गया।

रधिया ने बचा हुआ आटा समेटा और चूल्हे के पास जाकर सूप में गूँधने लगी। अनूप ने अपनी जाँघ पर गिरे आटे को गमछे से झाड़ा, वहाँ से उठकर बाल्टी-लोटा लेकर कुएँ की ओर चला गया। कुएँ पर हाथ-पाँव धोकर उसने लोटे में पानी भरा और आँगन में आकर खाने बैठ गया।

रधिया छिपली में रोटी और नमक-मिर्च लेकर आई और अनूप के सामने रख दिया। भूखे अनूप को तो ऐसा लगा जैसे वह पूरी रोटी एक ही बार में मुँह में भर ले, लेकिन उसने खुद को रोका और टुकड़ों में खाने लगा। रोटी खत्म होने पर वह बार-बार रधिया की ओर देखता रहा, लेकिन रधिया तीन रोटियाँ पका कर कोठी पर आटा रख आई थी। रधिया की ओर देखते हुए अनूप चुपचाप दो लोटा पानी पीकर उठ गया।

दिन चढ़ते ही नथुआ दौड़ता हुआ आया और हँसते हुए अनूप से बोला- "गिरहत काका बड़े पोखर को उराहेंगे। कल से काम शुरू होगा। मजूरी मिलेगी। तुम दोनों भी चलना।"

नथुआ की बात सुनकर रधिया का मन जैसे सोने की अशर्फी पा गया हो। उसका चेहरा खुशी से खिल उठा। अनूप के चेहरे पर भी मुस्कान आ गई। यह देखकर नथुआ फिर बोला- "अपने मुसना काका मेटगीरी करेंगे, वही सबकी हाजिरी बनाएँगे।"

नथुआ, अनूप और रधिया के बीच बातचीत चल ही रही थी कि तभी मुसना भी हड़बड़ाता हुआ पहुँच गया। उसे देखते ही नथुआ खुशी से बोला- "देखो, मुसना काका आ ही गए! अब सारी बात साफ हो जाएगी।"

मेटगीरी मिलने से मुसना का मन गदगद था। उसने पहले कभी मेटगीरी नहीं की थी, लेकिन गाँव के बाँध और सड़कों पर मेटों की कमाई और रौब उसने देख रखे थे। यही वजह थी कि वह भीतर से बेहद उत्साहित था। मन ही मन वह सोच रहा था, जिसे चाहेगा, काम पर रखेगा; जिसे न चाहेगा, हटा देगा। यह तो उसके अधिकार के भीतर का काम होगा। जिसे पसंद करेगा, उसकी हाजिरी ज़्यादा भर देगा। आखिर पावर तो पावर होता है। अगर ताक़त मिल जाए और उसका इस्तेमाल न किया जाए, तो उसका मतलब ही क्या? अगर वो भी बाकी मेटों की तरह ही रहा, तो फिर मुसना औरों से अलग कैसे कहलाएगा? लोग क्या कहेंगे?

मुस्कराते हुए मुसना अनूप से बोला-

"भैया, कल से बड़े पोखर पर काम शुरू हो जाएगा। तुम भी चलना। दिनभर की मजूरी में दो सेर धान और एक सेर मड़ुआ मिलेगा। इतना बड़ा पोखर

है कि महीनों तक चलता रहेगा। सुन रहा हूँ कि दूसरे गाँव के लोग भी आने वाले हैं, लेकिन उन्हें हम मिट्टी नहीं काटने देंगे।"

मुसना की बात सुनकर बौएलाल फुड़फुड़ाकर उठ बैठा और बोला- "काका, मेरी भी गिनती कर लीजिए। मैं भी मिट्टी काटने जाऊँगा।"

मुसना ने मुस्कराकर कहा- "ठीक है बेटा, तुम तीनों चलना। यह मेरे हाथ का काम रहेगा। भाभी को दोपहर में खाना बनाने के लिए पहले ही छुट्टी दे दूँगा।"

यह कहकर मुसना और नथुआ वहाँ से चले गए। दूसरे दिन सुबह में, तालाब पर काम शुरू होने से पहले ही चारों गाँव के लोग पहुँच गए। कोई कुदाल-फावड़ा, तो कोई टोकरी लेकर तालाब के किनारे आ धमका। वहाँ भीड़ का मेला लग गया। जितने लोग गाँव के थे, उससे कई गुना ज़्यादा बाहर के लोग पहुँच गए थे।

भीड़ देखकर मुसना पहले तो असमंजस में पड़ गया, फिर अचानक डर और घबराहट से उसका शरीर काँपने लगा। उसके मन में आया, अब मेरी बात कौन सुनेगा? वह सिर पर दोनों हाथ रखकर ज़मीन पर बैठ गया। कुछ सूझ नहीं रहा था, दिमाग सुन्न पड़ गया था। पूरा तालाब गाँव और बाहर वालों से भर चुका था। जगह-जगह लोग कुदाल टिका कर, टोकरी हाथ में लिए मिट्टी काटने को तैयार खड़े थे।

सोचते-सोचते मुसना के मन में आया कि गिरहत काका के पास जाकर सारी बात कह देनी चाहिए। वह उठकर रामाकान्त बाबू से मिलने चल पड़ा।

उधर, तालाब के किनारे गाँव और बाहर के लोगों के बीच खटपट शुरू हो गई। बाहर से आए लोग ऊँची आवाज़ में कहने लगे- "भीख माँगने नहीं आए हैं! वाजिब काम करेंगे और वाजिब मजूरी लेंगे!"

गाँव वाले तैश में बोले- "यह हमारे गाँव का काम है, इसलिए हम ही करेंगे!"

इसी बीच, सुखेत का भुटकुमरा और गाँव का सिंहेसर एक ही जगह मिट्टी काट रहे थे। दोनों में गाली-गलौज शुरू हो गई। शोरगुल इतना बढ़ गया कि किसी की बात कोई सुनने को तैयार नहीं था। बात हाथापाई तक पहुँच गई। दोनों जैसे एक-दूसरे को पटककर छाती पर चढ़ जाना चाहते थे।

पहले भुटकुमरा ने सिंहेसर को पटक दिया, उसका पैर एक गड्ढे में फँस गया था और वह धड़ाम से गिर पड़ा। लेकिन सिंहेसर भी हार मानने वाला नहीं था। उसने हिम्मत जुटाई और उठते ही भुटकुमरा को ज़ोर से धक्का दे दिया। वह भी गिर पड़ा।

इधर रामाकान्त बाबू अपने दरवाज़े पर बैठे धान और मड़ुआ का हिसाब मिला रहे थे। तभी घबराया हुआ मुसना वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर रामाकान्त ने पूछा- “क्या बात है?” मगर मुसना का गला जैसे सूख गया था, कुछ साफ़-साफ़ बोल नहीं पाया। थोड़ी देर बाद बोला- “काका, इतने बाहर के लोग आ गए हैं कि गाँव वालों को जगह ही नहीं मिल रही है। कितना भी मना किया, कोई मानने को तैयार नहीं। ज़रा आप चलकर देखिए न।”

रामाकान्त बाबू ने कागज़-कलम घर में रख दिया और तुरंत चल पड़े। आगे-आगे रामाकान्त और पीछे-पीछे मुसना। तालाब से थोड़ी ही दूरी पर पहुँचे थे कि भीतर से शोरगुल सुनाई देने लगा। रामाकान्त का मन चौंक गया। सोचने लगे- पता नहीं, बाहर वाले मानेंगे या नहीं। अगर काम बंद कर दूँ, तो गाँव वालों की कमाई मारी जाएगी। और अगर चालू रखूँ, तो बाहर वाले मानेंगे या नहीं। इस उलझन में वह बुरी तरह फँस गए। चारों ओर हालात खराव होने लगा।

तालाब के किनारे पहुँचते ही लोगों ने रामाकान्त को चारों ओर से घेर लिया। सब एक साथ बोल पड़े- “अगर काम होगा, तो हम भी करेंगे!”

असमंजस में पड़े रामाकान्त बाबू ने बाहर के लोगों से कहा- “देखिए, यह सूखे का समय है। हर गाँव में काम है और काम करने वाले भी हैं। चलिए, मैं आपके साथ चलता हूँ और वहाँ सबको समझाता हूँ कि हर गाँव के मज़दूरों को उनके ही गाँव में काम मिलना चाहिए।”

इतना सुनते ही बाहर के लोग अपने-अपने कोदारी, छिट्टा और टाला समेटकर लौटने लगे। रामाकान्त बाबू भी उनके साथ चल दिए।

कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने मुसना को इशारे से समझा दिया कि जैसे ही बाहर के लोग चले जाएँ, गाँव के लोगों को तुरंत काम पर लगा देना।

उधर, किसी ने जाकर सिंहेसर की पत्नी को कह दिया कि तालाब पर उसके पति को पटक दिया गया है। यह सुनते ही वह गालियाँ देती हुई अपने

बच्चों के साथ तालाब की ओर दौड़ पड़ी। लेकिन तब तक बाहर के लोग लौट चुके थे और तालाब पर मिट्टी काटने का काम फिर से शुरू हो चुका था।

तीनों, अनूप और उसका परिवार, ने एक ही खत्ता चिन्हित कर मिट्टी काटना शुरू किया। अनूप कुदाल से मिट्टी काटकर टोकरी में भरता और रधिया तथा उसका बेटा बौएलाल सिर पर उठाकर महार पर फेंकते।

दोपहर के बारह बज चुके थे। रामाकान्त बाबू घूमते-फिरते तालाब के पश्चिमी किनारे पर पहुँचे और वहाँ खड़े होकर मजदूरों को देखने लगे। तभी नज़र पड़ते ही मुसना दौड़कर उनके पास आया। मुसना के आने पर रामाकान्त बाबू ने उँगली से बौएलाल की ओर इशारा करते हुए पूछा- "वह कौन है? उसे शाम को मेरे पास भेज देना।"

इतना कहकर रामाकान्त बाबू घर की ओर लौट गए।

बारह वर्षीय बौएलाल को मिट्टी ढोते देख सब हैरान थे। जब तक कोई और एक बार मिट्टी फेंकता, तब तक वह तीन बार फेंक चुका होता। उसका परिश्रम सबका ध्यान खींच रहा था।

बौएलाल का काम देखकर अनूप मन ही मन सोचने लगा कि मजदूरी से अच्छा तो ठेका होता। मगर सोचने से क्या होता। तभी मुसना, रामाकान्त बाबू को छोड़कर लौट आया और अनूप के पास जाकर बोला- "भैया, मालिक ने तुम दोनों को शाम को बुलाया है।"

'मालिक ने बुलाया है' यह सुनकर अनूप का मन खुशी से भर गया। लेकिन खुद को सँभालते हुए उसने मुसना से बस इतना कहा- "जब मालिक ने कहा है, तो ज़रूर मिलेंगे।"

सूरज पश्चिम में ढलने लगा। घूमते-फिरते मुसना फिर अनूप के पास पहुँचा और रधिया से बोला- "भाभी, आप जाइए। आपकी पूरी हाजिरी बना दी है। अब खाना पकाने का समय हो गया है।"

रधिया घर लौट गई। अनूप और बौएलाल काम करते रहे। करीब चार बजे सबने काम छोड़ दिया। घर आकर अनूप और बेटा दोनों नहाकर बैठे। कल ही गेहूँ के आटे की रोटियाँ और अरिकंचन पत्तों की पातौड़ बनाकर चटनी तैयार की गई थी। सबने मिलकर खाना खाया और फिर अनूप, बौएलाल और रधिया

ओसारे पर बैठकर बातें करने लगे।

अनूप ने रधिया से कहा- “भगवान बहुत बड़े हैं। सब पर उनकी नज़र रहती है। देखो, ऐसे कठिन समय में कैसी लीला रच दी।”

बातों ही बातों में अँधेरा हो गया। झलफल होते ही अनूप और बौएलाल रामाकान्त बाबू के घर की ओर चल पड़े। रास्ते भर दोनों के मन में तरह-तरह के विचार आते और चले जाते। फिर भी दोनों का मन भीतर से आनंदित था।

रामाकान्त बाबू दरवाज़े पर बैठे मुसना से काम करने वालों का हिसाब मिला रहे थे। मुसना ने नाम तो कागज़ पर लिखे थे, लेकिन भूलवश अपना नाम रह गया था, इसलिए हिसाब नहीं मिल पा रहा था। दोनों उसी में उलझे थे कि अनूप और बौएलाल वहाँ पहुँचे। अनूप ने दूर से ही दोनों हाथ जोड़कर रामाकान्त बाबू को प्रणाम किया और बिस्तर पर बैठा। बौएलाल ने चरण स्पर्श किया।

बौएलाल को देखकर मुस्कराते हुए रामाकान्त बाबू ने अनूप से कहा- “अनूप, तुम अपना यह बेटा मुझे दे दो।”

यह सुनकर अनूप मन ही मन चकित रह गया- 'यह क्या कह रहे हैं?' कुछ पल चुप रहकर वह बोला- “मालिक, बौएलाल सिर्फ मेरा बेटा नहीं है, समाज का भी है। जब आपको ज़रूरत हो, ले लीजिएगा।”

अनूप का उत्तर सुनकर सब आश्चर्यचकित रह गए। मास्टर साहब अनूप को बार-बार निहारते रहे।

वहीं एक युवक बैठा था, जो दो दिन पहले ही भाग्य से ठोकर खाकर आया था। वह भी आशा और निराशा के बीच डूब रहा था। उसने कृषि विज्ञान की तीन साल की पढ़ाई पूरी कर ली थी, केवल एक साल बाकी था। लेकिन बीच में अपने बीमार पिता के इलाज के लिए उसे सारी ज़मीन-जायदाद बेचनी पड़ी। इतने इलाज के बाद भी पिता स्वस्थ न हो सके और कुछ दिन बाद उनका देहांत हो गया। उसने कर्ज लेकर पिता का श्राद्ध-कर्म किया। बढ़ते खर्चों के कारण उसकी पढ़ाई भी छूट गई और जीने का कोई उपाय भी नहीं रहा।

जीवन के कठिन मोड़ पर बैठा वह युवक पूरी तरह निराश हो चुका था। एक साल पहले ही उसका विवाह हुआ था। एक ओर बूढ़ी माँ और पत्नी का भार, दूसरी ओर जीविका का कोई रास्ता नहीं। शोक से माँ का शरीर भी दिन-

प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। रामाकान्त बाबू के उदार विचार सुनकर वह युवक उनके पास आया था।

रामाकान्त बाबू प्रतिदिन अपराह्न चार बजे भांग पीते थे। धीरे-धीरे शाम ढलते-ढलते उस नशे का असर उन पर छा जाता। यह आदत उन्हें अपने पिता से मिली थी। उनके पिता न्यायशास्त्र के विद्वान थे। यद्यपि वे गाँव में कम ही रहते और अधिकतर समय बाहर व्यतीत करते थे, फिर भी उनका प्रभाव रामाकान्त पर पड़ा। इसीलिए रामाकान्त जितने ईमानदार थे, उतने ही उदार विचारों के भी धनी थे।

तालाब की चर्चा करते हुए उन्होंने मुसना से कहा- "कल से बौएलाल को दुगुना बोइन दे देना।"

'दुगुना बोइन' सुनकर मुसना कुछ पल के लिए अवाक रह गया। फिर बोला- "मालिक, अगर किसी एक का बोइन बढ़ा देंगे तो और लोग भी माँग करेंगे। इससे झंझट खड़ा हो सकता है। और झंझट हुआ तो काम भी रुक जाएगा।"

काम रुकने की बात सुनकर रामाकान्त बाबू दृढ़ स्वर में बोले- "काम क्यों रुकेगा! जो जितना काम करेगा, उसे उतना ही बोइन मिलेगा।"

रामाकान्त की इस बात का सबने समर्थन किया। सबकी सहमति देखकर प्रसन्न होकर उन्होंने आगे कहा- "अभी बौएलाल का बोइन बढ़ाते हैं। बाद में उसे दो बीघा खेत भी देंगे। मास्टर साहब, आप रात में बौएलाल को पढ़ा दीजिए। स्लेट, पेंसिल और किताबों का सारा खर्च मैं दूँगा।"

खेत की बात सुनकर मुसना बोला- "गरीब तो सिर्फ बौएलाल ही नहीं है, गाँव में और भी बहुत से लोग हैं।"

मुसना की यह बात सुनकर रामाकान्त के हृदय में हरिश्चंद्र भाव जाग उठा। उदारता, ईमानदारी और मनुष्य के प्रति गहरा स्नेह, ये सब गुण उनके स्वभाव में गहराई से रचे-बसे थे। अब तक उनमें न तो सूदखोर महाजन जैसी कठोरता आई थी, और न ही धन जमा करने वाले की अमानवीय प्रवृत्ति। वे धन को जीवन का लक्ष्य नहीं, बल्कि जीवन का साधन मानते थे।

जब उनके पिता गाँव में रहते थे, तब यदि कोई उनसे कुछ माँगने आता,

तो वे उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटाते। यह सब रामाकान्त ने अपनी आँखों से देखा था। उनके पिता हमेशा कहा करते थे- “यदि यहाँ कोई मेहमान कुछ माँगे, तो अवश्य देना चाहिए, क्योंकि हम गाँव की प्रतिष्ठा बचाते हैं।”

वे कहते थे कि गाँव की प्रतिष्ठा व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक होती है। यदि कोई यह सोचे कि गाँव से मुझे क्या लेना-देना, तो यह एक गंभीर भूल होगी। गाँव में अधिकांश लोग गरीब और अनपढ़ हैं, इसलिए वे प्रतिष्ठा का महत्व नहीं समझते। लेकिन जो समझते हैं, उनके लिए यह एक विशेष दायित्व बन जाता है।

इस धरती पर जीव-जंतुओं से लेकर मनुष्यों तक सभी को जीने का अधिकार है। जो किसी का हक छीनना चाहता है, वह इस धरती पर सबसे बड़ा पापी है। चूँकि जनक की नगरी मिथिला है, अतः मिथिलावासियों को जनक के पथ का अनुसरण करना चाहिए, ताकि यह प्रतिष्ठा सदा बनी रहे। ❑

2.

सुखी-सम्पन्न रामाकान्त जितने उदार थे, उतने ही ईमानदार भी माने जाते थे। पुश्तैनी ज़मीन बहुत अधिक नहीं थी, लेकिन पिता की अमलदारी के कारण उनके पास अच्छी-खासी संपत्ति हो गई थी। पिता स्वयं अधिक भूमि नहीं खरीद पाए, पर बड़े-बड़े दरबारों से उन्हें पुरस्कारस्वरूप ज़मीनें मिली थीं।

मधुकान्त अध्यात्म, व्याकरण और न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान थे। बाल्यकाल से ही उनके अध्ययन के प्रति झुकाव को देखकर पिता ने उन्हें बनारस पढ़ने भेजा। वहाँ शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने तीन वर्षों तक काशी के एक न्यायशास्त्र आचार्य से गहन अध्ययन किया।

अध्ययन पूरा होते ही मधुकान्त पूरी तरह बदल गए। गाँव में न तो अध्ययन-अध्यापन की सुविधाएँ थीं, न ही अनुकूल वातावरण या सामंजस्यपूर्ण क्रियाकलाप। इस कारण उन्होंने जीवन का अधिकांश समय गाँव से बाहर ही बिताया।

मधुकान्त की प्रतिष्ठा अपने राज्य में जितनी थी, उतनी ही अन्य राज्यों में भी थी। भारतीय चिंतन की बुनियादी व्याख्या करना उनकी विशेषता थी। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के गुण-दोषों पर कई लेख लिखे, लेकिन असुविधाओं के कारण वे प्रकाशित नहीं हो सके। उनके घर के द्वार पर कई प्रशस्तिपत्र और पदक टँगे रहते थे। जब भी गाँव में होते, वे घर-घर जाकर लोगों को सामाजिक कुरीतियों, विशेषकर कर्मकांड, के बारे में समझाते।

समाज में सभी लोग उन्हें मानते थे। वे न केवल अपनी ज़िंदगी की बातें दूसरों से साझा करते, बल्कि दूसरों की जीवन-कथाएँ भी सुनते और उनका अध्ययन करते रहते।

उनके जीवन को छल-कपट की छाया तक ने स्पर्श नहीं किया था। वे अक्सर समझाते कि कैसे एक मनुष्य दूसरे की ज़िंदगी में बाधा बन जाता है और

उससे मुक्ति पाने का मार्ग क्या हो सकता है। उन्होंने इस धरती पर सत्तर सर्दियाँ गुज़ारीं थी।

हर दिन दोपहर के चार बजे के आसपास रामाकान्त भाँग पीते, चाय पीते और पान की एक गिलौरी मुँह में रखकर टहलने निकलते। संध्या होने पर लौटकर हाथ-पाँव धोते और दरवाज़े पर बैठ जाते। पड़ोस और टोले के लोग धीरे-धीरे आकर उनके पास जमा हो जाते। दुनियादारी की बातें चलतीं, चाय-पान होता और साथ में हँसी-मज़ाक भी।

उसी समय मास्टर हीरानन्द और युवक शशि शेखर भी टहलते हुए वहाँ पहुँच गए। चाय पीने के बाद रामाकान्त ने शशि शेखर से पूछा- “बौआ, तुमको क्या हुआ?”

शशि शेखर ने विवशता से उत्तर दिया- “ऐसे दलदल में फँस गया हूँ कि एक पाँव निकालता हूँ तो दूसरा धँस जाता है। समझ नहीं आता, कैसे निकलूँ?”

कृषि महाविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में सफल होते ही शशि शेखर के जीवन में उज्ज्वल भविष्य की किरणें फूट पड़ी थीं। जब उनके पिता को बेटे की सफलता का समाचार मिला, तो उनका उत्साह कई गुना बढ़ गया। वे इतने प्रफुल्लित हुए जितना जीवन में पहले कभी नहीं हुए थे। जैसे काँटों के बीच बेल का फल लग जाए, या झाड़ियों में गुलाब खिल उठे, वैसे ही एक उपेक्षित परिवार में शशि शेखर का जन्म हुआ था।

पिता ने ठान लिया कि चाहे सारा खेत बिक जाए, पर बेटे को कृषि वैज्ञानिक बनाकर ही रहेंगे। शशि शेखर के मन में भी बड़े-बड़े अरमान उमड़ने लगे, कृषि वैज्ञानिक बनना है, अच्छी नौकरी करनी है, माँ-बाप की सेवा करनी है, और जहाँ तक संभव हो, समाज की भी।

लेकिन समय ने ऐसा मोड़ लिया कि सारे अरमान हवा हो गए। जैसे किसी नाविक के हाथ से बीच धारा में पतवार छूट जाए और यात्री असहाय हो जाए, वैसा ही कुछ शशि शेखर के साथ हुआ। चार साल के पाठ्यक्रम में शशि तीन साल पूरे कर चुके थे कि तभी उनके पिता गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। चौथे साल की पढ़ाई छोड़कर वे पूरी तरह उनकी सेवा में जुट गए। एक ओर इलाज की चिंता, दूसरी ओर पूरे परिवार का भार अब उनके कंधों पर आ गया था।

आय का कोई स्थायी स्रोत नहीं था। एकमात्र सहारा खेत बचा, जो पहले से ही सीमित था, और अब आधे से अधिक बिक चुके थे।

शशि शेखर अभी तक जीवन और संसार की सच्चाइयों से पूरी तरह परिचित नहीं हुए थे। अबोध बुद्धि से बड़े-बड़े प्रश्नों का समाधान नहीं हो सकता। अंततः वे निराश हो गए और खेत बेच-बेचकर पिता का इलाज और परिवार का भरण-पोषण करने लगे। एक-एक कर खेत बिकता गया, लेकिन समस्याएँ वहीं की; वहीं रहीं। अंततः उनके पिता का निधन हो गया।

लाचार होकर उन्होंने कर्ज लेकर पिता का श्राद्ध-कर्म पूरा किया। जीवन में चारों ओर केवल अंधकार दिखाई देने लगा। जैसे कोई राह ही न बची हो।

वे मन ही मन सोचने लगे कि यदि ट्यूशन पढ़ाकर पढ़ाई पूरी करने की कोशिश करें, तो परिवार कैसे चलेगा? ट्यूशन से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि पढ़ाई और परिवार, दोनों का भार उठ सके। अधिक कमाई के लिए अधिक समय देना होगा, लेकिन तब पढ़ाई के लिए समय ही नहीं बचेगा। कक्षा कब करेंगे? स्वयं कब पढ़ेंगे?

पिता की मृत्यु के बाद उनकी माँ शोक में पूरी तरह टूट गई थीं। वे पहले ही वृद्ध थीं, शोक ने उन्हें और जर्जर कोई बना दिया।

शशि ने सोचा कि यदि मनुष्य योनि में जन्म लेकर माँ-बाप की सेवा न करे, तो वह वास्तव में मनुष्य नहीं, बल्कि केवल उसका अनुकरण है। वह सेवा किए बिना रह नहीं सकते थे। लोग उन्हें अच्छा कहें या बुरा, इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता था।

वे सोचते थे कि डिग्री मिलने के बाद अच्छी नौकरी मिल जाएगी, वेतन भी मिलेगा, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और रहने की सुविधा भी होगी। लेकिन जीवन केवल इतना भर तो नहीं है। जीवन के लिए ज्ञान, कर्म और व्यवहार भी आवश्यक होते हैं। यदि मनुष्य होकर भी कोई समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सका, तो ऐसा जीवन व्यर्थ है।

उन्हें लगा कि यदि वे माँ को छोड़ दें और उनके कष्ट में सहभागी न बनें, तो फिर कौन बनेगा। माँ को दिन-रात सेवा की ज़रूरत है, उठाने-बिठाने से लेकर भोजन-पानी तक। वे उस भूमि के पुत्र हैं जहाँ श्रवणकुमार जैसे बेटे जन्म लिए।

इन्हीं विचारों ने शशि शेखर को पढ़ाई छोड़ने पर मजबूर कर दिया। संसार में कोई सहारा न देखकर वे रामाकान्त के पास पहुँचे और अपनी जीवन-कथा हीरानन्द को सुनाई।

शशि की बातें सुनकर हीरानन्द का हृदय पिघल गया। उन्होंने सोचा कि जो युवक देश की सेवा में एक मजबूत स्तंभ बन सकता था, वह खुद ही संकट में डूब रहा है। ऐसे युवक को सहारा देकर खड़ा करना आवश्यक है।

सरल स्वभाव के रामाकान्त सब कुछ समझते हुए भी शशि से फिर बोले- “बौआ, तुम्हारी बात मैं अच्छी तरह समझ नहीं पाया।”

इस पर बीच में ही मास्टर साहब ने कहा कि "शशि गहरे संकट में हैं। इन्हें आपकी मदद की ज़रूरत है। तभी ये फिर से खड़े हो सकेंगे।”

मास्टर साहब की बात सुनकर रामाकान्त बाबू ने तुरंत कहा कि "यदि मेरी सहायता से शशि का कल्याण हो सकता है, तो मैं निश्चित रूप से सहायता करूँगा।”

रामाकान्त के आश्वासन से शशि शेखर के हृदय में वैसा ही विश्वास जागा, जैसे सुबह का सूरज देखकर दिन की आशा जगती है। अनायास उनके चेहरे पर मुस्कान खिल उठी। जीवन की अमावस्या पूर्णिमा में बदलने लगी।

गंभीर होकर हीरानन्द ने शशि से कहा- “शशि, चिंता छोड़ो। नए जीवन की ओर कदम बढ़ाओ। यही कर्मभूमि है। यहाँ कर्मनिष्ठ व्यक्ति ही सच्चा जीवन प्राप्त करता है।”

हीरानन्द की बातें सुनकर शशि शेखर उठ खड़े हुए। उनका हाथ पकड़कर, मन ही मन आजीवन मित्रता का संकल्प लेते हुए बोले- “जैसे किसी रोगी वृक्ष को माली सींचकर और देखभाल कर फिर से जीवन देता है, वैसे ही आप दोनों ने मुझे नया जीवन दिया है। इसलिए मैं आपका ऋणी हूँ। जहाँ तक संभव होगा, सेवा करता रहूँगा।”

शशि की बातें सुनते ही रामाकान्त बाबू के हृदय में करुणा उमड़ आई। प्रसन्न होकर वे बोले- “बेटा, मैं तो पढ़-लिख नहीं सका। पिता गाँव में नहीं रहते थे, इसलिए परिवार सँभालना पड़ता था। हाँ, जीवन में कभी किसी चीज़ की कमी नहीं हुई। जब भी पिता गाँव आते, वे जो कुछ समझाते और सिखाते थे,

वही आज भी मेरे मन में बसा है।"

रामाकान्त के दो बेटे थे। दोनों ने डॉक्टरी की पढ़ाई की थी और अब मद्रास में नौकरी कर रहे थे। कभी-कभी दो-एक दिन के लिए गाँव आ जाते। दोनों भाइयों की शादी भी मद्रास में ही हुई थी, और उनकी पत्नियाँ भी डॉक्टर थीं। एक ही परिवार में चार डॉक्टर होने के कारण उनकी आमदनी बहुत अच्छी थी। दस वर्षों की नौकरी में उन्होंने अच्छा-खासा धन जमा कर लिया था। उन्होंने मद्रास में तीन मंज़िला मकान बनवाया, चार गाड़ियाँ खरीदीं और अपना क्लिनिक भी स्थापित किया।

रामाकान्त बाबू बहुत दिनों से बेटों के पास जाने का विचार कर रहे थे, लेकिन सफर की दूरी के कारण टालते आ रहे थे। फिर उन्होंने कहा- "तालाब का काम अब लगभग पूरा हो गया है। इसे संपन्न करके मैं मद्रास जाऊँगा। वहाँ से लौटकर तुम्हारा सारा इंतज़ाम कर दूँगा। तब तक तुम अपनी पत्नी और माँ को यहीं ले आओ और यहीं रहो।"

दोपहर में हीरानन्द और शशि शेखर टहलने निकले। दरवाज़े के सामने, तालाब के किनारे उत्तर-पूर्व दिशा में एक विशाल आम का वृक्ष था। दोनों उसी की छाया में दूब पर बैठकर बातें करने लगे।

हीरानन्द अपने प्रिय शिष्य शशि शेखर से अपनी जीवनवृत्त कहने लगे। उन्होंने कहा- "शशि, जब मैंने मैट्रिक पास किया था, तब मास्टरी के लिए इंटरव्यू देने गया। वहाँ जाकर समझ में आया कि इंटरव्यू तो केवल दिखावा है। असल में तो मोल-भाव का खेल चल रहा था।

सीधे लौट आना उचित नहीं लगा, इसलिए रुक गया। मन में विचार आया कि इस भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध करूँ। कुछ साथियों को साथ लाने की कोशिश की, लेकिन सब उसी दलदल में फँसे थे। कोई भी मेरे साथ खड़ा होने को तैयार नहीं था।

अकेलेपन से मन डगमगाने लगा। सोचा, क्यों न विरोध करके कोई बड़ा हंगामा खड़ा कर दूँ। लेकिन सामने पूरा समूह एक ही दिशा में बढ़ रहा था और मैं अकेला था। गुस्से में शरीर काँपने लगा। जब लाभ-हानि का हिसाब लगाया, तो नुकसान ही ज़्यादा दिखा। फिर भी मन मानने को तैयार नहीं था।

सोचा, जो भी इस बहाली प्रक्रिया के शीर्ष पर बैठा है, उसे जाकर चार तमाचे रसीद कर दूँ। दस दिन जेल में रहना पड़ा, तो भी सही। लेकिन फिर अपने आप से कहा, जब डिग्री और योग्यता है, तो ऐसी नौकरियाँ आती-जाती रहेंगी।

जहाँ हजारों युवाओं ने देश की आज़ादी के लिए रक्त बहा दिया, वहाँ मैं इतना भी नहीं कर पाऊँगा?

मन में एकाएक संकल्प और विकल्प लहरों की तरह उठ रहे और शान्त भी हो जाते। अंततः सभी लोग जा चुके थे। मैं अकेला रह गया। पछताते हुए वहाँ से रवाना हुआ। पाँव उठ नहीं रहे थे, फिर भी किसी तरह घर पहुँचा।

घर पहुँचते ही पत्नी सब समझ गईं। आशा जगाने के लिए वे लोटे में पानी लेकर सामने आईं और बोलीं- “थक गए होंगे। हाथ-पाँव धो लीजिए। थकान दूर हो जाएगी। मैं नाश्ता लेकर आती हूँ।”

जब तक मैं हाथ-पाँव धोता, पत्नी थाली में नाश्ता सजाकर ले आईं, मानो पहले से ही तैयारी कर रखी हो। नाश्ता करने के बाद दरवाज़े की चौकी पर कुर्ता उतारकर रखा और बाँहों को सिरहाना बनाकर लेट गया। लेटते ही मन में तरह-तरह के विचार उमड़ने लगे, लेकिन दो विचार ऐसे थे जो जैसे आमने-सामने खड़े होकर एक-दूसरे से टकरा रहे थे।

पहला विचार यह था कि क्या केवल शिक्षकों की बहाली में ही घूसखोरी है, या यह हर विभाग में फैली हुई है? जब चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तो महसूस हुआ कि यह रोग शिक्षकों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अन्य विभागों में और भी अधिक गहराई तक व्याप्त है।

फिर मन में सवाल उठा कि जब लगभग हर विभाग भ्रष्टाचार की गिरफ़्त में है, तो देश आगे कैसे बढ़ेगा? ऐसा लगा जैसे ऊपर से नीचे तक एक ही बीमारी पूरे तंत्र को निगल रही है। मन खिन्न हो गया।

उसी क्षण एक और विचार कौंधा। यह सब तो वैसा ही है जैसे पूरबी और पछुआ हवाएँ धरती से आकाश तक बहती रहती हैं। यह व्यवस्था की हवा है, जो निरंतर बहती है। इसे रोकने या बदलने का एक ही उपाय है, और वह है, व्यवस्था का परिवर्तन।

लेकिन व्यवस्था का परिवर्तन आसान नहीं है। यह बच्चों का खेल नहीं,

बल्कि एक कठिन और जटिल कार्य है। व्यवस्था केवल लोगों की चाल-ढाल या व्यवहार तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह तो मनुष्य की बुद्धि, विचार और विवेक तक फैली होती है।

जैसी बुद्धि होती है, वैसे ही विचार पैदा होते हैं। जैसे विचार होते हैं, वैसे ही कर्म बनते हैं। इसलिए जब तक मनुष्य की बुद्धि नहीं बदलेगी, तब तक उसके कर्म नहीं बदल सकते। और जब तक कर्म नहीं बदलते, तब तक व्यवस्था का परिवर्तन केवल बौद्धिक व्यायाम बनकर रह जाएगा।

इसलिए ज़रूरत है कि मनुष्य के भीतर नई बुद्धि का निर्माण हो, जिससे नए विचार और क्रियाकलाप जन्म लें। जब नए क्रियाकलाप जन्म लेंगे, तो नए रास्ते बनेंगे। जब रास्ते बनेंगे, तो नए स्थान तक पहुँचना संभव होगा। और जब नया स्थान मिलेगा, तब मनुष्य, मनुष्य की बराबरी में खड़ा होगा। तभी अमीरी-गरीबी और ऊँच-नीच की खाई धीरे-धीरे समतल हो सकेगी।

तभी स्मृति में हलचल हुई। अचानक ही हाई स्कूल के शिक्षक देवेंद्र बाबू याद आ गए। वे हमेशा विद्यार्थियों से कहा करते थे- "मनुष्य को कभी निराश नहीं होना चाहिए। जैसे ही निराशा आती है, मृत्यु की छाया साथ चलने लगती है। इसलिए मनुष्य को सदैव आशावान रहकर जीवन बिताना चाहिए। समय कितना भी कठिन क्यों न हो, विवेक का सहारा लेकर आगे बढ़ते रहना चाहिए।"

देवेंद्र बाबू की बात याद आते ही मैंने निश्चय किया कि जब मैंने शिक्षक बनने की राह पकड़ी है, तो चाहे कितनी भी बाधाएँ आएँ, शिक्षक बनकर ही रहूँगा।

जब देवेंद्र बाबू कॉलेज में पढ़ते थे, तब स्वतंत्रता आंदोलन अपने उग्र रूप में था। पाँच-सात साथियों के साथ उन्होंने एक पोस्ट ऑफिस में आग लगा दी। पोस्ट ऑफिस जल गया। तीन दिन बाद पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया, पीटा और जेल भेज दिया।

जेल जाने से पहले उन्हें थोड़ी घबराहट थी, क्योंकि लोगों से सुना था कि वहाँ न ठीक से खाने को मिलता है, न चैन से सोने को, और सुबह-शाम पिटाई होती है। लेकिन जब वे भीतर पहुँचे, तो देखा कि हजारों देशभक्त और क्रांतिकारी पहले से वहाँ कैद थे। उनके लिए तो जेल भी घर जैसा था। देवेंद्र बाबू एक वर्ष

तक उसी जेल में रहे, और वह एक वर्ष उनकी ज़िंदगी का रुख ही बदल गया।

अब वे केवल अपने और परिवार के लिए नहीं सोचते थे। वे समझ गए थे कि देश समाज से बना है और समाज व्यक्ति तथा परिवार से। इसलिए सेवा केवल अपने तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि परिवार, समाज और देश तक फैलनी चाहिए।

जेल से बाहर आने के बाद उन्होंने बी.ए. किया और फिर हाई स्कूल में शिक्षक बन गए। स्कूल में कई शिक्षक थे, लेकिन उनकी ज़िंदगी सबसे अलग थी। वे निजी ट्यूशन को पाप मानते थे और कक्षा में इतनी लगन से पढ़ाते थे कि विद्यार्थियों को ट्यूशन की आवश्यकता ही न पड़े।

वे स्कूल के ऊपरी कमरे में अकेले रहते थे। महीने में एक बार घर जाते, बच्चों को देखते और वेतन परिवार को देकर लौट आते।

बातें करते-करते हम दोनों वहाँ से उठे। हीरानन्द अपने घर लौट गए। कुछ ही देर बाद एक अजनबी आ पहुँचा। मैं उसे पहचान नहीं सका, लेकिन दरवाज़े की मर्यादा निभाते हुए आँगन से पानी मँगवाया और पैर धोने को कहा। फिर पत्नी से कहा- "अतिथि आए हैं, जल्दी से चाय बना दो।"

दरवाज़े पर लौटकर हीरानन्द ने अतिथि से उनका नाम और गाँव पूछा। बातचीत चल ही रही थी कि भीतर से पत्नी ने हाथ के इशारे से संकेत किया कि चाय तैयार है। हीरानन्द ने दोनों हाथों में ग्लास लिए, एक ग्लास अतिथि को दिया और दूसरा स्वयं लिया। चाय पीते हुए बातचीत भी चलती रही। तभी पत्नी ने जलपान का भी संकेत किया, लेकिन हीरानन्द ने हाथ से इशारा कर थोड़ी देर ठहरने को कहा।

चाय पीने के बाद जलपान करना उचित नहीं माना जाता, लेकिन चाय से पहले करना बेहतर समझा जाता है। फिर भी चाय और पान के बाद दोनों पुनः गपशप में जुट गए।

हीरानन्द ने अतिथि से पूछा- "आप कहाँ से आए हैं?"

अतिथि ने उत्तर दिया- "हमारे गाँव में एक वृद्धा हैं, जो सामाजिक रूप से मेरी दादी जैसी हैं। वे विधवा हैं और उनका कोई संतान नहीं है। उन्होंने निश्चय किया है कि बच्चों को पढ़ाने के लिए एक स्कूल बनवाया जाए। उनके पास चार

बीघा ज़मीन है। समाज ने उनसे आग्रह किया कि संपत्ति तो वैसे भी बिखर जाएगी, इससे बेहतर होगा कि उसे किसी स्थायी कार्य में लगाया जाए। उन्होंने तय किया है कि दो बीघा ज़मीन स्कूल को देंगी और दो बीघा अपने लिए रखेंगी। उनके निधन के बाद शेष दो बीघा जमीन भी स्कूल को मिल जाएंगी।"

ध्यानपूर्वक सुनने के बाद हीरानन्द मुस्कराए और बोले- "यह बहुत अच्छा विचार है।"

अतिथि ने कहा- "मैं आपको उसी स्कूल को संचालित करने के लिए बुलाने आया हूँ।"

हीरानन्द ने उत्तर दिया- "निश्चित रूप से चलूँगा। आप आज रात यहीं रुक जाइए, सुबह हम साथ चलेंगे।"

अतिथि ने कहा- "बस आधा कोस दूरी है, शाम तक पहुँच जाएँगे, इसलिए रुकूँगा नहीं।"

हीरानन्द ने आग्रह किया- "इतनी जल्दी मत कीजिए। मैं भी थका हुआ हूँ। सुबह चाय पीकर हम दोनों साथ चलेंगे।"

हीरानन्द के आग्रह पर अतिथि मान गए। आँगन में बैठी पत्नी दोनों की बातें सुन रही थीं। फिर दोनों ने तम्बाकू खाई, लोटा उठाया और मैदान की ओर निकल गए। थोड़ी देर टहले और शाम तक लौट आए। घर आकर दरवाज़े पर बैठकर बातें कीं। भोजन बना, दोनों ने खाया और फिर सो गए।

चार बजे ही तीनों की नींद खुल गई। शौचालय से लौटकर वे दातुन कर ही रहे थे कि उसी समय आरती, यानी हीरानन्द की पत्नी, ने चाय तैयार कर ली। वे लोग चाय पी ही रहे थे कि सूर्य उदित हो गया।

आज के सूर्योदय में तीनों को कुछ विशेष आकर्षण महसूस हुआ। यह आकर्षण सूर्य की किरणों में था या उनके हृदयों में, यह कोई नहीं जानता। आरती के मन में यह मोहक भाव था कि उनके पति नौकरी के सिलसिले में जा रहे हैं। हीरानन्द के हृदय में जीवन की एक सीढ़ी ऊपर चढ़ने का उल्लास था, और अतिथि मटकन के मन में अपने पुत्र की शिक्षा की ललक।

चाय पीने के बाद हीरानन्द धोती और तौलिया लेकर मटकन के साथ बातें करते हुए चल पड़े। बातचीत के दौरान पता चला कि स्कूल निर्माण में रामाकान्त

की विशेष भूमिका है। इसलिए गाँव पहुँचते ही हीरानन्द ने मटकन से कहा- “पहले हम रामाकान्त से मिलेंगे, फिर दादी के पास जाएँगे।”

दोनों रामाकान्त के घर पहुँचे। साठ वर्षीय रामाकान्त उस समय गाय के नाँद में स्वयं चारा डाल रहे थे। दरवाज़े पर दोनों को देखकर उन्होंने जल्दी-जल्दी हाथ धोए और पास आकर बैठने को कहा। हीरानन्द चौकी पर बैठ गए, लेकिन मटकन खड़े ही रहे।

रामाकान्त ने मटकन से कहा- “तुम आगे बढ़ो, हम दोनों पीछे से आते हैं। जब मास्टर साहब दरवाज़े पर आए हैं, तो उन्हें बिना नाश्ता कराए कैसे जाने देंगे?”

मटकन आगे बढ़कर दादी के पास पहुँचे और सब समाचार सुनाए। यह सुनते ही दादी का मन हर्ष से भर उठा। उन्हें लगा कि अब गाँव के बच्चे अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ेंगे।

नाश्ता और चाय के बाद रामाकान्त और हीरानन्द दादी के पास पहुँचे। दादी का घर पास ही था। रास्ते में रामाकान्त सोचने लगे कि स्कूल कोई व्यक्तिगत संस्था नहीं, बल्कि सामाजिक संस्था है। इसलिए इसमें सभी का सहयोग आवश्यक है। भाभी का धन्यवाद बनता है कि उन्होंने अपनी पूरी संपत्ति समाज को अर्पित कर दी, लेकिन यह भी ज़रूरी है कि हम सब अपने कर्तव्य को समझें।

रामाकान्त के मन में विचार आया कि क्यों न मास्टर साहब के भोजन और रहने का प्रबंध वे स्वयं कर दें। खेत की उपज से नियमित आय होती है, और यदि गाँववाले मिलकर स्कूल का भवन बना दें, तो इससे बेहतर और क्या हो सकता है।

इन्हीं विचारों में डूबे हुए वे दादी के घर पहुँचे। रामाकान्त दादी को ‘भाभी’ कहकर पुकारते थे, क्योंकि सामाजिक रिश्ते में उनके पति और दादी के पति आपस में भाई थे। दादी भी मास्टर साहब के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं।

पहुँचते ही रामाकान्त ने मटकन से कहा- “मटकन, स्कूल गाँव की एक बड़ी संस्था है, इसलिए समाज के लोगों को सूचना दे दो। सब मिलकर सोच-विचार करेंगे। भाभी के त्याग की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। जिस संपत्ति

के लिए लोग नीच से नीच काम कर बैठते हैं, उसी संपत्ति का त्याग भाभी कर रही हैं। अब जब मास्टर साहब आ ही गए हैं, तो जल्दबाज़ी की ज़रूरत नहीं है। पहले पूरे गाँववालों को बुला लो, फिर दोपहर में सब मिलकर विचार करेंगे।"

कुछ ही देर में समाज के लोग आने लगे। सबके मन में उत्सुकता थी, इसलिए उत्साह भी स्वाभाविक था। सभा के बीच रामाकान्त बोले- "समाज के सभी लोग जानते हैं कि भाभी अपनी सारी संपत्ति बच्चों के लिए दान कर रही हैं, जिससे हम सबका कल्याण होगा। लेकिन हमारा भी कर्तव्य है कि हम इसमें भागीदार बनें। जब तक मैं जीवित रहूँगा, शिक्षक के भोजन और रहने का प्रबंध करता रहूँगा। आप सब स्कूल का भवन बनवाइए।"

रामाकान्त के विचारों का सभी ने तालियाँ बजाकर समर्थन किया। मुस्कुराते हुए हीरानन्द ने कहा- "घर बनने में थोड़ा समय तो लगेगा, लेकिन इस बीच आप अपने बच्चों को भेजिए। मैं पढ़ाई शुरू कर दूँगा।"

मास्टर साहब के इस प्रस्ताव का भी सभी ने तालियाँ बजाकर स्वागत किया।

तभी दुखिया खड़ा हुआ और बोला- "खेती करने के लिए इतना हल और मजदूर कहाँ से आएँगे? जितने भी खेतिहर हैं, हम सब मिलकर खेती कर लेंगे। जैसे मास्टर साहब हमारी सेवा करेंगे, वैसे ही हम सब मिलकर उनकी सेवा करेंगे।" ❑

3.

छह महीने से सोनेलाल की पत्नी बीमार पड़ी थी। इलाके के डॉक्टर, वैद्य, हकीम और ओझा-गुनी सब थक गए, पर सुगिया की बीमारी दिन-ब-दिन बढ़ती गई और कोई आराम नहीं हुआ। चिंता में सोनेलाल भी रहने लगे। उन्हें दिन-रात चैन नहीं था। कभी डॉक्टर के पास भागते, कभी बाज़ार से दवा लाते। कभी बच्चों के लिए दूध जुटाते, तो कभी मवेशियों की देखभाल में लगे रहते। अपने खाने-पीने की भी सुध नहीं रही। कभी किसी झाड़-फूँक वाले को बुलाते, तो कभी सांड-पारा से खेत की रक्षा के लिए दौड़ते। पत्नी की बीमारी जितनी भारी थी, उससे भी बड़ी चिंता थी तीन बेटियों के बाद जन्मे इकलौते बेटे की।

बेटे के जन्म लेते ही सुगिया को असहनीय पीड़ा ने घेर लिया। प्रसव की घड़ी इतनी विकट थी कि सोनेलाल डॉक्टर के पास तक नहीं जा सके। जाड़े का महीना था, रात अंधेरी थी और पछुआ हवा सनसनाती हुई चल रही थी। पेड़ों से ओस की बूँदें टपक रही थीं। समय देखकर वे पूरी तरह असहाय हो उठे। पल्हैनी का घर पास ही था, पर वहाँ भी नहीं जा सके। डर था कि कहीं उधर जाते ही इधर कोई अनहोनी न हो जाए। चारों ओर घना अंधकार था। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। सोनेलाल एक अजीब संकट में फँस गए थे।

बच्चे के जन्म और पत्नी की बीमारी के बाद से उनकी कोई दशा नहीं रह गई थी। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। जो कोई भी दवा या उपाय बताता, उसे वे सुगिया को दे देते। अंततः पाँच कट्ठा खेत पाँच हज़ार रुपये में गिरवी रखकर लहेरियासराय जाने का निर्णय लिया। बच्चे छोटे थे, इसलिए घर और बाहर दोनों सँभालने के लिए मदद की ज़रूरत थी। घर की देखभाल के लिए शाला की पत्नी को बुलाया और बाहर के काम तथा लहेरियासराय जाने के लिए बहन को बुलवाया।

पत्नी का दूध सूख चुका था, इसलिए बच्चे को बकरी का दूध पिलाया

जाता था। बहन का छोटा बच्चा अब बड़ा हो गया था, इसलिए उसका भी दूध बंद हो चुका था। लेकिन जब उसने अपने भतीजे की हालत देखी, तो उसने खुद मसूर की दाल का पतला झोल पीना शुरू किया और बच्चे को फिर से छाती से लगाने लगी। धीरे-धीरे उसमें फिर दूध उतरने लगा।

लहेरियासराय जाने की तैयारी में सोनेलाल लग गए। मवेशियों वाले घर में टँगी पुरानी खाट उतारी और उसकी झोल-झाल अच्छी तरह झाड़ने लगे। जहाँ-जहाँ खाट टूटी थी, उन्हें बाँधकर ठीक किया। फिर बहन से बोले- "दाई, आज ही कपड़े धोकर रख लो। सुबह की गाड़ी पकड़नी है। दस-बारह दिन का चावल-दाल भी ले लेना। चावल तो कोठी में है, बस दाल दरड़वानी पड़ेगी। बाकी सारे काम आज ही निबटा लो।"

भाई की बात सुनकर बहन ने पूछा- "भैया, कौन-कौन से कपड़े धो दूँ?"

सोनेलाल बोले- "मेरे लिए एक जोड़ी धोती, अंगोछा और चादर। और तूँ भी अपने कपड़े धो लेना। अभी तो एक ही धोती पहने हूँ। अलगनी पर जो धोती टंगी है, उसे अभी धो देना ताकि नहाने तक सूख जाए। नहाकर वही पहन लूँगा। जो अभी पहना हूँ, उसे बाद में धो लेना।"

पास ही खड़ी सरहोजि, यानी शाला की पत्नी को देखकर सोनेलाल ने कहा- "आप दरवाज़े के बाहर मत जाइएगा। आँगन और घर में ही बच्चों को देखिएगा और मवेशियों को चारा-पानी देते रहिएगा। समय अच्छा नहीं है। आपने देखा ही है कि गाँव के नए लड़के झुंड बनाकर भाँग-गाँजा पीते हैं और यूँ ही लोगों को गालियाँ देते घूमते हैं। अगर कोई उलझे, तो बस टाल दिजीएगा।"

उधर बहन कोठी से मसूर दाल और चावल निकालकर आँगन में बिछौने पर सुखाने के लिए फैला गई। चावल नया था, इसलिए उसमें कोई सुरा-वुरा नहीं लगा। फिर वह कपड़े धोने चली गई और सरहोजि दाल दरड़ने में लग गई।

सोनेलाल खाट ठीक कर रहे थे और मोटी रस्सी से दोनों पासियों को बाँध रहे थे। तभी कपड़े धोकर लौटी बहन ने पूछा- "भैया, कितने चावल-दाल ले जाओगे?"

सोनेलाल बोले- "दाई, खाने वाले तो बस हम दो ही होंगे। उसी हिसाब से चावल और दाल ले लेना। सब्ज़ी वहाँ से खरीद लेंगे।"

बहन बोली- "भैया, नमक तो वहाँ मिल ही जाएगा, लेकिन मिर्च, हल्दी और सरसों का तेल यहीं से ले जाना पड़ेगा। एक थाली, एक लोटा और दो छोटी डेकचियाँ भी रख लेना। इन्हीं डेकचियों में सारा सामान भर देंगे, क्योंकि अलग-अलग बोरियाँ लेने से मोटरी भारी हो जाएगी। खाने-पीने की चीज़ें और कपड़े-लत्ते भी रहेंगे, तब तो मोटरी का बड़ा होना तय है।"

सोनेलाल बोले- "मोटरी भारी हो भी जाए तो क्या करेंगे? जब गाड़ा में ढोल पड़ा है, तो बजाना ही पड़ेगा।"

लहेरियासराय जाने की तैयारी के बीच बहन के मन में विचार उठने लगे, भगवान ने भाई को कितनी बड़ी मुसीबत में डाल दिया है। अगर कहीं भाभी चल बसीं तो भाई बिल्कुल असहाय हो जाएगा। अकेला कैसे सँभालेगा सब कुछ? बच्चे तो सब छोटे हैं। खेती कौन देखेगा? मवेशियों की देखभाल कौन करेगा? बच्चों को कौन सँभालेगा? हे भगवान, ऐसा दुख तो सात घर दुश्मन को भी न देना।

मैं क्या करूँगी? मैं भी तो अकेली हूँ। मेरे भी चार बच्चे हैं, मवेशी हैं। शरीर यहाँ है, लेकिन मन गाँव में ही भटक रहा है। फिर भी, ऐसी घड़ी में भाई को छोड़ दूँ तो लोग क्या कहेंगे? और केवल लोग ही क्यों, मेरा अपना मन भी मुझे चैन नहीं लेने देगा।

साँझ होते ही सोनेलाल स्टेशन तक साथ जाने के लिए दो आदमियों की तलाश में निकले। अपने दियाद-वाद तो थे, लेकिन मुसीबत में कौन किसके काम आता है? यही सोचते-सोचते वे फुद्दिया के पास पहुँचे। फुद्दिया का नाम जैसा, काम भी वैसा ही था। सोनेलाल को देखते ही वह बोला- "भाई, कैसे आना हुआ?"

सोनेलाल बोले- "तुमसे एक काम है, फुद्दी।"

"क्या काम है? बताओ ना।"

"कल सुबह की गाड़ी पकड़नी है। रेखिया माँ को लहेरियासराय ले जाना है। वे अपने आप चल-फिर नहीं सकतीं, खाट पर ही ले जाना पड़ेगा। इसके लिए दो आदमियों की ज़रूरत है।"

फुद्दिया बोला- "अगर तुम्हें मेरे खून की भी ज़रूरत हो, तो मैं देने को

तैयार हूँ। तुम्हारा उपकार मैं जीवन भर नहीं भूल सकता, भैया। मुझे आज भी वह दिन याद है जब मेरी बेटी की विदाई होनी थी। दामाद जी तीन दिन से घर पर थे, लेकिन कपड़ों की कमी के कारण विदाई नहीं हो पा रही थी। उसी समय जैसे ही तुमसे कहा, तुमने तुरंत रुपये निकालकर दे दिए। ऐसा उपकार कोई कैसे भूल सकता है?”

सोनेलाल बोले- “समाज में काम ऐसे ही मिल-बाँटकर करना चाहिए। हर किसी को कभी न कभी किसी की ज़रूरत पड़ती है। अगर मुझे तुम पर भरोसा न होता, तो मैं यहाँ आता ही नहीं। गाड़ी सुबह पाँच बजे है, हमें कम-से-कम एक घंटा पहले निकलना होगा।”

फुद्दिया ने कहा- “बहुत अच्छा। मैं तो रोज़ चार बजे ही उठ जाता हूँ। हम दोनों भाई साथ चलेंगे। तुम तैयारी में रहना। अगर कभी नींद न खुले, तो मुझे एक बार जगा देना।”

फुद्दिया के यहाँ से लौटकर सोनेलाल ने बहन से कहा- “दाई, सब सामान एक जगह बाँधकर रख लो, नहीं तो जाते समय हड़बड़ी में कुछ छूट जाएगा।”

भाई की बात सुनकर बहन सोचने लगी कि कहीं कुछ भूल तो नहीं गई। फिर बोली- “भैया, एक बार फिर सब सामान का नाम बता दो। अभी गिन-गिनकर बाँध देती हूँ।”

दोनों भाई-बहन एक-एक करके सारी चीज़ें गिनने लगे। सब कुछ देख लेने के बाद सोनेलाल ने कहा- “दाई, हमें सुबह चार बजे उठना है। अगर खाना पक गया हो, तो अभी खाने के लिए दे दो सबेर सो जाऊँगा।”

हाथ-पाँव धोकर सोनेलाल खाने बैठे। मन चिंता से भरा था, इसलिए भूख नहीं थी, लेकिन फिर भी किसी तरह चार कौर खा लिए। खाना खाकर वे मवेशियों के घर गए, उन्हें चारा-पानी दिया और फिर लौटकर सो गए। बहन भी खाना खाकर बच्चे को छाती से लगाकर लेटी। लेटे-लेटे उसने भाभी से पूछा- “भाभी, अब तबीयत थोड़ी ठीक है न?”

“हाँ।”

अँधेरे में लेटे सोनेलाल को नींद नहीं आ रही थी। वह एक अजीब से द्वंद्व में उलझा हुआ था। एक ओर सुबह जल्दी उठने की चाह, दूसरी ओर पत्नी की

चिंता, इन दोनों के बीच नींद आँखों तक पहुँच ही नहीं पा रही थी। करवटें बदलते-बदलते कई बार साँसें तेज़ चलने लगीं। थकान के मारे कुछ देर को झपकी आई भी, तो अचानक चौंककर जाग उठे और बहन से पूछ बैठे- "दाई, सुबह हो गया क्या?"

बहन भी पहले से जाग रही थी। बोली- "भैया, अभी तो खाकर लेटे ही थे। इतनी जल्दी सुबह कैसे हो जाएगी?"

भोर के तीन बजे ही फुद्दिया आ पहुँचा और आँगन के बाहर से पुकारने लगा- "सोनेलाल भैया! अरे सोनेलाल भैया! अब तक सोए हो? उठो-उठो, सुबह हो गई!"

उसकी आवाज सुनकर दोनों भाई-बहन घबरा गए और झटपट उठ खड़े हुए। नींद झपकाते हुए सोनेलाल बाहर आए और बोले- "क्या बताऊँ, देर रात को ही थोड़ी नींद आई थी। अच्छा हुआ जो तुम आ गए और जगा दिया। मैं सामान निकालता हूँ, तुम खाट तैयार कर लो।"

अँधेरे में बहन दो दीपक ले आई। एक खम्भे के पास रख दिया और दूसरा भीतर पहुँचा दिया। खाट निकालकर फुद्दिया ने बँधी रस्सियों को कसकर देखा कि मज़बूत हैं या नहीं। फिर बोला- "भैया, खाट तो ठीक है, लेकिन बांस की टोन कहाँ है?"

सोनेलाल ने कहा- "वो तो घर के पंजरे में रखी है।"

फुद्दिया ने टोन निकालकर दीपक की रोशनी में देखा कि गाँठें सही तरह से छीली हुई हैं या नहीं। गाँठें पूरी तरह से छिली हुई थीं। तभी सोनेलाल एक गठरी पुआल लाकर बोले- "फुद्दिया, ज़रा इसे समतल कर खाट पर बिछा दे।"

पुआल बिछाने के बाद फुद्दिया बोला- "भैया, इस पर क्या बिस्तर बिछाएँगे?"

सोनेलाल घर से शतरंजी और सिरमा लाकर दे दिए। सब कुछ बिछा दिया गया। फुद्दिया ने फिर पूछा- "भैया, रास्ते में कंधा बदलते समय कहीं भाभी गिर न जाएँ, तो क्या पंजरे के दोनों सिरों में डोरी बाँध दूँ?"

यह सुनकर सोनेलाल कुछ देर चुप रहे। फिर गंभीर स्वर में बोले- "दुःख आने पर किसी का भी मन वौआने लगता है, लेकिन तुम अज्ञानी तो नहीं हो जो

न समझें। जो उचित लगे, वही करो।"

रागिनी को खाट पर चढ़ाकर दोनों ने उसे कंधे पर उठा लिया। तभी सोनेलाल को कुछ याद आया और वे बोले- "फुद्दिया, घर में तो बच्चे रहेंगे, कोई संभालने वाला नहीं। सरहोजि भी आई है, लेकिन वह अनजान है। तूँ रात को यहीं रहकर खा-पीकर सो जाना।"

"ठीक है," कहकर फुद्दिया आगे बढ़ गया। चावल-दाल और बर्तनों की गठरी सिर पर रखकर सोनेलाल भी निकल पड़े। बहन, बच्चे को सीने से लगाए साथ चल रही थी।

आँगन से निकलते ही सुगिया खाट पर से बोली- "ज़रा ठहरो।"

फुद्दिया ने रुककर पूछा- "क्यों, क्या हुआ?"

खाट से सुगिया ने कहा- "हे साधु-गुरु, अगर सकुशल लौट आई तो पचास मुर्ते का भंडारा कराऊँगी।"

फुद्दिया ने खाट फिर से उठाई और सब चल पड़े। रास्ते भर कोई कुछ नहीं बोला। हर कोई अपने मन में तरह-तरह की बातें सोचता रहा। फुद्दिया सोच रहा था कि भगवान भी कैसे बेइंसाफ़ हैं, जो सोनेलाल जैसे नेक आदमी को ऐसी मुसीबत में डाल दिए।

सोनेलाल के मन में बार-बार यह विचार उठ रहा था कि तीन बेटियों के बाद यह बेटा हुआ है। अगर पत्नी चल बसी, तो यह बेटा भी हाथ से निकल जाएगा। मान लो फिर चुमौन कर भी लूँ, तो कौन-सी गारंटी है कि बेटा ही होगा? अगर फिर बेटी हुई, तो समझो खानदान का अंत, और जीवन भर विवाह-दान में ही उलझे रहना पड़ेगा।

बहन सोच रही थी कि अगर भाभी मर गईं, तो भैया का जीवन दुःख से भर जाएगा। हे भगवान, यह सब क्यों कर रहे हो?

स्टेशन पहुँचकर सोनेलाल ने गठरी नीचे रख दी और गाड़ी का पता करने लगे। टिकट कटते देख समझ गए कि गाड़ी आने वाली है। उन्होंने भी अपना टिकट ले लिया। कुछ देर बाद गाड़ी आ गई। तीनों ने मिलकर हाथों से सहारा देकर सुगिया को गाड़ी में चढ़ाया। सोनेलाल वहीं गाड़ी में रह गए। गठरी फुद्दिया ने उठाकर उन्हें दे दी। मोटरी रखकर सोनेलाल ने बहन की गोद से बच्चा अपनी

बाँहों में ले लिया। बहन भी गाड़ी में चढ़ गई। गाड़ी खुलते ही दोनों भाई और फुद्दिया खाट उठाकर घर की ओर लौट गए।

गाड़ी दरभंगा पहुँची। छोटी लाइन यहीं तक जाती थी। अब दो घंटे बाद दूसरी गाड़ी घूमकर निर्मली जाएगी। यात्री उतरने लगे, पर सोनेलाल निश्चिंत बैठे रहे। मन में कोई हड़बड़ी नहीं थी। जब सारे यात्री उतर गए, तब वे सीट से उठे और बहन से बोले- “दाई, तूँ यहीं रह, मैं कोई सवारी लेकर आता हूँ।”

यह कहकर वे गाड़ी से उतर गए और प्लेटफॉर्म से बाहर निकलकर एक टेम्पो के पास पहुँचे। ड्राइवर नीचे खड़ा यात्रियों की खोज में इधर-उधर देख रहा था। धीरे से सोनेलाल ने कहा-

“भैया, हमें डॉक्टर के पास जाना है, चलोगे?”

ड्राइवर ने उनकी बोली से समझ लिया कि वे देहाती हैं, लेकिन सोनेलाल की सादगी ने उसका मन छू लिया। उसने थोड़े स्थिर स्वर में पूछा- “मरीज कहाँ है?”

“गाड़ी में,” सोनेलाल ने जवाब दिया।

“लाकर बैठाइए,” ड्राइवर ने कहा।

“वह अपने पैरों से नहीं आ पाएगी, पकड़कर लाना होगा।”

गाड़ी के पास जाकर ड्राइवर ने रोगी और सामान को देखा। उसने अंदाजा लगाया कि अकेले से काम नहीं चलेगा, एक और आदमी की ज़रूरत पड़ेगी। उसने प्लेटफॉर्म पर नज़र दौड़ाई, तो सफाई करने वाले दो व्यक्ति आते दिखे। वह ज़ोर से पुकारा- “भैया।”

‘भैया’ सुनकर एक झाड़ूवाले ने सिर उठाया। ड्राइवर को पहचानते ही वह झटपट पास आ गया और बोला- “क्या हुआ?”

ड्राइवर ने कहा-

“एक दुखियारी महिला इस डिब्बे में है। इन्हें उतारकर टेम्पो में बैठा दीजिए।”

ड्राइवर और दोनों सफाईकर्मी मिलकर सुगिया को गाड़ी से उतारकर टेम्पो तक ले गए। सोनेलाल ने गठरी उठा ली और बहन, जो बच्चे को सँभाल रही थी,

विदा हुई। सुगिया को टेम्पो में बैठाकर झाड़ूवाले फिर से गाड़ी साफ करने लगे।

सोनेलाल ने उन्हें रोककर एक दस रुपये का नोट बढ़ाया। रुपये की ओर देखकर अधेड़ झाड़ूवाले ने कहा- “भैया, हम भी रेलवे में सरकारी नौकरी करते हैं। वेतन पाते हैं। आज आपकी मदद की, क्योंकि इस घड़ी में तो तन और धन दोनों से सहायता करनी चाहिए। गरीब हैं, किसी तरह कमाकर गुजर-बसर करते हैं। आप भी जानते होंगे कि सब दुख गरीबों पर ही आते हैं। अमीर लोग सोने की मूर्तियों पर खोया-मलाई चढ़ाकर धर्म करते हैं, लेकिन हमारे भगवान तो यही टूटे-फूटे लोग हैं। हमने सेवा की है। भगवान करें कि आप हँसते-खेलते घर लौटें। यह दस रुपये का नोट आप ही रखिए।”

झाड़ूवाले की बात सुनकर सोनेलाल चकित रह गए। उन्हें यह सोचकर हैरानी हुई कि जिसे समाज ‘अछूत’ मानता है, उसकी आत्मा कितनी निर्मल है।

टेम्पो आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाकर सोनेलाल ने ड्राइवर से कहा- “ड्राइवर साहब, मैं यहाँ नया हूँ। कभी इधर आया नहीं। आप यहीं के हैं, सब जानते होंगे। किसी ऐसे डॉक्टर के पास ले चलिए जो रोगी को ठीक कर सकें।”

ड्राइवर बोला- “ठीक है।”

मन ही मन उसने सोचा कि सरकारी अस्पताल में भर्ती कराना सही नहीं होगा। एक तो वहाँ की व्यवस्था ढीली है और दूसरा, सुविधा उन्हीं को मिलती है जिनकी पहुँच है। सबसे अच्छा होगा कि इन्हें डॉक्टर बनर्जी के पास ले चलूँ। वे अब रिटायर हो चुके हैं और घर से ही क्लिनिक चलाते हैं। डॉक्टर भी अच्छे हैं और इंसान भी नेकदिल हैं।

उस समय दोपहर के बारह बज चुके थे। डॉक्टर बनर्जी की पहली पाली सुबह आठ से बारह बजे तक होती है और दूसरी पाली शाम चार से सात तक। वे उस समय अपने सभी मरीजों को देख चुके थे और घर लौटने की तैयारी कर रहे थे कि तभी टेम्पो का ड्राइवर सीधे फाटक से भीतर आकर ओसारे के पास गाड़ी रोक देता है। टेम्पो देखते ही डॉक्टर बनर्जी फिर से कुर्सी पर बैठ गए।

टेम्पो रोककर ड्राइवर उतरा और सीधे डॉक्टर बनर्जी के पास जाकर बोला- “डॉक्टर साहब, रोगी अपने पैरों से चलने-फिरने की हालत में नहीं है, इसलिए पहले एक कमरा दिला दीजिए।”

डॉक्टर बनर्जी ने आँख के इशारे से कंपाउंडर को संकेत किया। बगल में ही उनका डेरा था। कंपाउंडर वहाँ जाकर एक कमरा खोल लाया और उसकी चाबी सोनेलाल को सौंप दी। फिर वह लौटकर आया और सहयोगी के साथ मिलकर सुगिया को स्ट्रेचर पर लादकर कमरे में चौकी पर सुला दिया। स्ट्रेचर वापस रखते हुए कंपाउंडर ने आकर डॉक्टर साहब से कहा- "सब व्यवस्था कर दी गई है।"

डॉक्टर बनर्जी आगे-आगे और कंपाउंडर, ड्राइवर तथा सोनेलाल पीछे-पीछे कमरे में पहुँचे। सुगिया को देखते ही डॉक्टर को बीमारी का अंदाज़ा हो गया, फिर भी पूरी तरह सुनिश्चित होने के लिए उन्होंने कुछ प्रश्न पूछे।

सोनेलाल का मन निराश था। मुँह सूखा पड़ा था और आँखें आँसुओं से भरी थीं। बहन की आँखों से भी बूँद-बूँद आँसू गिर रहे थे।

डॉक्टर बनर्जी ने कंपाउंडर को इंजेक्शन लगाने का निर्देश दिया। कंपाउंडर दवा लेने चला गया।

सोनेलाल ने डॉक्टर बनर्जी से पूछा- "डॉक्टर साहब, क्या रोगी का दुख दूर हो जाएगा?"

यह सुनकर डॉक्टर बनर्जी का हृदय पिघल गया। उन्होंने सांत्वना देते हुए कहा- "चौबीस घंटे के भीतर रोगी चलने-फिरने लगेगी। अभी एक इंजेक्शन दिया जा रहा है। पाँच बजे तक वह सोती रहेगी। उसे जगाइएगा नहीं। जब वह स्वयं जागे, तब कुल्ला कराकर चाय और बिस्कुट दीजिएगा।"

इतने में कंपाउंडर लौट आया और सुगिया को इंजेक्शन लगा दिया। इंजेक्शन लगते ही वह गहरी नींद में चली गई। डॉक्टर बनर्जी ने सोनेलाल से कहा- "अब आप सब खा-पी लें।"

डॉक्टर चले गए। ड्राइवर ने सोनेलाल को समझाते हुए कहा- "पानी का नल बगल में है। रसोई के लिए चूल्हा भी है। आप चाहें तो खाना खुद बना सकते हैं। आइए, मैं आपको बाहर की दुकान दिखा देता हूँ। इस रास्ते से बाहर मत जाइएगा। यहाँ लुच्चे-लफंगे बहुत हैं। जेब से पैसे छीन सकते हैं। जितना पैसा चाहिए, उतना ही हाथ में लेकर जाइए और सामान खरीद लाइए। अब मैं चलता हूँ। यहाँ किसी बात की चिंता मत कीजिए। सब ज़िम्मेदारी डॉक्टर साहब की

है।”

शाम के पाँच बजे सुगिया ने आँखें खोलीं। पास ही सोनेलाल बैठा था और बहन अपनी गोद में बच्चा लिए हुए थी। आँख खुलते ही सुगिया ने लेटे-लेटे कहा- “कुछ खाने का मन हो रहा है।”

सुगिया की बात सुनकर सोनेलाल को डॉक्टर साहब की कही बात याद आई। वह उठकर चाय और बिस्कुट ले आया और सुगिया के पास रख दिया। फिर नल से पानी लाकर कुल्ला करने के लिए दिया। सुगिया लेटे-लेटे ही कुल्ला कर चाय में बिस्कुट डुबाकर खाने लगी। इसके बाद उसने मुँह पोंछा।

मुँह पोंछते ही सोनेलाल ने पूछा- “अब कैसा लग रहा है?”

“थोड़ा हल्का लग रहा है।”

सुगिया की बात सुनकर सोनेलाल और उसकी बहन दोनों के मन में खुशी आ गई। बहन मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगी- “हे भगवान, किसी तरह भाभी को पूरी तरह से ठीक कर दीजिए।”

सुगिया का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा। तीसरे दिन से वह उठ-बैठने और चलने-फिरने लगी। डॉक्टर साहब दिन में दो बार आकर देख जाते थे। हर तरह की सेवा-सुविधा के लिए सोनेलाल हरदम तैयार रहता था। दसवें दिन डॉक्टर साहब ने सुगिया को छुट्टी दे दी। सोनेलाल ने कंपाउंडर से सारा हिसाब-किताब कर लिया। जितनी रकम निकली, उससे पाँच सौ रुपये अधिक निकालकर डॉक्टर साहब के सामने रख दी। डॉक्टर साहब ने रुपये गिने और पाया कि पाँच सौ रुपये अधिक हैं। मुस्कराते हुए बोले- “गिनती में पाँच सौ रुपये अधिक आ गए हैं। ये वापस ले लीजिए।”

यह सुनकर सोनेलाल ने शांत भाव से कहा- “गिनती में कोई गलती नहीं हुई है। ये पाँच सौ रुपये आपको खुशनामा स्वरूप दे रहा हूँ।”

‘खुशनामा’ शब्द सुनकर डॉक्टर बनर्जी मौन हो गए। उनके मन में यह विचार आया कि यह बेचारा शायद ये रुपये उधार लेकर लाया होगा, फिर भी देखिए इसका दिल। मेरे पास किस चीज़ की कमी है कि इस गरीब के अतिरिक्त पैसे को छुऊँ।

यह सोचते ही उन्हें ज़मींदारी के जमाने की ‘पुनाह’ की याद आ गई।

ज़मींदार हर साल एक बार 'पुनाह' करते थे। यह आयोजन ज़मींदार की कचहरी में होता था। पुनाह से पंद्रह दिन पहले ही किसानों को इसकी सूचना दे दी जाती थी। ज़मींदार की ओर से मोतीचूर के लड्डू बनवाए जाते थे। एक रुपये में एक लड्डू दिया जाता था।

किसानों में दो प्रकार के लोग थे। एक वे, जिनकी आय केवल अन्न से होती थी। उनकी हालत सामान्यतः कमजोर रहती थी। दूसरे वे किसान थे जिन्हें अन्न के साथ-साथ नकद आमदनी भी होती थी, जैसे कुछ जातियाँ दूध-दही बेचकर, कुछ सब्ज़ी बेचकर, कुछ पान बेचकर, और कुछ छोटे बर्तन बनाकर कमा लेती थीं।

'पुनाह' शब्द धर्म से जुड़ा हुआ था। लोगों के मन में धार्मिक भावना रहती थी, इसलिए यह आयोजन एक-दूसरे से आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा का रूप ले लेता था। एक लड्डू की कीमत मुश्किल से दो पैसे होती होगी, क्योंकि उस समय आठ आने में चीनी और एक रुपये में चार सेर गेहूँ या अन्य अन्न मिल जाता था, जिससे लड्डू बनाए जाते थे।

प्रतियोगिता दो प्रकार की होती थी, एक व्यक्ति विशेष के बीच और दूसरी जाति विशेष के बीच। लोग इस आयोजन में बेहद प्रसन्न रहते थे। गाँव-गाँव में ज़मींदार मालगुजारी से अधिक पुनाह के नाम पर रुपये वसूल करते थे। जिस समाज में मालगुजारी के चलते खेत नीलाम होते थे, उसी समाज में पुनाह के नाम पर यह लूट भी चलती थी। यही स्मृति डॉक्टर बनर्जी के मन में उमड़ आई।

मुस्कुराते हुए डॉक्टर बनर्जी ने सोनेलाल से कहा- "आप यहाँ से प्रसन्न होकर जा रहे हैं, यही मेरे लिए सबसे बड़ा खुशनामा है। भगवान करें, आपका परिवार फले-फूले।"

तीनों लोग गाँव की राह पकड़ लिए। बच्चा सुगिया की गोद में था, बर्तन की गठरी बहन के सिर पर थी और खाली हाथ सोनेलाल विदा हुए। सभी दरभंगा स्टेशन पर जाकर गाड़ी में बैठे।

अपने स्टेशन, यानी तमुरिया स्टेशन पर उतरकर तीनों हँसी-खुशी गाँव की ओर बढ़े। रेलवे कंपाउंड से निकलते ही सुगिया ने सोनेलाल से कहा- "दरभंगा जाते समय मैंने पचास मुर्ते साधु का भंडारा कबूल किया था। कर्ज नहीं

रखना चाहिए। कल ही वह वचन पूरा कर देते।”

सोनेलाल भी मन ही मन प्रसन्न था। घर में चावल-दाल था, कुछ रुपये भी बचे थे। मुस्कुराते हुए उसने सुगिया से कहा- “कल ही भंडारा करना संभव नहीं होगा। दही जमाना पड़ेगा, बाज़ार से सब्ज़ियाँ, नमक-तेल भी लाना होगा। चार-पाँच दिन में भंडारा कर देंगे। अभी दाई भी आई हुई है।”

‘दाई’ शब्द सुनते ही बहन बोली- “भैया, आप ऐसी मुसीबत में फँसे कि मुझे सब कुछ छोड़कर आना पड़ा। लेकिन आपको यह भी समझना चाहिए कि मेरे यहाँ भी कोई दूसरा काम सँभालने वाला नहीं है। मैं कल ही वापस लौट जाऊँगी।”

सोनेलाल का मन आनंद से भर उठा। जैसे चूल्हे पर रखा पानी आग की तपिश से नीचे से गर्म होकर ऊपर उठने लगता है, वैसे ही सोनेलाल का मन भी खुशी से उमड़ पड़ा। स्टेशन से निकलते ही उसने कहा- “तुम दोनों यहीं बैठो, मैं सामान खरीदकर अभी आता हूँ।”

सुगिया और बहन रास्ते के किनारे आम के पेड़ के नीचे बैठ गईं। सोनेलाल स्टेशन की ओर चल पड़ा।

स्टेशन के पास आठ-दस दुकानें थीं। एक मछली की, दूसरी मुर्गी और अंडे की, एक डेरी वाले दूध की, एक चाय की, एक पान की, और पाँच-छह सब्ज़ी की दुकानें।

सोनेलाल ने मन में सोचा कि सात-आठ तरह की सब्ज़ियाँ, दूध और अरहर की दाल भी खरीद लेनी चाहिए। छह महीने से न तो भरपेट भोजन किया और न ही मन को शांति मिली। इसलिए आज रात अपने पूरे परिवार और फुद्दिया दोनों भाइयों को बुलाकर दावत दूँगा।

रेलवे कंपाउंड में जो तरकारी, दूध, मछली आदि की दुकानें थीं, वे स्थायी नहीं थीं। लोग साधारण छप्पर टाँगकर दुकान चलाते थे। किसी ने रेलवे से दुकान का पट्टा नहीं लिया था। स्टेशन का स्टाफ ही दुकानदारों को दुकान लगाने की अनुमति देता था, और बदले में उन्हें अपने परिवार के लिए रोज़ सब्ज़ी मिल जाती थी। जब कभी किसी रेलवे अफसर के आने की योजना बनती, तो स्टाफ दुकानदारों को पहले से सूचित कर देता और सभी अपनी-अपनी छप्परें हटा लेते

थे।

दुकानों और रेलवे के बीच मोड़ पर खड़े होकर सोनेलाल सोचने लगे कि दुकान में जो अरहर की दाल बिकती है, वह कच्ची होती है, इसलिए उसे उलाना पड़ेगा। घर में तो लोग पहले ही दाल उला लेते हैं। बिना उलायी हुई अरहर की दाल खेसारी जैसी हो जाती है, लेकिन जब उसे उबालकर उसमें मसाला दिया जाए, तभी वह असली अरहर की दाल का स्वाद देती है। यही सबसे अच्छा होगा।

किराना दुकान पर पहुँचकर सोनेलाल ने एक किलो अरहर की दाल और आधा किलो चीनी खरीदी। दोनों का दाम चुकाकर वे सब्ज़ीवाले के पास गए और सात-आठ प्रकार की सब्ज़ियाँ भी खरीदीं, तले जाने वाले गोल बैंगन, गंगातट की बड़ी परवल और टेबे का हैदराबादी ओल। उन्होंने दो किलो दूध भी लिया।

सब सामान को गमछे में बाँधकर हाथ में लटकाए हुए, वे घूमते हुए सुगिया के पास पहुँचे।

गमछे में बँधा सामान देखकर बहन ने पूछा- “भैया, क्या-क्या खरीद लिया?”

उसके मन में यह भी आया कि शायद बच्चों के लिए लाई-मुरही भी खरीदी गई होगी। गठरी भारी लग रही थी।

बहन की बात सुनकर सोनेलाल हँसते हुए बोले- “दाई, खाने-पीने का सारा सामान ले आया हूँ। आज सब मिलकर अच्छा भोजन करेंगे। बेचारा फुद्दिया भी नौकर की तरह घर का काम करता होगा, इसलिए उसे और उसके दोनों भाइयों को भी बुलाकर खिलाएँगे। सब्ज़ी, दूध और दाल खरीद ली है। खाना पकाने में तुम तीनों एक-दूसरे की मदद करना। एक दिन तो तुम्हारी मेज़बानी भी होनी चाहिए। दाई, जितना सुख मुझे भाइयों से नहीं मिला, उससे अधिक तुझसे मिला है। तेरे उपकार को जीवन में कभी नहीं भूलूँगा। भगवान सभी को तेरे जैसी बहन दें।”

सोनेलाल की बात सुनकर बहन गदगद होकर बोली- “भैया, मैंने तो बस अपना फ़र्ज निभाया है। आप पर कोई उपकार नहीं किया। ऐसे वक्त में अगर तुझे न देखती, तो मेरी जैसी बहन के होने का क्या मतलब ही रह जाता?”

ननद की बात सुनकर सुगिया ने पति की ओर देखते हुए कहा- "दाई तो जाने की जल्दी में है। कह रही है कि कल सुबह लौट जाएगी। घर में एक भी नई साड़ी नहीं है जो इन्हें दी जा सके। बिना साड़ी दिए कैसे जाने देंगे? कैसा लगेगा?"

भाभी की बात सुनकर मुस्कुराती ननद बोली- "भाभी, चारों बच्चों के विवाह के लिए चार साड़ियाँ रख छोड़ी हैं। ऐसे समय में साड़ी की क्या ज़रूरत है। भैया ने तो काम चलाने के लिए कर्ज भी लिया है। अब फिर से मेरे लिए कर्ज करेंगे? अगर आप देना भी चाहेंगी, तो मैं नहीं लूँगी।"

घर पहुँचते ही पूरे परिवार और गाँव में खुशी की लहर दौड़ गई। तीनों बच्चे दौड़कर सुगिया से लिपट गए। सुगिया बच्चे को गोद में लेकर बार-बार चूमने लगी। जैसे जाड़े के मौसम में पेड़-पौधे पाले की मार से ठिठुर जाते हैं और धूप लगते ही नया जीवन पा लेते हैं, वैसे ही सबके मन में ताजगी लौट आई।

छह महीने का दुख-दर्द और विनाश जैसे सोनेलाल को छोड़ गया। पड़ोस के लोग आते-जाते सुगिया को देखते और दरभंगा में हुए इलाज की दास्तान सुनते।

कुछ ही देर में आँगन से बच्चों और पड़ोसियों की भीड़ छँट गई। तीनों खाना बनाने में लग गए। सोनेलाल को नहाए भी कई दिन हो गए थे। वे साबुन लेकर स्नान करने चले गए।

भोजन तैयार हुआ। सभी ने जी भरकर खाना खाया। खाते-खाते सबको नींद आने लगी। फिर सब अपने-अपने स्थान पर जाकर सो गए।

पत्नी के साथ सोनेलाल के लहेरियासराय जाने की चर्चा पूरे गाँव में होने लगी। एक ओर महिलाएँ सोनेलाल की प्रशंसा करतीं, तो दूसरी ओर पुरुषों के बीच इलाज के खर्च को लेकर बातें चलतीं।

सुबह ही स्कूल में छुट्टी देकर हीरानन्द चले आए। हीरानन्द को आते देख रामाकान्त ने पूछा- "सुबह ही स्कूल बंद कर दिया, मास्टर साहब?"

रामाकान्त को सोनेलाल के बारे में जानकारी तो थी, पर जिस गंभीरता से हीरानन्द सोच रहे थे, उस दृष्टि से उन्होंने कभी नहीं सोचा था। इसलिए उनके मन में वैसा विचार नहीं आया था।

हीरानन्द ने उत्तर दिया- “बच्चों को पढ़ाने में मन नहीं लग रहा था, इसलिए छुट्टी दे दी।”

“क्यों, पढ़ाने में मन क्यों नहीं लग रहा?”

हीरानन्द ने चिंतित स्वर में कहा- “एक तो बाढ़ की मार झेलने वाला बेचारा सोनेलाल, ऊपर से पत्नी की बीमारी का बोझ उस पर इस तरह टूट पड़ा है कि कोई कर्म बाकी नहीं रहा। यही बात मन में घूमती रही। पढ़ाने में तनिक भी मन नहीं लग रहा था।”

सोनेलाल की स्थिति सुनते ही रामाकान्त का मन भी उदास हो गया। जैसे हीरानन्द का मन पीड़ित था, वैसा ही भाव धीरे-धीरे उनके भीतर भी उतरने लगा। जैसे किसी के पैर में ठोकर लगते ही वह मुँह के बल गिर जाता है और छाती पर भी चोट पड़ती है, वैसे ही रामाकान्त के हृदय को भीतर से गहरी चोट लगी। पर वे चुपचाप मन ही मन कराहते रहे।

वे सोचने लगे कि जिस गाँव में चार-चार डॉक्टर हों, वहाँ के लोग फिर भी रोग से पीड़ित रहें, यह कितनी दुखद बात है। जिन डॉक्टरों को लोग भगवान मानकर पूजते हैं, उनका यह व्यवहार कहाँ तक उचित है? जो पढ़े-लिखे लोग अपने कुटुंब, गाँव, परिवार और समाज से स्नेह नहीं रखते और केवल अपने सुख-भोग में डूबे रहते हैं, उन्हें छठ्ठी के दिन दाई-माई का आशीर्वाद आखिर क्यों मिला?

फिर उनके मन में यह विचार भी आया कि जैसे पशुओं को अचानक डकहा बीमारी पकड़ लेती है, वैसे ही मनुष्यों को भी कभी-कभी कोई रोग एकाएक घेर लेता है। मेरे चारों बेटे-बहुएँ डॉक्टर हैं, लेकिन अगर कहीं मुझे या महेंद्र की माँ को ही अचानक कोई बीमारी पकड़ ले, तो वे हमारे लिए क्या करेंगे?

रामाकान्त का मन भारी हो गया। वे चुप हो गए। ऐसा लगा, मानो उनके मुँह से वाणी ही छिन गई हो। उन्हें यह भी महसूस हुआ कि जैसे उनका आख़िरी सहारा भी टूटता जा रहा हो।

तीन दिन बाद सोनेलाल ने भंडारे का आयोजन किया। खाने-पीने का इंतज़ाम बड़े उत्साह से किया गया। तुलसी-फूल वाला चावल, अरहर की दाल, ग्यारह प्रकार की सब्ज़ियाँ और साथ में दही-चीनी की उत्तम व्यवस्था की गई।

गाँव में दो पंथ के साधु रहते थे। पहले पंथ के महंत थे रामापति दास, और दूसरे पंथ के गंगा दास। रामापति दास ने गाँव में राम-जानकी मंदिर का निर्माण करवाया था। दोनों ही शाम को पूजा करते थे, पर गंगा दास की सेवा भावना कुछ अलग थी। इन दोनों पंथों के अनुयायी अपने-अपने गाँवों और अन्य स्थानों में फैले हुए थे।

सोनेलाल के मन में कोई पक्षपात या छल-प्रपंच का भाव नहीं था। उन्होंने पच्चीस मुर्ते का दल रामापति दास को और पच्चीस मुर्ते का दल गंगा दास को सौंपा। साधुओं को बुलाने के बाद उन्होंने अपने घर-द्वार को अच्छी तरह साफ़ किया, बर्तन माँजकर तैयार किए और केले के पत्ते काटकर धोकर रख दिए।

एक ही गाँव में रहने के बावजूद दोनों पंथों में आकाश-पाताल का अंतर था। पहले पंथ में ऊँची जातियों का प्रभुत्व था, जबकि दूसरे पंथ में निम्न जातियाँ अधिक थीं। वहाँ जात-पात और छूत-अछूत का कोई भेद नहीं था। भंडारा दिन में होना तय था।

सुबह ही दूसरे पंथ के साधु आ गए। सोनेलाल ने उनके चरण पखारे। इसके बाद साधुजनों ने भजन आरम्भ कर दिया। भजन शुरू होते ही आसपास के लोग और बच्चे इकट्ठा होने लगे। पूरा आँगन भर गया।

तीन भजनों के बाद रामापति दास अपने चेलों के साथ पहुँचे। सामने पहले से बैठे दूसरे पंथ के साधुओं को देखकर उनके मन में ईर्ष्या हुई, लेकिन क्रोध को दबाकर वे सोनेलाल के दरवाज़े पर आकर बैठ गए।

बैठते ही उन्होंने सोनेलाल से कहा- "हमारे बैठने का इंतजाम अलग जगह पर कीजिए।"

रामापति दास को प्रणाम कर सोनेलाल ने नम्रतापूर्वक इशारे से कहा- "आप सब यहीं द्वार पर बैठ जाइए।"

रामापति दास सोचने लगे, अगर अब इन्हें कहीं और बैठने को कहूँ, तो शायद इतनी जल्दी वह संभव नहीं होगा। झगड़ा किससे करूँ? घरवाले क्या कर लेंगे? जैसे हमें दल मिला है, वैसे ही उन्हें भी दल देकर बुलाया गया है। अगर मैं साधुओं से उलझता हूँ, तो दो धार्मिक पंथों का विवाद खड़ा हो जाएगा। लेकिन यहाँ तो भंडारा है, पंथों की श्रेष्ठता सिद्ध करने का मंच नहीं। और अगर मैं खुद

को पीछे खींच लूँ, तो यह पूरी तरह कायरता हो जाएगी।

रामापति दास अजीब स्थिति में पड़ गए। चेहरे पर जमे भाव के साथ वे दरवाज़े और सभा के बीच खूँटे की तरह खड़े रहे, न आगे बढ़े, न पीछे हटे। उनके मन में यह सवाल भी उठ रहा था कि जो लोग मेरे साथ आए हैं, अगर मैं उनसे विचार पूछूँ और वे मेरे मन के विपरीत बोल दें तो क्या होगा? आज तक तो मैंने कभी ऐसा नहीं किया। करना उचित भी नहीं होगा। गुरु और शिष्य के बीच का अंतर मिट जाएगा।

उनकी चुप्पी गहराती जा रही थी। चेहरे पर पसीना छलक आया। उन्होंने कंधे पर लटकी हरमुनिया उतारी और धीरे से ओसारे की चौकी पर रख दी। उन्हें देखकर ढोलकिया ने भी अपनी ढोलक एक ओर रख दी। फिर धीरे-धीरे सभी ने अपने-अपने कमंडल और ग्लास नीचे रख दिए और खड़े हो गए। एक कारण यह भी था कि बिना चरण धोए कैसे बैठते? और जब गुरु महाराज नहीं बैठ रहे, तो बाकी कैसे बैठते?

जब रामापति दास ने सबका सामान नीचे रखा देखा, तो उन्हें बोलने का अवसर मिला। दुखी मन से बोले- “जब सबका यही मन है, तो क्यों न दरवाज़े पर ही बैठ लिया जाए? घरवाले भी तो आदर कर ही रहे हैं।”

एक ओर उन्हें यह पीड़ा हो रही थी कि वे स्वागत की गरिमा में पीछे छूट रहे हैं, तो दूसरी ओर यह संतोष भी था कि घरवालों ने उनके चरण धोकर विशेष सम्मान दिया है। धीरे-धीरे सबने चरण पखारकर बैठना शुरू कर दिया।

सुगिया पूरे आँगन में बिड़नी की तरह बेचैन घूम रही थी। कभी घर के भीतर जाकर देखती कि कहीं बिल्ली दही को न छू ले। कभी ओसारे में रखे बर्तनों की ओर जाती, यह देखने कि कहीं कोई कौआ उन्हें गंदा न कर दे। फिर आँगन में रखे टौकना, कराह और बाल्टी पर निगाह डालती, कहीं बच्चे उन्हें उलट-पलट न दें। कुछ देर बाद वह दलान के पीछे खड़ी होकर दरवाज़े और खलिहान की ओर देखने लगती, जहाँ भीड़ जुटी थी और किसी भी पल झगड़ा भड़क उठने का डर बना हुआ था।

सुगिया के भीतर एक अनजानी घबराहट समा गई थी। उधर, सोनेलाल के माथे से पसीना बहते हुए बालों को पार कर गर्दन तक पहुँच रहा था और

उनकी धोती को भिगो रहा था।

भजन सुनने वालों में बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष, गाँव के हर वर्ग के लोग बैठे थे। मोतिया की माँ, जो लगभग पचास वर्ष की वृद्धा थीं, जब भजन बंद हुआ, तो उन्होंने बुचाई दास को टोका- "हे बुचाई दास, बिना भजन गाए अगर तुम पंगहैत कर दोगे तो क्या पाप नहीं लगेगा?"

मोतिया की माँ की खुरदरी बात सुनकर बुचाई दास मुस्कराए और बोले- "अरे, अभी तो ज़रा गाजा पीने का समय हो गया है। पहले थोड़ा कश ले लूँ, फिर तुम्हें नाच कर भी दिखा दूँगा और कबीर साहब ने क्या कहा है, वह भी सुना दूँगा। ज़रा धैर्य रखो। अरे रघुदास, जल्दी से गुल सुलगा दो।"

बिना किसी साज-बाजे के ही बुचाई दास गुनगुनाने लगे,

"हटल रहियो संतों, बिलइया मारे मटकी...।"

बुचाई दास की पंक्ति और चेहरे की चमक देखते ही बच्चे, जवान और औरतें ऐसे हँस पड़े जैसे खपरे की चने का लावा अचानक फूट उठा हो।

दलान और खलिहान, दोनों जगह भजन शुरू हो गया। दूसरी पंथ की मंडली में ढोलक, झांझ, खोंजरी के साथ ताली भी बजने लगा। वहीं, पहले पंथ की ओर से पखावज, झालर, हरमुनिया और सितार की संगत में एक ही सुर, एक ही लय और एक ही ताल में भजन उठा- "केशव, कही न जाए का कहिए!"

लेकिन दूसरी पंथ की ओर से इतना तेज़ स्वर गूंज रहा था कि पहले पंथ का भजन सुनाई ही नहीं दे रहा था। महंत रामापति दास बाहर निकलकर इधर-उधर घूमने लगे और दोनों ओर के भजनों को सुनने की कोशिश करने लगे। मगर रमऊथ मंडली का भजन दलान से बाहर आ ही नहीं रहा था। इससे रामापति दास भीतर ही भीतर तमतमा उठे और मन ही मन बड़बड़ाने लगे।

आख़िरकार उन्होंने सोनेलाल को आवाज़ लगाकर कहा- "यह कौन-सा बखेड़ा खड़ा कर दिया?"

थरथराते हाथ जोड़कर सोनेलाल बोले- "सरकार, हम तो अनाड़ी हैं। समझ ही नहीं पाए कि ऐसा हो जाएगा। जो हो गया, सो हो गया। आप नाराज़ मत होइए। अगर कोई भूल हो गई हो, तो हमें माफ कर दीजिए। आप सब तो समुद्र जैसे हैं, अच्छे-बुरे को पचाने की क्षमता रखते हैं। अभी तक भोजन बनाने

की अहरी भी नहीं चढ़ाई गई है। बस आप आदेश दीजिए।"

रामापति दास तरंग में आकर बोले- "हमारे जितने साधु हैं, वे अलग में ही अहरी चढ़ाते हैं और भोजन भी वहीं बनाते हैं। इसलिए बर्तनों से लेकर चावल-दाल, नमक-तरकारी, सब कुछ हमें अलग ही दे दो।"

"बहुत ठीक," कहकर सोनेलाल ने सारा सामान दो हिस्सों में बाँट दिया। चार-चार रसोइए भानस की तैयारी में लग गए। दो अहरियाँ अलग-अलग जगहों पर जलाई गईं। सोनेलाल बर्तन, चावल और दाल उठाकर दोनों अहरियों के पास पहुँचाते रहे और सब कुछ सलीके से सजा दिया।

दलान का भजन बंद हो गया, लेकिन खलिहान में भजन चलता रहा।

बुचाई दास आगे थे। भजन गाने वाले गोल घेरा बनाकर बैठे थे। बीच में थोड़ी जगह खाली छोड़ी गई थी, उसी में बुचाई दास खड़े होकर पंक्तियाँ गाते, नाचते और बीच-बीच में उनका अर्थ भी समझाते। रामापति दास ने हाथ से इशारा करके सोनेलाल को बुलाया और कहा- "बहुत शोर हो रहा है। भजन बंद करवा दो।"

सोनेलाल बुचाई दास के पास आए और बोले- "गोसाईं साहब, भजन बंद कर दीजिए। महंथजी को तकलीफ़ हो रही है।"

यह सुनते ही छोटे-बड़े सभी एक साथ बोल उठे- "हम लोग बिना भजन गाए पंगहैत नहीं करेंगे।"

सोनेलाल स्तब्ध रह गए। पूरा शरीर केले के पेड़ की तरह काँपने लगा। लेकिन वे कर भी क्या सकते थे? कोई भी साधु अकेला नहीं आया था, हर मंडली का अपना महत्व था, जिसे सभी समझते थे। आँगन के टाट के पास खड़ी सुगिया मन-ही-मन सोच रही थी कि कहीं साधु आपस में झगड़कर बिना भोजन किए ही न लौट जाएँ। ऐसा हुआ तो उसका कौबुला अधूरा रह जाएगा। और अगर कौबुला अधूरा रहा, तो दु:ख फिर लौट सकता है।

"अगर दु:ख सिर पर आ गया तो जीऊँगी या मरूँगी, यह कौन जानता है?"

हे भगवान, साधुओं की बुद्धि बदल देना, कहीं वे विचलित न हो जाएँ। यही सोचते-सोचते वह भीतर ही भीतर भगवान का जाप करने लगी। दो बजते-

बजते निर्गुण पंथ की ओर भोजन तैयार हो गया। भोजन बनते ही गंगा दास ने सोनेलाल से कहा- “भोजन बन गया है। अब खाने की जगह तैयार करो।”

गंगा दास की आवाज सुनते ही सोनेलाल का दिल और भी ज़ोर से काँपने लगा। अब क्या होने वाला है? एक तरफ साधु भोजन के लिए तैयार बैठे हैं, और दूसरी ओर उधर खाना अभी पक ही रहा है।

जब से साधु दरवाज़े पर आए थे, तभी से झंझट चला आ रहा है। किसी तरह अब तक बात सँभाली गई, लेकिन अब इस आख़िरी क्षण में कहीं फिर कोई झगड़ा न भड़क उठे, यही डर सताने लगा। सोनेलाल बाँस की डलिया लेने आँगन में गए। वहाँ पहुँचकर डलिया देखने के बहाने कुछ देर बैठ गए। उनका बैठना दरअसल समय बिताने की तरकीब थी। थोड़ी ही देर में उन्होंने सुन लिया कि उधर भी खाना बनकर तैयार हो गया है।

तब वे डलिया उठाकर आँगन से निकलकर खलिहान की ओर बढ़े।

खलिहान पहुँचकर उन्होंने पानी के छींटे मारकर ज़मीन को साफ किया, फिर खरही बिछा दी। जैसे ही खरही बिछी, साधु धीरे-धीरे उठकर आकर उस पर बैठ गए। बैठते ही पत्तलें उठीं। पत्तलें बाँटते ही रामापति दास अपने पंक्ति में घूम-घूमकर जय-जयकार करने लगे। उधर दूसरी ओर भजन-मंगल शुरू हो गया।

सभी साधुओं ने भोजन कर लिया। भोजन समाप्त होते ही वे अपने-अपने स्थान से उठ गए। दूसरी पंथ की पंक्ति में पत्तलों पर एक भी दाना या वस्तु छुआ तक नहीं गया था, जबकि पहली पंथ की पंक्ति की पत्तलें ऐसी लग रही थीं, मानो किसी बरात का भोजन हुआ हो। साधुओं के उठते ही चारों ओर से कौए और कुत्ते आ गए और जो कुछ बचा था, उसे खाने लगे।

भोजन समाप्त होते ही दूसरे पंथ के साधु ढोलक और झांझ समेटने लगे और विदा होने को तैयार हो गए।

मगर रमऊथ पक्ष की ओर से दान-दक्षिणा का प्रसंग उठ खड़ा हुआ।

अनाड़ी सोनेलाल सिक्कों की चँगेरी हाथ में लिए बीच में खड़े थे। रामापति दास ने हाथ के इशारे से उन्हें पास बुलाया और कहा- “अब हम लोग चलेंगे, इसलिए जल्दी से दक्षिणा लाओ।”

सोनेलाल चौंक गए- “कैसी दक्षिणा?”

रामापति दास ने आदेशात्मक स्वर में कहा- “एक सौ इक्यावन रुपए का चढ़ावा, एक सौ एक हमारा, और साधुओं को एकावन-एकावन देकर, भोजन बनानेवालों को इक्यासी-इक्यासी दे देना।”

भोजन बनानेवालों और महंतजी की दक्षिणा तो सोनेलाल को समझ में आ गई, लेकिन...

उधर, गंगा दास और बुचाई दास भी सब कुछ देख-सुन रहे थे।

बुचाई दास ने गंगा दास की ओर आँख से इशारा करते हुए कहा- “अधिकार तो अधिकार है। रमापति दास जितनी दक्षिणा लेंगे, उससे एक पैसा भी कम हम नहीं लेंगे।”

हिसाब जोड़कर सोनेलाल आँगन से रुपए लाए और रमापति दास के हाथ में दे दिए। रुपए ठीक से गिनकर रमापति दास ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उठकर विदा हो गए। रमापति दास के पीछे-पीछे सोनेलाल भी कुछ दूर तक उन्हें विदा करने गए, फिर लौटकर गंगा दास के पास आकर खड़े हो गए और पूछा,

“गोसाईं साहब, आपकी दक्षिणा कितनी होगी?”

सोनेलाल के दुःख से भरे मन को गंगा दास समझ गए। उनके भीतर दया उमड़ पड़ी और हृदय धीरे-धीरे बर्फ की तरह पिघलने लगा।

कुछ देर तक वे मौन रहे। असमंजस में थे कि क्या कहें। फिर उन्होंने बुचाई दास की ओर देखते हुए कहा- “क्या कहते हो बुचाई दास? तुम भी तो आगे बैठे हो। तुम लोगों. की राय लिए बिना मैं सोनेलाल से क्या कहूँ? यहाँ दो बड़े प्रश्न हैं।

पहला, दोनों पंथों के अधिकार का सवाल है। अगर हम कुछ कम-ज्यादा कर बैठे, तो दूसरे पंथ को मुँह नीचा करना पड़ेगा। दूसरा, सोनेलाल ने कौबुला पूरा करने के लिए ही यह भंडारा कराया है। एक तो बीमारी के झंझट में पड़कर बेचारा पहले ही दुःखी है, उस पर हम लोग और बोझ डालें, यह मुझे ठीक नहीं लगता।”

गंगा दास की बात सुनकर दूसरे पंथ के साधु चुप हो गए और मन ही मन सोचने लगे कि अब क्या किया जाए। लेकिन सोचने का तरीका हर किसी का अलग होता है। एक ही प्रश्न का उत्तर खोजने में वैरागी की दिशा अलग होती है,

रागी की अलग। यद्यपि दोनों विद्वान ही क्यों न हों, उनकी प्रवृत्तियाँ भिन्न रहती हैं।

यही नहीं, आध्यात्मिक विचारक और भौतिकवादी सोच रखनेवाले व्यक्ति के बीच भी यही अंतर दिखाई देता है। और निष्पक्ष विचारक की दिशा फिर एकदम अलग होती है।

पंथों में बँटे समाज में निष्पक्ष रह पाना आसान नहीं होता, क्योंकि पंथ केवल विचार की नहीं, बल्कि व्यवहार की भी चीज़ है। वह परिवार, समाज और जीविका से जुड़ा होता है।

किसी विषय पर गंभीर चिंतन करने में एक और उलझन होती है, भूखे और पेट भरे शरीर का मन। मन को सबसे अधिक प्रभावित करती हैं शरीर की इंद्रियाँ। इंद्रियों को नियंत्रित करती है शरीर की ऊर्जा। और यह ऊर्जा मिलती है उन वस्तुओं से, जो ऊर्जा उत्पन्न करती हैं। ये वस्तुएँ भोजन से मिलती हैं।

हालाँकि, ऊर्जा केवल खाने-पीने से ही नहीं बनती। ऐसी अन्य चीज़ें भी हैं जो ऊर्जा देती हैं, लेकिन उनका 'भोजन' शरीर के भोजन से अलग होता है।

बीच में बात सँभालते हुए बुचाई दास ने गंगा दास को सुझाव दिया,

"गोसाईं साहब, हम लोग भी अपने पंथ के सिपाही हैं। इसलिए मरते दम तक पीछे हटना हमारे लिए धोखा होगा। पवित्र धर्म की रक्षा करना भी हमारा दायित्व है। सोनेलाल ने रमापति दास को जितना रुपया दिया है, उतना ही हमें भी दिलवा दीजिए।

हाँ, उनकी छह महीने की पीड़ा और तकलीफ़ की चर्चा हम सबने सुनी है, इसलिए उनके दुःख में सहभागी होकर हम वो पैसे पारित करके उन्हें लौटा देंगे।"

और वही हुआ।

सबने हँसी-खुशी भंडारा पूरा किया और जय-जयकार करते हुए विदा हो गए। ❑

4.

मद्रास रेलवे स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही रामाकान्त ने राहत की एक लंबी साँस ली। लगातार दो रात और तीन दिन तक गाड़ी में बैठे रहने से तीनों, रामाकान्त, श्यामा और जुगेसर, के शरीर थककर अकड़ गए थे। जैसे ही गाड़ी रुकी, रामाकान्त ने फौरन प्लेटफॉर्म की ओर देखा। दूसरी और तीसरी लाइन पर भी कई गाड़ियाँ खड़ी थीं। यह उनका अपना छोटा स्टेशन नहीं था जहाँ गाड़ियाँ कभी-कभार आती हैं, भीड़-भाड़ कम होती है और पुल की ज़रूरत नहीं पड़ती। वहाँ तो हर ओर खुला रास्ता होता था, जिधर चाहो उधर निकल जाओ, न गाड़ियों की लंबी कतार, न पटरियों की भरमार।

गाड़ी में रामाकान्त को कोई अनजानापन नहीं लगा, क्योंकि गाड़ी भी बिहार की थी और यात्री भी अधिकतर वहीं के थे।

गाड़ी से यात्री उतरने लगे। तीनों ने अपनी-अपनी झोली और गठरी उठाई और उतरकर पुल पर चढ़ने लगे। पुल पर भीड़ तो थी, लेकिन अपने स्टेशन जैसी धक्कामुक्की नहीं थी। यह देखकर रामाकान्त सतर्क हो गया और उसने श्यामा और जुगेसर को भी सावधान कर दिया। अब तक उन्हें सिर्फ दोनों ओर खड़ी गाड़ियाँ ही दिखाई दे रही थीं, लेकिन जैसे-जैसे वे पुल पर चढ़ते गए, तरह-तरह के दृश्य सामने आते गए।

पुल की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते श्यामा और रामाकान्त की जाँघों में खिंचाव आ गया। ऊपर पहुँचते ही रामाकान्त ने जुगेसर से कहा- “जुगे, मोटरी ज़रा किनारे रख दो और थोड़ा तम्बाकू लगा लो, जब तक मैं भी थोड़ा विश्राम कर लूँ।”

जुगेसर ने गठरी ज़मीन पर रख दी और तम्बाकू मलने लगे। गाड़ी के परिचित यात्री अब तक बिखर चुके थे। पुल और नीचे प्लेटफॉर्म पर अब नए-नए चेहरे दिखने लगे थे। न केवल लोग नए थे, बल्कि उनका पहनावा और बोली भी

भिन्न थी। तम्बाकू खाकर तीनों ने गठरी-झोले उठाए और पुल से उतरकर किसी से रास्ता पूछने की सोची, लेकिन किसी से बात करना सहज नहीं लग रहा था। रामाकान्त लोगों को देख रहे थे और लोग भी उन्हें, मानो एक-दूसरे के लिए तमाशा बन गए हों।

रामाकान्त और जुगेसर की धोती देखकर वहाँ के लोग हैरानी से निहारते, और रामाकान्त भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों के पहनावे को देखकर मन ही मन मुस्कराते। अनुभवी लोग तो समझ जाते कि ये बिहारी हैं, पर जिन्हें पता नहीं था, वे खड़े-खड़े उन्हें परखते रहते। इसी बीच एक झुंड स्त्रियाँ रास्ते से गुजर रही थीं, बातचीत करती हुईं, और उन्होंने भी पुरुषों की तरह ढेका कमर में खोंस रखा था। औरतों का ढेका देखकर श्यामा मुस्कराए और रामाकान्त से बोले- "देखिए, यहाँ की औरतें भी ढेका कमर में खोंसती हैं।"

श्यामा की बात सुनकर रामाकान्त हँस पड़े, लेकिन कुछ बोले नहीं। वे चारों ओर नजर उठाकर देखते रहे और मन ही मन सोचते रहे, वाह, यहाँ की सरकार कितनी साफ-सुथरी जगह बनाए हुए है। कहीं भी बैठो, कहीं भी सो जाओ, हर जगह सुविधा है। हमारे यहाँ ऐसा कौन-सा स्टेशन है जहाँ घुटनों भर गंदगी न फैली रहती हो। प्लेटफॉर्म पर केले के छिलके, पान की पीक, मूँगफली के छिलके, कागज़ के टुकड़े और रंग-बिरंगी गुटखे की पन्नियाँ बिखरी रहती हैं। इतना ही नहीं, हर ओर भिखारी, जेबकतरे और उचक्के रेलवे स्टेशन से लेकर बस स्टैंड तक डेरा जमाए रहते हैं। पर यहाँ कुछ भी ऐसा नहीं, एक भी उचक्का नज़र नहीं आता। गाड़ी की थकान से तीनों के शरीर चूर हो चुके थे, लेकिन कर ही क्या सकते थे। जुगेसर तम्बाकू मलते रहे और रामाकान्त मन ही मन सोचते रहे कि बड़े ही संकट में फँस गए हैं। अब क्या होगा, कुछ समझ नहीं आ रहा था। देर तक तीनों उठते-बैठते रहे। जिस गाड़ी से आए थे, उसका कोलाहल भी धीरे-धीरे छँट गया। भीड़ छँटी और लोग इक्का-दुक्का रह गए। उसी समय एक व्यक्ति मोटरसाइकिल पर आकर रामाकान्त के सामने रुका। रामाकान्त ने उसे ध्यान से देखा और वह व्यक्ति भी उन्हें देखने लगा। नजरें मिलते ही दोनों के बीच एक तरह की पहचान महसूस हुई।

रामाकान्त उठकर उसके पास गए और जेब से पर्ची निकालकर उसे दिखा दी। पता देखकर उस व्यक्ति ने हाथ के इशारे से एक टेम्पो वाले को बुलाया।

टेम्पो आते ही उसने पता बताया और वहाँ तक छोड़ने को कह दिया।

तीनों टेम्पो में बैठकर रवाना हो गए। ड्राइवर न हिन्दी जानता था और न मैथिली, इसलिए रास्ते भर उससे कोई बातचीत नहीं हो सकी। स्टेशन से बाहर निकलते ही रामाकान्त बार-बार आँखें उठाकर बाज़ार और लोगों को देखने लगे। उन्हें यह जगह अपने इलाके से बहुत अलग नहीं लगी। मन ही मन वे अपने गाँव और इस नए शहर की तुलना करने लगे।

वहाँ गोरे और साँवले रंग के लोग मिलते हैं, लेकिन यहाँ साँवले रंग के लोग अधिक दिखाई दिए। उनकी बोली भी अलग थी, जिसमें लगातार गूंजती मधुमक्खियों जैसी भनभनाहट थी। फिर भी, अपने यहाँ जैसी ठगी की प्रवृत्ति यहाँ कहीं नहीं दिखी।

बाज़ार से गुजरते हुए उन्हें गरीबी और अमीरी का कोई स्पष्ट अंतर नज़र नहीं आया, लेकिन अपने इलाके के बाज़ार की तुलना में यह जगह उन्हें अधिक साफ-सुथरी और आकर्षक लगी। गंदगी का कहीं नामोनिशान तक नहीं था।

मुख्य मार्ग से पूरब की ओर एक गली जाती थी। उसी गली में डॉक्टर महेन्द्र का घर और क्लिनिक था, जबकि वह अस्पताल जहाँ वे नौकरी करते थे, मुख्य मार्ग पर ही स्थित था।

गली के मोड़ पर टेम्पो चालक ने तीनों को उतार दिया और किराया लेकर आगे बढ़ गया। सड़क के दोनों ओर बड़े-बड़े मकान थे। मोड़ पर ही तीनों ने अपनी गठरियाँ नीचे रख दीं और वहीं बैठ गए। यात्रा की थकान से उनके शरीर इतने चूर हो चुके थे कि खड़ा रहना भी मुश्किल हो गया था।

जैसे अमावस्या की रात में बादलों से अंधकार छा जाता है, कुछ वैसा ही रामाकान्त को महसूस हो रहा था। एक तो अनजाना स्थान, ऊपर से भाषा का भेद, आज उन्हें पहली बार यह अनुभव हुआ कि मनुष्यों के बीच भाषा कितनी बड़ी दूरी पैदा कर देती है।

श्यामा मन ही मन सोच रहे थे, हे भगवान, कैसी जगह है जहाँ आते ही आदमी खो जाता है। तीनों निराशा से घिरे चुपचाप बैठे थे। रामाकान्त सोच रहे थे कि अब क्या करें। जीवन में उन्होंने ऐसा संकट पहले कभी नहीं देखा था। ऐसा लग रहा था जैसे उनकी सारी समझदारी और चतुराई कहीं खो गई हो।

रामाकान्त ने जुगेसर से कहा- "जुगेसर, मन घबराने लगा है। थोड़ा तम्बाकू लगा दो।"

जुगेसर तम्बाकू मलने लगे। सबके चेहरे उदास थे और वे नीचे नज़र गड़ाए बैठे थे।

उसी समय रामाकान्त का बड़ा बेटा डॉक्टर महेन्द्र फिएट कार से अस्पताल से घर लौट रहा था। सड़क के किनारे तीनों को बैठे देखकर वह पहले थोड़ी देर के लिए ठिठका, फिर चेहरा पहचानकर मेन रोड से अपनी कार गली में मोड़ दी। कार से उतरकर वह पास आया और पिता के चरण छुए। फिर माँ के चरण स्पर्श किए और पिता के हाथ से झोला लेकर कार में रख दिया। पीछे-पीछे श्यामा और जुगेसर भी उठे और कार की ओर बढ़े। जुगेसर ने अपनी गठरी कार में रख दी। चारों लोग कार में बैठे और गाड़ी आगे बढ़ चली।

महेन्द्र स्वयं गाड़ी चला रहे थे। माँ ने यह देखकर पूछा- "बेटा, मोटर खुद चलाते हो?"

"हाँ," महेन्द्र ने उत्तर दिया।

"ड्राइवर नहीं है?"

माँ का प्रश्न सुनकर महेन्द्र मुस्कराए और बोले- "जब मैं खुद गाड़ी चला सकता हूँ तो फिर ड्राइवर किसलिए रखूँ। व्यर्थ का खर्च ही बढ़ेगा।"

घर के सामने गाड़ी पहुँचते ही महेन्द्र ने हॉर्न बजाया। आवाज़ सुनकर भीतर से नौकर आया और गेट का ताला खोल दिया। महेन्द्र ने गाड़ी भीतर ले जाकर खड़ी की। फिर उसने गाड़ी के तीनों दरवाज़े खोलकर सबको उतारा।

गाड़ी से उतरते ही रामाकान्त मकान को देखने लगे, तीन मंज़िला विशाल भवन। सामने फूलों की क्यारी। रामाकान्त मन ही मन सोचने लगे कि गाँव में धन-संपत्ति तो बहुत है, पर ऐसा घर तो अपने इलाके में भी किसी का नहीं। उनके मन में विचार आया कि क्या महेन्द्र ने यह मकान अपनी कमाई से बनाया है, या बैंक से ऋण लेकर, या फिर कहीं किराए पर लिया है। हालाँकि उसने कहा था कि ज़मीन खरीदकर मकान बनाया है।

घर की बनावट देखकर सब अचंभित रह गए। इतना भव्य मकान बनाने में पचास लाख से कम तो खर्च नहीं हुए होंगे। इतनी जल्दी उसने कितनी कमाई

कर ली! सबसे आगे महेन्द्र और पीछे-पीछे तीनों लोग घर के भीतर गए। हर कमरे में टाइल्स लगी थीं। पहले दिन ही सबके पाँव फिसल रहे थे।

डॉ. महेन्द्र सबसे ऊपर की मंज़िल पर ले जाकर एक कमरा रामाकान्त और जुगेसर को समझा गए और दूसरा कमरा माँ को दिया। हाथ-पाँव तक नहीं धोए थे, इसलिए रामाकान्त सीधे पलंग पर जा पड़े। कमरे में पंखा चल रहा था। भीतर दो पलंग लगे थे, दो मेज़ें थीं, एक बड़ा आईना था, और दीवार पर देवी-देवताओं के चित्र सजे थे। कमरा नीले रंग से रंगा गया था। दो अलमारियाँ भी दीवार से लगी हुई थीं। पलंग पर मोटे गद्देदार बिस्तर बिछे थे और मसनदें रखी थीं। दरवाज़े के पास एक बेसिन भी था, जहाँ मुँह-हाथ धोने की सुविधा थी।

पलंग पर लेटे-लेटे रामाकान्त चारों ओर देख ही रहे थे कि तभी नौकर जलपान और पानी लेकर आ पहुँचा। रामाकान्त उठकर ‘कुल्ला’ करते हुए जलपान करने लगे। दो कौर खाकर उन्होंने पानी पिया और चाय की चुस्की ली। जुगेसर ने भी जलपान किया और चाय पी, जबकि महेन्द्र हाथ में कप लिए खड़े-खड़े चाय पी रहे थे।

चाय की चुस्की लेते हुए रामाकान्त ने महेन्द्र से पूछा- “बौआ, यह मकान तुम्हारा ही है?”

“हाँ।”

“बनाने में कितना खर्च हुआ?”

खर्च की बात सुनकर महेन्द्र मुस्कराए और बोले- “बाबू, खर्च तो डायरी में लिखा है, इसलिए देखे बिना ठीक-ठीक नहीं बता सकता। हाँ, इतना याद है कि ज़मीन तीन लाख में खरीदी थी। ज़मीन मिल गई तो सोचा, चारों जने कमाएँगे और घर भी बना लेंगे। कितना खर्च होता गया, इसका ठीक हिसाब नहीं है। हाँ, बड़े-बड़े खर्च डायरी में दर्ज हैं, पर बिना देखे कुछ कहना मुश्किल है।”

टेबल पर कप रखकर रामाकान्त बोले- “चार दिन नहाए बिना हो गए। शरीर में तनिक भी ताज़गी नहीं है। पहले नहा-धोकर भोजन करेंगे, फिर भरपूर नींद लेंगे।”

“बहुत अच्छा।”

यह कहकर महेन्द्र कमरे से बाहर निकले और नौकर से बोले- “फोन

करके सबको बता दो कि माँ-बाबू आ गए हैं।"

नौकर को कहकर महेन्द्र पिता के पास लौटे और बोले- "चलिए, स्नानघर दिखा देता हूँ।"

आगे-आगे महेन्द्र और पीछे-पीछे रामाकान्त व जुगेसर चले। स्नानघर का दरवाज़ा खोलते हुए महेन्द्र ने कहा- "यहाँ दो जुड़े हुए कमरे हैं, दोनों मिलकर नहा लीजिए।" इतना कहकर उन्होंने दोनों कमरों की बत्तियाँ जला दीं।

दोनों स्नानघर को निहारते रह गए। वहाँ पानी की टंकी और झरना था, साबुन रखने की टिक्की और कपड़े टाँगने की अलगनी जैसी सारी सुविधाएँ थीं।

रामाकान्त ने जुगेसर से कहा-

"जुगे, चाय तो पी ली, पर तम्बाकू खाए बिना मन संतुष्ट नहीं हुआ। पहले तम्बाकू ले आओ।"

जुगेसर स्नानघर से निकलकर कमरे में आया और तम्बाकू चुनने लगा। उसने तम्बाकू रामाकान्त को दिया और स्वयं भी लिया। थूक फेंकते हुए रामाकान्त बोले-

"जुगे, हम भी गाँव में सम्पन्न आदमी हैं, पर आज तक ऐसा स्नानघर और शौचालय नहीं देखा। रोज़ खुले मैदान में शौच के लिए जाते हैं और तालाब में नहाते हैं।"

"काका, हम सब गाँव में रहते हैं। यह सब शहर की सुविधाएँ हैं। अगर शहर के लोग गाँव की तरह रहेंगे तो कैसे काम चलेगा? यहाँ लोग अधिक हैं और जगह कम है, इसलिए उन्हें इस तरह की व्यवस्था करनी पड़ती है। फिर भी पोखरे में पानी में उतरकर नहाने का संतोष यहाँ नहीं मिल सकता। यहाँ तो सिर्फ पानी डालकर नहाना होता है।"

"ऐसी ज़िंदगी जीने वाले लोग गाँव में रह पाएँगे, जुगे?"

"कैसे रह पाएँगे?"

"पिता कहा करते थे कि मनुष्य का शरीर भले ही एक जैसा हो, लेकिन जीवन के ढंग उसे दो रूपों में बाँट देते हैं।"

"आपकी बात समझा नहीं, काका।"

"देखो, जो आदमी रोज़ भारी काम करता है, अगर उसे एक दिन काम न मिले, तो उसका शरीर दुखेगा और भोजन में स्वाद नहीं लगेगा। इसी तरह, जो हल्का काम करने का आदी है, उसे अगर किसी दिन भारी काम करना पड़े, तो उसका भी शरीर दुखेगा और भोजन अच्छा नहीं लगेगा।"

"हाँ, ऐसा तो होता ही है। हमें भी कई बार हुआ है।"

"इसी तरह गाँव का आदमी, जो शहर आकर अपना जीवन बदल लेता है, वह फिर गाँव लौटना नहीं चाहता।"

"काका, गाँव का आदमी गरीब है। खाने-पीने से लेकर पहनने-ओढ़ने तक, रहने-सहने से लेकर दवा-दारू और पढ़ाई-लिखाई तक, हर जगह अभाव है। इसलिए लोग गाँव में नहीं रहना चाहते।"

महेन्द्र, स्नानघर तक पिता को पहुँचा कर लौटे और अपने कमरे में आकर पत्नी, भाइयों और भावजों—डॉ. रविन्द्र, डॉ. जमुना और डॉ. सुजाता—को फोन से सूचना दे दी कि गाँव से माँ, बाबू और जुगेसर आ गए हैं। तीनों को सूचना देने के बाद वे रसोई में पहुँचे और मन ही मन सोचने लगे कि यहाँ का भोजन उन्हें पसंद आएगा या नहीं।

उन्होंने सोचा कि बेहतर होगा अगर गाँव का ही खाना बनाया जाए। लेकिन रसोइया तो यहीं का है, वह गाँव के व्यंजन कहाँ बना पाएगा। ऐसे में शायद खुद ही पकाना पड़े। हाँ, चावल-दाल और सामान्य सब्ज़ी तो रसोइया बना ही लेगा। बस इमली से परहेज़ करना होगा। इसलिए इमली की खटमिट्ठी अलग से बनाई जाएगी।

महेंद्र को याद आया कि अगर तरुआ और सब्ज़ी नहीं बनी, तो पिता इसे अपमान समझेंगे। दूध-दही भी ज़रूरी है, लेकिन दही घर में नहीं है। पास की दुकानों में जो दही मिलती है, वह अच्छी नहीं होती। इसलिए रविन्द्र से कहेंगे कि दरभंगा होटल से दही ले आएँ।

यह सोचकर महेन्द्र ने मोबाइल से रविन्द्र को फोन किया। रविन्द्र सीधे अस्पताल से दरभंगा होटल के लिए निकल गए।

महेन्द्र ने स्वयं तिलकोर के पत्ते, परवल, झींगनी, बैंगन और आलू तलने शुरू कर दिए। गैस का चूल्हा था, इसलिए सब कुछ जल्दी तैयार हो गया।

शौच के लिए जाते समय रामाकान्त हाथ धोने के लिए मिट्टी खोजने लगे, पर मिट्टी कहीं दिखाई नहीं दी। नहाने से लेकर हाथ धोने तक यहाँ साबुन का ही इस्तेमाल होता था। रामाकान्त ने जुगेसर से पूछा- "जुगेसर, बिना मिट्टी के हाथ कैसे धोएँगे?"

रामाकान्त की बात सुनकर जुगेसर मुस्कराए और बोले- "काका, जैसा देश, वैसा भेस बनाना पड़ता है। गाँव में तो हम दिनभर मिट्टी पर रहते हैं, लेकिन यहाँ मिट्टी मिलना मुश्किल है। देख रहे हैं, ज़मीन तक सीमेंट से ढँकी है। न मिट्टी का घर है और न ही रास्ता। साबुन तो महकता भी है। चलिए, साबुन से ही हाथ धो लीजिए।"

"कह तो रहे हो ठीक, लेकिन हाथ धोना और मन का मानना दो अलग बातें हैं। हाथ तो धो लेंगे, पर मन न माने तो वह कैसा हाथ धोना हुआ?"

"हाँ काका, यह बात मैं भी मानता हूँ। लेकिन गंदगी साफ़ करने की बात हो, तो साबुन मिट्टी से बेहतर साफ करेगा। जब मन को समझाएँगे, तो वह मान ही जाएगा।"

"तुम भी अब छोटे बच्चे तो नहीं हो कि न समझो। एक बात कहो, आदमी पेट भरकर खाता है, पेट भर जाता है, फिर भी क्यों कहता है कि मन भरकर खाया? और कभी-कभी पेट भरने के बाद भी क्यों कहता है कि मन नहीं भरा?"

"काका, हम लोग मिथिला में रहते हैं। मिथिला की मिट्टी पवित्र है। लेकिन यह तो मद्रास है, इसलिए यहाँ के लोगों जैसे रहना ही ठीक है।"

"बहुत अच्छा।"

इतना कहकर दोनों अपने-अपने काम में लग गए।

रामाकान्त और जुगेसर अभी स्नानघर में ही थे कि रविन्द्र, जमुना और सुजाता अपनी-अपनी गाड़ियों से आ पहुँचे। सबके मन में अपनी-अपनी जिज्ञासा थी, इसलिए गाड़ी से उतरते ही कोई पिता रामाकान्त से मिलने को उतावला था, तो कोई ससुर से मिलने को। पर जब कमरे में पहुँचे तो पता चला कि वे स्नान कर रहे हैं। यह सुनकर सभी अपने-अपने कपड़े बदलने अपने-अपने कमरों में चले गए।

पैंट-शर्ट उतारकर रविन्द्र ने लुंगी पहनी और माँ के कमरे की ओर बढ़े।

कमरे में पहुँचते ही उन्होंने माँ के पैर छुए और सामने खड़े हो गए।

माँ ने पहले तो रविन्द्र को पहचाना नहीं, लेकिन पैर छूने के उत्तर में आशीर्वाद दे दिया। रविन्द्र मुस्कराते रहे, जबकि माँ किसी अनजान व्यक्ति की तरह बेटे के चेहरे को टकटकी लगाए देखती रहीं। तभी जमुना और सुजाता भी वहाँ आ गईं और श्यामा के पैर छूने लगीं। दोनों बहुओं को सास ने आशीर्वाद दिया।

रविन्द्र समझ गए कि माँ ने उन्हें नहीं पहचाना। वे मुस्कराकर बोले- "माँ, मैं रविन्द्र हूँ।"

'रविन्द्र' नाम सुनते ही श्यामा हक्की-बक्की रह गईं। अनायास ही उनके होंठों से निकला- "रविन्द्र...!"

चार साल से रविन्द्र गाँव नहीं आए थे। पहले उनका शरीर एकदम दुबला-पतला था, खीरे की बेल जैसा। अब वे मस्त-मौला हो गए थे। पुष्ट शरीर ने उनके रूप को पूरी तरह बदल दिया था।

लाड़ले बेटे को देखकर माँ की ममता बाढ़ के पानी की तरह उमड़ पड़ी। मुँह से शब्द नहीं निकल पाए, केवल आँखें बोल रही थीं, और वे भी आँसुओं की धारा से भीग चुकी थीं।

आँचल से आँसू पोंछते ही श्यामा के मन में वह दिन नाचने लगा, जब रविन्द्र इसी आँचल में छिपा रहता था। संध्या के तारे जैसे श्यामा के हृदय में सुखी जीवन की कामनाएँ झिलमिलाने लगीं।

हाथ के इशारे से माँ ने दोनों बहुओं को बैठने का संकेत दिया। वे माँ के दोनों ओर बैठ गईं। उनके कंधों पर हाथ रखकर श्यामा उस लोक में खोने लगीं, जहाँ दुख का कोई स्थान नहीं होता।

लेकिन सुख के भी दो लोक होते हैं, एक श्यामा का और दूसरा रविन्द्र का। श्यामा का लोक त्याग, करुणा और दया की सवारी पर वैराग्य की मंज़िल की ओर बढ़ रहा था, जबकि रविन्द्र का जीवन धनोपार्जन की भावना से भरा हुआ दैहिक सुख की ओर अग्रसर था।

उधर, रामाकान्त और जुगेसर स्नान करके कमरे में लौटे। स्नान के बाद उनके शरीर की थकान मिट चुकी थी और उनमें नई स्फूर्ति और ताजगी आ गई

थी। इस ताजगी के साथ भूख भी जाग उठी।

इसी बीच रविन्द्र कमरे से निकलकर पिता के कक्ष की ओर बढ़े। महेन्द्र भी पिता के पास पहुँचकर भोजन करने का आग्रह करने लगे।

इधर सास के पास दोनों बहुएँ बैठकर परिवार, खानदान और मानवीय संबंधों को सँवारने वाली बातें साझा करने लगीं। गाँव में देहाती जीवन जीने वाली पचपन वर्ष की सास और शहर में बाज़ारू जीवन अपनाने वाली दोनों बहुएँ, तीनों अपने-अपने जीवन पथ पर चल रही थीं। लेकिन सास और बहुओं के बीच कहीं न कहीं मानवीय संवेदना और जीवन की व्यावहारिक प्रक्रिया का ऐसा पुल था, जो उन्हें आपस में जोड़ता था।

बीता हुआ जीवन स्मृति और इतिहास बन जाता है, पर आने वाले जीवन की रूपरेखा वर्तमान में ही बनती है। एक ओर पचपन वर्षों का अनुभव था, तो दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा से परिपूर्ण दृष्टि। सोच में भिन्नता थी, पर यह भाव कि सब एक ही परिवार के हैं, उन्हें बलपूर्वक एक सूत्र में बाँध देता था।

श्यामा के मन में यह प्रश्न बार-बार उठता रहा कि जब मैं हजारों कोस दूर बेटे-बहुओं से अलग रहती हूँ, तो बहुओं का सुख आखिर कैसा होता होगा? समाज में देखती हूँ कि अस्सी वर्ष का बुज़ुर्ग और पेट में पल रहा शिशु तक एक ही छत के नीचे रहते हैं और हँसी-खुशी जीवन बिताते हैं। खाने-पीने की वस्तुएँ चाहे जैसी हों, सब मिल-बाँटकर खाते हैं।

हाँ, समाज में विषमता भी है, कोई स्वादिष्ट व्यंजन कुत्ते के लिए छोड़ देता है और कोई इंसान भूख से सो जाता है। धरती पर हजारों प्रकार की खाद्य वस्तुएँ फैली हैं, लेकिन न सब उन्हें पहचानते हैं और न ही उन्हें लाने का प्रयास करते हैं।

उधर, जमुना और सुजाता के मन में यह विचार उठ रहा था कि परिवार को आगे बढ़ाने के लिए संतान आवश्यक है। नौकर-दाई की मदद से छोटे बच्चों का पालन-पोषण तो किया जा सकता है, पर सेवा नहीं। क्योंकि माँ तो अपने बच्चे को स्वयं दूध पिलाना चाहती है।

जब बच्चे स्कूल जाने लायक हो जाते हैं, तब उन्हें आवासीय विद्यालय में भेजा जाता है, जहाँ से वे शिक्षा पाकर जीवन के कमाई वाले चक्र में प्रवेश करते

हैं। यह भी जीवन का एक चक्र है।

जैसे जमुना और सुजाता के मन में उनके अनुभव उमड़ रहे थे, वैसे ही श्यामा के मन में अपने खानदानी परिवार की बगिया उमड़ रही थी, जिसमें न तो भविष्य का रास्ता साफ़ दिख रहा था और न अतीत का। भविष्य का रास्ता कठिन है या सहज, संवेदनशील है या निष्ठुर, यह प्रश्न लगातार उठ रहा था। मनुष्य-मनुष्य के बीच मानवीय संबंध होना चाहिए। यह केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। जो इस धरती पर जन्म लेता है, उसे जीने का उतना ही अधिकार है जितना दूसरे को। यदि यह अधिकार नहीं है, तो लड़ाई-झगड़े को कौन-सी शक्ति रोक सकती है?

लेकिन यह प्रश्न जटिल है। आज के मनुष्य का जीवन इतना विषम बन चुका है कि सामूहिक समानता तो दूर, दो सहोदर भाइयों के बीच भी समानता कठिन हो गई है।

भोजनालय विशाल और चौड़ा था। दीवारों पर बहुरंगी फूलों की चित्रकारी बनी थी। कोमल गुलाबी रंग से रंगा हुआ कक्ष शीतलता से भरा था। बीच में एक गोलाकार, विस्तृत भोजन-टेबल था, जिसके चारों ओर पंद्रह से अधिक कुर्सियाँ लगी थीं। दीवारों में लगे साउंड बॉक्स से मधुर गीत की ध्वनि प्रसारित हो रही थी।

भोजन की बाज़ारू व्यवस्था महेन्द्र ने अपना रखी थी, लेकिन माता-पिता के आने से वह धर्म-संकट में पड़ गए। मन ही मन सोचने लगे कि हम दोनों भाई और दोनों देवरानियाँ तो एक ही मेज़ पर बैठकर खाते हैं, लेकिन माँ पिता के सामने नहीं खातीं। इतना ही नहीं, वह भाइयों के साथ तो बैठ जाती हैं, पर बहुओं के साथ नहीं।

यदि ज़बरदस्ती कराई जाए, तो कहीं बिगाड़ न हो जाए। और यदि बिगाड़ हो गया, तो स्थिति और भी विचित्र हो जाएगी। क्या करना उचित होगा? सोच-विचार में महेन्द्र डूब गए। फिर अचानक उन्हें सूझा कि माँ से ही राय लेनी चाहिए।

माँ के पास जाकर महेन्द्र ने पूछा- “माँ, हम सब तो एक ही मेज़ पर खाते हैं, लेकिन...?”

महेन्द्र की बात सुनकर श्यामा समझाते हुए बोलीं- “बेटा, मेरी उम्र पचास-

साठ वर्ष की हो गई है। अब तक जिसे बुरा मानती रही, वह काम अब कैसे करूँ? और कितने दिन जीना है। तो क्यों अपने बाप-दादा के बताए रास्ते को तोड़ूँ? ऐसा व्यवहार केवल हमारे परिवार में ही नहीं, पूरे समाज में प्रचलित है। जब तक यहाँ हैं, तब तक कुछ और हो सकता है, लेकिन गाँव लौटने पर तो वही पुराना व्यवहार रहेगा। इसलिए ऐसा करना उचित नहीं। जीवन, समाज और परंपरा के अनुकूल चलने में ही भला है। कोई भी परंपरा जीवन के लिए बुरी नहीं होती, भले ही दूसरों की नज़र में वह अधूरी क्यों न लगे।"

माँ का विचार सुनकर महेन्द्र ने भोजन के दो दौर करने का निर्णय लिया। पहले दौर में वे स्वयं, जुगेसर और पिता साथ में बैठेंगे, और दूसरे दौर में परिवार के बाकी सदस्य।

भोजन करते ही रामाकान्त हाँफने लगे। जुगेसर भी थकावट से हाँफने लगे। हाथ-मुँह धोकर दोनों सो गए। तीन रातों का जागरण और उस पर भोजन का नशा भी चढ़ गया था।

ठीक चार बजे रामाकान्त की नींद खुल गई। लेटे-लेटे उन्होंने दीवार की घड़ी की ओर देखा। चार बज चुके थे। यह भाँग पीने का समय था। भाँग पीने की आदत उन्हें पहले से थी, इसलिए मद्रास आते समय वे झोले में भाँग की पत्तियाँ भी साथ ले आए थे। श्यामा भी समझ गई थीं कि अब उनका भाँग पीने का समय हो गया है। भाँग की सामग्री—काली मिर्च और सौंफ—सब कुछ मौजूद था। केवल पीसने की ज़रूरत थी। बिस्तर से उठकर रामाकान्त ने झोला खोला और भाँग का सामान निकालने लगी।

उसी समय सुजाता एक किलो की ब्रांडी की बोतल और ग्लास लेकर सास के पास आ खड़ी हुई। खाने के समय सास ने बहुओं को यह बता दिया था कि पिताजी हर दिन दोपहर बाद चार बजे भाँग पीते हैं।

भाँग के बारे में सुजाता अनजान थी, उसे कुछ समझ नहीं आया। लेकिन ब्रांडी के बारे में वह अच्छी तरह जानती थी। अब सुजाता, श्यामा और रामाकान्त—तीनों अपने-अपने ढंग से असमंजस में पड़ गए थे।

रामाकान्त ने जुगेसर को जगाया और टंकी पर मुँह-हाथ धोने चले गए। खटर-पटर की आवाज़ सुनकर श्यामा समझ गईं कि वह उठ चुके हैं। सुजाता

बोतल लेकर तैयार खड़ी थी, लेकिन उसके मन को भीतर-ही-भीतर मिथिला की संस्कृति झकझोर रही थी। क्योंकि मिथिला की परंपरा के व्यवहारिक पक्ष को वह नहीं जानती थी, इसलिए जैसे कोई जानवर अनजाने जंगल में भटकता है, वैसे ही वह मन ही मन भटक रही थी। उसके भीतर यह प्रश्न उठ रहा था कि क्या सचमुच वहाँ भी बहुओं और ससुर का व्यवहार वैसा ही होता है जैसा यहाँ? और यह भी कि पढ़े-लिखे समाज में जब पुरानी परंपराएँ नए रूपों में ढल जाती हैं, तो क्या यह भी ढल जाती है? परन्तु...! बोतल और ग्लास हाथ में लिए, सुजाता विचारों की दुनिया में खोई हुई थी। रामाकान्त के लिए भाँग पीने का समय आ चुका था, इसलिए उनके भीतर कोमलता घुलने लगी थी। तभी पास आकर श्यामा ने कहा- “अभी भाँग नहीं पीसी है। बहू बोतल लेकर खड़ी है।”

भाँग न पीसने की बात सुनकर रामाकान्त पहले तो खीझे, लेकिन बोतल का नाम सुनते ही असमंजस में मुस्कराते हुए बोले- “बेटी और बहू में क्या अंतर है? जैसी बेटी, वैसी ही बहू। और फिर छोटी बहू तो कोरैला बेटी की तरह होती है। इस संसार में कोई भी संबंध अधूरा नहीं होता, जब तक वह अपनी मर्यादा में रहे। जब मर्यादा का उल्लंघन होता है, तभी लाज और परदे की आवश्यकता पड़ती है। यह परंपरा सामने आकर खड़ी हो गई है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि पिछली परंपराएँ मिट गई हैं। इसलिए अच्छा व्यवहार जीवन में अपनाना कभी अधूरा नहीं होता।”

रामाकान्त की बातें सुजाता भी सुन रही थी। मन ही मन उसे यह जानकर खुशी हो रही थी कि उसके ससुर ज्ञानवान हैं। लेकिन बिना सास की सहमति के आगे बढ़ना उसे उचित नहीं लगा, इसलिए वह बोतल और ग्लास लिए आँगन के किनारे खड़ी रही। पति के विचार सुनकर श्यामा ने सुजाता को आगे बढ़ने का संकेत दिया। परदे के पीछे खड़ी सुजाता को देखकर वह बोलीं- “जाओ, भगवान ने तुम्हें भोलेनाथ जैसे ससुर दिए हैं। वे तुम्हारे साथ ससुर की तरह नहीं, पिता की तरह व्यवहार करेंगे।”

बाएँ हाथ में बोतल और दाएँ हाथ में ग्लास लिए सुजाता ससुर के पास गई और बोतल का ढक्कन खोल दिया। ढक्कन खुलते ही पूरी कोठरी में महक फैल गई। उस सुगंध से वातावरण में मानो मदहोशी छा गई।

एक ग्लास पीकर रामाकान्त ने जुगेसर से कहा- "जुगेसर, तुम भी एक ग्लास पी लो।"

जुगेसर ने संकोच से कहा- "काका, आपके पास बैठकर मैं कैसे पीऊँ?"

रामाकान्त मुस्कराते हुए बोले- "जुगेसर, अब न तो तुम छोटे हो और न हम बड़े। सब मनुष्य हैं। मनुष्य तो मनुष्य के साथ ही जीवन बिताता है।"

तभी सुजाता ने एक ग्लास जुगेसर की ओर बढ़ाया। उसने एक ही घूँट में ग्लास खाली कर दिया। पेट में ब्रांडी पहुँचते ही उसे गुदगुदी होने लगी।

दूसरा ग्लास पीने के बाद रामाकान्त ने सुजाता से कहा- "बेटी, कुछ नमकीन भी लाओ।"

रामाकान्त की बात सुनकर सुजाता ने बोतल मेज़ पर रख दी और रसोई से दो प्लेटों में मद्रासी भुजिया लाकर रख दी। एक प्लेट रामाकान्त के सामने और दूसरी जुगेसर के सामने।

दोनों ने भुजिया खया और रामाकान्त ने दो-तीन ग्लास ब्रांडी और पिया। उन्हें भाँग की आदत थी, जिसमें नशा धीरे-धीरे चढ़ता है, लेकिन ब्रांडी का नशा तो तुरंत ही चढ़ गया। जुगेसर ने भले ही केवल दो ग्लास पिए थे, पर उसका भी मन झूमने लगा। पूरी बोतल पी जाने के बाद रामाकान्त को डकार आई। डकार लेते ही उन्होंने सुजाता से कहा- "बेटी, इलायची वाला पान खिलाओ।"

सास ने पति के खान-पान की सारी बातें पहले ही बता दी थीं, इसलिए सुजाता जानती थी। उसने दो सुगंधित पान की गिलोरियाँ, तेज जर्दे का डिब्बा, इलायची और भुनी सुपारी के टुकड़े प्लेट में सजाकर ससुर के सामने रख दिए।

नशे के रंग में डूबे रामाकान्त और जुगेसर दोनों का मन लहराने लगा। पान मुँह में रखते हुए रामाकान्त ने सुजाता से पूछा-

"बेटी, तुमने डॉक्टरी कैसे पढ़ी?"

ससुर का सवाल सुनकर सुजाता पास की कुर्सी पर बैठ गई और बिना झिझक बोलने लगी- "बाबूजी, मेरे पिता और माँ मोहल्ले का कपड़ा धोते थे। वही उनका रोज़ का काम था। जैसे-तैसे गुज़र चलता था। एक ही घर था। नहाने और पानी भरने के लिए हम दूसरों के कुएँ पर जाते थे। पिता ताड़ी पीते थे।

एक दिन साँझ ढले वे ताड़ी पीकर लौट रहे थे। उन्हें बहुत नशा हो गया था। रास्ते में एक गड्ढा था, उसमें वे गिर पड़े। तभी बिना हेडलाइट का एक ट्रक गुज़रा। ट्रक उनके ऊपर से निकल गया और पूरा शरीर हड्डियों सहित कुचल गया। हम कुछ समझ ही नहीं पाए। दूसरे दिन सुबह हल्ला हुआ, तब मैं, मेरी माँ और मेरा भाई देखने गए। शरीर की हालत देखकर पहचानना कठिन था। लेकिन कपड़े और चप्पल देखकर मन काँप उठा। हम तीनों ने उन चीज़ों को पहचान लिया। फिर हम उन्हें उठाकर लाए और दाह संस्कार किया।"

बीच में जुगेसर बोल पड़ा- "अरे बाप रे!"

जुगेसर की यह बात सुनकर सुजाता की आँखों में आँसू आ गए।

सुजाता की बात रामाकान्त आँखें मूँदकर सुनते रहे। जुगेसर की प्रतिक्रिया सुनते ही उन्होंने आँखें खोलीं। उनका हृदय पसीज गया। ताड़ी पीने की बात सुनकर रामाकान्त के मन में यह विचार आया कि नशा तो मैं भी करता हूँ, लेकिन यहाँ की ज़िंदगी और गाँव की ज़िंदगी में बड़ा अंतर है।

साथ ही यह सवाल भी उठने लगा कि पेट पालने का प्रश्न तो हर जगह है। हमारा ग्रामीण जीवन शांतिपूर्ण है। धन की कमी वहाँ भी है और यहाँ भी। लेकिन यहाँ कुछ गिने-चुने उद्योग और व्यापारी समृद्ध हैं, और गरीब लोग उन्हीं की बराबरी करना चाहते हैं। उनकी यही चाहत ज़िंदगी को अशांत बना देती है। उस अशांति को शांत करने के लिए लोग सड़े-गले नशे की ओर बढ़ते हैं, जिससे उनकी ज़िंदगी बीच रास्ते में ही टूट जाती है। इतना सोचते ही रामाकान्त बिस्तर से उठे और थूक फेंकने बाहर चले गए। नाली में पान थूककर टंकी पर कुल्ला किया और फिर कमरे में लौटकर सुजाता से कहा- "बेटी, चाय पिलाओ।"

आँचल से आँखें पोंछती हुई सुजाता चाय बनाने के लिए रसोई की ओर बढ़ी। रामाकान्त के हृदय में सुजाता के प्रति एक विशेष आकर्षण जाग उठा। जैसे हनुमान के हृदय में सीता-राम विराजते थे, वैसे ही सुजाता ने रामाकान्त के दिल में एक छोटा-सा घर बना लिया था। आज तक जो प्रश्न किसी ने उससे नहीं पूछा था, वही रामाकान्त ने किया था। इससे सुजाता के मन में उनके प्रति एक सुंदर और आदरपूर्ण छवि बनने लगी। उधर रामाकान्त का हृदय भी पिघलने लगा। निश्चय ही सुजाता ने उनके हृदय में अपनी जगह बना ली थी। जब सुजाता

चाय के कप लाकर रामाकान्त और जुगेसर के हाथ में थमाई, कप हाथ में लेते ही रामाकान्त अपने अस्तित्व को जैसे भूल गए। उनकी आँखें सुजाता की आँखों से मिलीं और वे उसे एकटक देखने लगे। आर्द्र स्वर में उन्होंने पूछा- "क्या उस समय की ज़िंदगी अब भी याद है या भुला दी?"

सुजाता की आँखें आँसुओं से भीग गईं। आँसू पोंछते हुए उसने कहा- "बाबूजी, भुला कैसे सकती हूँ! वह घटना तो मेरे जीवन के इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड है।"

सिर हिलाते हुए रामाकान्त ने पूछा- "उसके बाद क्या हुआ?"

सुजाता अपनी स्मृतियों में डूब गई और बोली- "हम दो भाई-बहन हैं। तब मैं ग्यारह वर्ष की थी और मेरा भाई आठ वर्ष का। दोनों स्कूल जाते थे। मुहल्ले में ही स्कूल था। भाई छोटा था, इसलिए कोई काम नहीं करता, लेकिन मैं माँ के साथ कपड़े धोती, आँगन में सुखाती, इस्त्री करती और कपड़े लाने-ले जाने का काम करती थी। यही हमारा रोज़ का काम था। जो कमाई होती, उसी से गुज़ारा चलता। हम पढ़े-लिखे परिवारों से लेकर बनिया-बेकाल तक, सबके घर जाते। जब पढ़े-लिखे परिवारों में जाती, तो फटे-पुराने किताबें माँग लेती, जिससे पढ़ाई का सहारा मिल जाता। खाने की व्यवस्था काम से हो जाती थी। इसी तरह मैंने मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास किया। जब परिणाम आया, पूरे मुहल्ले में प्रशंसा हुई। मेरा उत्साह बढ़ा और मैंने निश्चय किया कि बी.एस.सी. करूँगी। उस समय डॉक्टर बनने की कोई ठोस योजना नहीं थी। जितनी बुद्धि थी और जितने साधन, उसी हिसाब से सोचती थी।"

इसी बीच कॉलेज में प्रवेश शुरू हो गया। महेन्द्र भैया को कपड़े देने के लिए हम तीनों सुबह-सुबह पहुँचे। भैया उस समय अस्पताल के क्वार्टर में रहते थे। वे ओसारे पर बैठकर दाढ़ी बना रहे थे। माँ ने कपड़ों की गठरी रखकर जमुना दीदी को पुकारा- "मलकिन, कपड़ा लीजिए।" हम दोनों भाई-बहन वहीं खड़े रहे।

कमरे से निकलते ही दीदी की नज़र मुझ पर पड़ी। उन्होंने माँ से कहा- "बेटी पास हुई है, मिठाई खिलाइए।"

दीदी की बात सुनकर महेन्द्र भैया ने दाढ़ी बनाना रोक दिया और मेरी ओर

देखा। कुछ क्षण तक बिना कुछ कहे देखते रहे, फिर सिर हिलाकर दोबारा दाढ़ी बनाने लगे। अपना काम पूरा करके उन्होंने सामान समेटा और मुझे पुकारा। मेरे मन में कोई विशेष विचार नहीं आया क्योंकि हम तीन-चार दिन पर कपड़े देने आते-जाते ही थे। दीदी से भैया ने कहा- “ज़रा चाय बना दो।”

भैया की भाषा मैं नहीं समझ पाई, पर दीदी समझ गईं। उन्होंने पाँच कप चाय बनाई। दो कप उन्होंने और भैया ने लिए और तीन कप हमें दिए। उस दिन मैंने पहली बार भैया के घर में चाय पी। भैया ने मेरा नाम पूछा। मैंने बताया। मैट्रिक के परिणाम के बारे में पूछा, वह भी बताया। भैया ने नाम लिखवाने से लेकर किताब-कॉपी तक का सारा भार अपने ऊपर लेते हुए माँ से कहा- “स्कूल और कॉलेज तो यहीं पास में हैं, इसलिए बाहर जाने की समस्या नहीं है। घर पर रहकर पढ़ाई हो सकती है। स्कूल-कॉलेज के खर्च से लेकर पढ़ाई की सारी सामग्री का खर्च मैं दूँगा।”

भैया की बात सुनकर मेरा मन खुशी से नाच उठा। मैं देर तक भैया का चेहरा देखती रही। जब तक डॉक्टर बनी, तब तक का सारा खर्च भैया ही उठाते रहे। सुजाता की बातें सुनकर रामाकान्त के मन में विचार आया कि यदि थोड़ी भी मदद किसी गरीब की की जाए, तो किसी का जीवन सँवर सकता है। पिता ने भी बहुत किया, बेटों ने भी बहुत किया, लेकिन बीच में मैंने कुछ नहीं किया। यद्यपि उन्होंने स्वयं भी बहुत कुछ किया था और आगे भी करते, पर इस क्षण सब कुछ भुला बैठे।

रात के आठ बज चुके थे। अचानक तीन गाड़ियाँ आ पहुँचीं। महेन्द्र अपनी गाड़ी से उतरकर कपड़े बदलने गए और फिर सीधे पिता के पास पहुँचे। महेन्द्र को देखते ही रामाकान्त बोले- “बौआ, हम अधिक दिन नहीं रुकेंगे। हम तो ऐसे लोग हैं जो भीड़ में ही समय बिताते हैं। यहाँ अकेले मन नहीं लगेगा।”

महेन्द्र कुछ स्थिर होकर बोले- “गाड़ी की थकान है, इसलिए पहले चार दिन आराम कीजिए। उसके बाद हालात देखकर जाने का विचार करेंगे।” ❑

5.

रामाकान्त को मद्रास आए दस दिन हो चुके थे। उन्हें यह समझ ही नहीं आया कि ये दस दिन कब बीत गए। इस दौरान महेन्द्र ने अपनी गाड़ी से माता-पिता और जुगेसर, तीनों को मद्रास के प्रमुख दर्शनीय स्थलों की सैर कराई। वे लोग उदगमण्डलम, कोडैकानल और एक अन्य हिल स्टेशन के अलावा शुचिन्द्रम, रामेश्वरम्, तिरुचेंदूर, मदुरै, पलनी, तिरुचिरापल्ली, श्रीरंगम, तंजावूर, कुम्बकोणम, नागोर, वेलांकन्नी, वैदीश्वरन कोयिल, चिदम्बरम्, तिरुवण्णामलै, कांचीपुरम, तिरुत्तणि और कन्याकुमारी भी घूमे।

हर जगह को उन्होंने गहराई से देखा और समझा। वहाँ की रीति-रिवाज, व्यवहार और जीवन-शैली उन्हें अपनी संस्कृति से भिन्न प्रतीत हुई। साथ ही, उन्होंने यह भी अनुभव किया कि वहाँ के लोग उनसे अधिक मेहनती और ईमानदार हैं।

भारत की स्वतंत्रता के बाद राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अंतर्गत 14 जनवरी 1969 को मद्रास राज्य का नाम बदलकर तमिलनाडु रखा गया। इसमें केरल और आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों को मिलाकर वर्तमान राज्य की संरचना की गई। तमिलनाडु प्राचीन काल से द्रविड़ सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में चोल, पाण्ड्य और चेर राजवंशों के शासनकाल में यह सभ्यता अपने उत्कर्ष पर पहुँची।

तेरहवीं शताब्दी की शुरुआत में यहाँ काकतीय वंश का शासन था। 1323 ईस्वी में दिल्ली के तुगलक सुल्तान ने काकतीय शासक को पराजित किया। इसके बाद यहाँ गोलकुंडा के कुतुबशाही सुल्तानों का शासन हुआ, जिनकी राजधानी वर्तमान हैदराबाद थी। बाद में सम्राट औरंगजेब ने कुतुबशाही सुल्तान को हटाकर आसफ जाहा को गवर्नर नियुक्त किया। मुगल शासन के अंतिम समय में आसफ जाहा ने 'निज़ाम' की उपाधि धारण कर स्वयं को स्वतंत्र

शासक घोषित कर दिया।

1649 ईस्वी में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मद्रास में अपने पाँव जमा लिए। तब तक देश के अधिकांश भाग पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो चुका था। तमिलनाडु के पूर्व में बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में हिन्द महासागर, पश्चिम में केरल तथा उत्तर में कर्नाटक और आंध्र प्रदेश की सीमाएँ लगती हैं।

पिछली रात बातचीत करते-करते डेढ़ बज गया था। सात दिनों में देखे हुए मद्रास की चर्चा लंबी चली।

भोर के ढाई बजे सड़क पर एक गंभीर दुर्घटना हो गई। चारों डॉक्टरों को फोन पर तत्काल दुर्घटनास्थल पर पहुँचने का निर्देश मिला। कॉल मिलते ही महेन्द्र ने रवीन्द्र, जमुना और सुजाता को सूचना दी और कहा- “जल्दी तैयार हो जाओ, चलना है।”

चारों एक ही गाड़ी से निकल पड़े। घटनास्थल पर पहुँचने पर महेन्द्र ने देखा कि एक कार सड़क पर खड़े रोलर से टकरा गई थी। टक्कर इतनी जबरदस्त थी कि गाड़ी में बैठे सभी लोग घायल हो गए थे। कार में एक ही उद्योगपति परिवार के आठ सदस्य सवार थे। दो की हालत बहुत गंभीर थी। एक वृद्ध के सिर पर गहरी चोट थी और वह बेमतलब बातें कर रहा था। एक महिला की छाती की हड्डी टूट गई थी, जिससे वह साँस लेने में तकलीफ के साथ कराह रही थी। एक युवती की दोनों जाँघें टूट चुकी थीं। दो छोटे बच्चों की एक-एक आँख और एक-एक हाथ घायल हो चुके थे। केवल एक अबोध शिशु पूरी तरह सुरक्षित था।

डॉ. महेन्द्र के पहुँचते ही अस्पताल के अन्य डॉक्टर और नर्सें भी वहाँ आ पहुँचीं। स्थानीय थाना पुलिस और जिला पुलिस भी मौके पर पहुँच गई। डॉक्टरों ने विचार कर निर्णय लिया कि घायलों को तुरंत अस्पताल ले जाना ही उचित होगा, क्योंकि वहाँ न दवाइयाँ थीं और न ही आवश्यक उपकरण।

आठों घायलों को जैसे-तैसे अस्पताल पहुँचाया गया। जाँच और उपचार शुरू होते ही दो लोगों की मृत्यु हो गई।

सुबह साढ़े पाँच बजे चारों डॉक्टर डेरा लौटे। गाड़ी की आवाज़ सुनकर रामाकान्त की भी नींद टूट गई।

रात को सोने का समय देखे बिना ही चारों लोग गाड़ी से उतरते ही अपने-

अपने नित्यकर्म में लग गए।

बिस्तर पर लेटे-लेटे रामाकान्त सोचने लगे। आज ग्यारहवाँ दिन है, पर अभी तक वे किसी पोते-पोती का चेहरा तक नहीं देख पाए। जिस परिवार में पाँच-पाँच पोते-पोतियाँ हों और दादा-दादी उनसे मिल भी न सकें, यह कितनी दुखद बात है। यदि बच्चों को माता-पिता और दादा-दादी का स्नेह न मिले, तो उनके मन में अपने बड़ों के लिए कैसा भाव बनेगा?

यह सही है कि हर मनुष्य के भीतर सभी के प्रति स्नेह होना चाहिए, क्योंकि वह अंततः एक सामाजिक प्राणी है। लेकिन जिस परिवेश में आज हम जी रहे हैं, वहाँ व्यक्ति निजी संपत्ति, रोज़गार और जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाने में उलझा रहता है। इसी कारण स्नेह बँट-बँटकर रह जाता है।

मनुष्य का जीवन अस्थायी है। उम्र के अनुसार शरीर की सक्रियता बदलती रहती है। जैसे बचपन में बच्चों की जिम्मेदारी माता-पिता निभाते हैं, वैसे ही वृद्धावस्था या बीमारी में माता-पिता की ज़िम्मेदारी संतान पर आती है। यदि यह न हो तो जीवन वास्तव में कठिन और दुखदायी हो जाता है।

लोग एक राज्य से दूसरे राज्य, एक देश से दूसरे देश कमाने क्यों जाते हैं? सिर्फ इसलिए कि स्वयं और परिवार का जीवन चैन से चल सके। इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे रामाकान्त।

महेन्द्र के तीन और रवीन्द्र के दो बच्चे थे। कुल मिलाकर पाँच पोते-पोतियाँ। महेन्द्र का बड़ा बेटा रमेश हाई स्कूल में पढ़ता था और हॉस्टल में रहता था। बाकी चार बच्चे नर्सरी में थे और एक आवासीय विद्यालय में पढ़ रहे थे। महेन्द्र हर महीने या दो महीने में स्वयं जाकर उनके खर्चे पहुँचा देते थे।

बाबा-दादी के आग्रह पर बच्चों से मिलने का कार्यक्रम बनाया गया। रविवार को स्कूल बंद रहता था, इसलिए उसी दिन जाना तय हुआ। सुबह सात बजे डेरे से निकलने का समय तय किया गया। रामाकान्त, श्यामा और जुगेसर समय से पहले ही तैयार हो गए।

पूरी रात के जागरण के कारण महेन्द्र बेहद थके हुए थे। नींद से उनका शरीर टूट रहा था। इसलिए नींद तोड़ने की दवा खाकर वे पिता के पास पहुँचे और बोले- “बाबू, मैं तो पूरी रात जागता रह गया। जैसे ही बिस्तर पर गया, नींद

आई भी नहीं थी कि तभी फोन आ गया। सड़क पर एक दुर्घटना हो गई थी, जिसमें एक ही उद्योगपति परिवार के आठ लोग सवार थे। उन्हें देखने और सँभालने में सुबह हो गई।"

बीच में जुगेसर पूछ बैठे- "मृत्यु भी हुई?"

"हाँ," महेन्द्र ने कहा- "जो दोनों मुख्य कारोबारी थे, उनकी मृत्यु हो गई। एक को ब्रेन हेमरेज हो गया है, वह अब जीवनभर पागलपन में रहेगा। एक की छाती की हड्डी बुरी तरह टूट गई है, वह दो-चार महीने का ही मेहमान है। तीन अधमरे होकर किसी तरह जी रहे हैं। केवल एक चार साल का बच्चा ही सुरक्षित बचा है।"

रामाकान्त महेन्द्र की बातें सुनते रहे और मन ही मन सोचते रहे, यही तो जीवन है। इसी के कारण मनुष्य कभी-कभी इतने नीच कर्म कर बैठता है कि वह दूसरों को मनुष्य समझना भी छोड़ देता है। लेकिन बाहर दिखाने के लिए धर्म का ढोंग रचता है, पूजा-पाठ, कीर्तन-भजन करता है। हज़ारों-लाखों रुपये ख़र्च कर पत्थर की मूर्ति स्थापित करता है और उस पर सुंदर प्रसाद चढ़ाता है। पर जिस इंसान के पेट में अन्न नहीं, तन पर वस्त्र नहीं, सिर पर छत नहीं और जीवन का कोई ठिकाना नहीं, उसकी ओर देखने वाला कोई नहीं होता। यही तो कर्मकाण्ड का आडंबर है, एक ऐसा चक्रव्यूह जिसमें मानवीय संवेदना दम तोड़ देती है।

पिता को गंभीर मुद्रा में देखकर महेन्द्र मुस्कराते हुए बोले- "नौकरी की ज़िंदगी ही ऐसी होती है। एक रात क्या, पाँच रातें लगातार जागते रहो, तब भी शरीर को कुछ महसूस नहीं होता। अब तो ऐसी दवाइयाँ हैं कि खाते ही नींद उड़ जाती है। जब तक आप लोग चाय-पानी कर लें, तब तक मैं भी तैयार होकर आता हूँ।"

इतना कहकर महेन्द्र उठकर अपनी कोठरी में चले गए।

चारों लोग कार में बैठकर रवाना हुए। बच्चों के स्कूल थोड़ी ही दूरी पर, पास-पास थे। सबसे पहले वे रमेश के हॉस्टल पहुँचे। यह हॉस्टल चारदीवारी से घिरा था। आने-जाने के लिए एक ही दरवाज़ा था, जिस पर लोहे का फाटक लगा था और वहाँ हमेशा एक दरबान बैठा रहता था। वह महेन्द्र को पहचानता था,

क्योंकि वे महीने-दो महीने में आते रहते थे।

चारों भीतर चले गए। अंदर अभिभावकों के लिए एक खुला कमरा था, जिसमें चारों ओर कुर्सियाँ लगी थीं। सब लोग वहीं बैठ गए। महेन्द्र ने रमेश को बुलवाया। रमेश आकर पहले पिता के चरण छूकर सामने ठिठककर खड़ा हो गया। न वह दादा-दादी को पहचानता था, और न दादा-दादी उसे।

बेटे को यूँ झिझकते देख महेन्द्र बोले- "बेटा, बाबा-दादी के भी चरण छुओ।"

महेन्द्र की बात पर रमेश ने तीनों के चरण छुए। औपचारिकता निभाते हुए तीनों ने उसे आशीर्वाद दिया।

लेकिन रामाकान्त के मन में एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। वे सोचने लगे, जो पोता अपने दादा-दादी को पहचानता ही नहीं, वह कभी उनकी सेवा क्या करेगा?

पढ़ाई-लिखाई निस्संदेह आवश्यक है। इससे ज्ञान मिलता है, जीवन जीने का तरीका समझ में आता है। लेकिन यदि बच्चे को परिवार से अलग रखकर शिक्षा दी जाए, तो वह परिवार को कैसे पहचानेगा? वह पारिवारिक दायित्वों को कैसे समझेगा?

परिवार की भी एक सीमा होती है। एक प्रकार का परिवार वह होता है, जो पूर्वजों को जोड़कर संयुक्त परिवार बनाता है, जो मिथिला की सांस्कृतिक धरोहर है। दूसरा प्रकार वह है, जो अपने हिस्से तक सीमित रहकर एकल परिवार बनाता है, जहाँ माता-पिता को बोझ समझा जाता है और उपेक्षा मिलती है। यदि ऐसी पारिवारिक संरचना बनती रही, तो माता-पिता और संतान के बीच क्या रिश्ता शेष रह जाएगा? तब समाज की दशा कैसी होगी? और अगर यह स्थिति बन गई, तो मनुष्य और पशु में अंतर ही क्या बचेगा?

आज यही तो देखने को मिल रहा है। अपना ही खून पराया लगने लगा है। जैसे हाट-बाज़ार या मेले-ठेले में हज़ारों लोग एक साथ रहते हैं, फिर भी एक-दूसरे के लिए अजनबी बने रहते हैं, वैसा ही भाव अब पारिवारिक संबंधों में घुसता जा रहा है।

ऐसे में इससे बेहतर क्या हो सकता है कि जब मनुष्य के समूह से परिवार

और परिवार के समूह से समाज बनता है, तब समाज के हर सदस्य को अपनाया जाए। ताकि जीवन स्नेह और आत्मीयता के साथ, हँसते-खेलते बिताया जा सके।

पिता को मौन देखकर महेन्द्र बोले- "बाबू, अब यहाँ से चलिए। यहाँ बच्चों का रूटीन बना हुआ है। यदि हम ज़्यादा देर ठहरेंगे तो उनका समय बिगड़ जाएगा।"

ममता से भरे मन को भीतर ही भीतर दबाते हुए रामाकान्त उठे और बोले- "हाँ, चलो। अभी और भी बच्चों को देखना है।"

रमेश भी लौट गया और चारों लोग गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी आगे बढ़ी। थोड़ी ही देर में वे नर्सरी विद्यालय पहुँच गए। वहाँ का दरबान महेन्द्र को पहचानता था, इसलिए उन्हें भीतर जाने से किसी ने नहीं रोका।

दरबान ने चारों बच्चों को बुलाकर भेजा। वे आकर महेन्द्र के चरण छूने लगे।

चरण छूने के बाद महेन्द्र ने हाथ से इशारा करते हुए रामाकान्त और श्यामा की ओर संकेत किया और कहा- "बच्चों, ये तुम्हारे बाबा-दादी हैं। इनके भी चरण छुओ।"

महेन्द्र की बात सुनकर चारों बच्चों ने तीनों के चरण छुए। यह देखकर रामाकान्त और श्यामा का मन भीतर ही भीतर टूटने लगा। वे सोचने लगे, क्या सोचकर यहाँ आए थे और क्या देख रहे हैं। अब एक दिन भी यहाँ रहना उचित नहीं लगता, पर जब आ ही गए हैं, तो बेटे और बहू की इच्छा से ही गाँव लौटेंगे। कुछ और देखना भी तो अभी बाकी है।

टूटे मन से रामाकान्त बोले- "बच्चों को देख ही लिया, अब यहाँ से चलो। गाँव की याद खींच रही है। जल्दी ही लौटेंगे।"

पिता की बात महेन्द्र समझ नहीं सके। जब तक वे गाँव में थे, तब तक विद्यार्थी ही थे। डॉक्टर बनने के बाद सीधे मद्रास आ गए और यहीं के परिवेश में पूरी तरह ढल गए।

कुछ देर बाद चारों लोग ब्रह्मचारी आश्रम देखने के लिए रवाना हुए। आश्रम में मंदिर नहीं था, केवल दो घर थे। एक घर धर्मशाला की तरह सबके लिए खुला था, और दूसरे घर में स्वयं ब्रह्मचारीजी रहते थे। उसी घर के एक हिस्से में वे सोते

थे, और दूसरे हिस्से में भोजन पकाते थे। बरतन-बासन भी वहीं रखते थे।

ब्रह्मचारीजी मिथिला के ही थे। वे अद्वैत दर्शन के प्रकाण्ड पंडित माने जाते थे। उनके रोम-रोम में अद्वैत दर्शन रचा-बसा था।

आश्रम पास ही था, लेकिन महेन्द्र को इसकी जानकारी पहले नहीं थी। जब वे रामेश्वरम् गए थे, तब वहाँ के एक पुजारी ने इसका उल्लेख किया था। मुख्य मार्ग से आश्रम लगभग दस लग्गा पश्चिम की ओर था। रास्ता केवल एक पगडंडी का था, इसलिए महेन्द्र ने गाड़ी मुख्य मार्ग पर ही खड़ी कर दी और चारों लोग पैदल ही आश्रम की ओर चल पड़े।

आश्रम की सीमा पर पहुँचते ही रामाकान्त और महेन्द्र ने आँखें उठाकर ध्यान से चारों ओर देखा। वहाँ न कोई हलचल थी, न ही लोगों की भीड़-भाड़। घर ईंट का बना हुआ था, पर उसमें धार्मिक स्थान जैसी कोई भव्यता नहीं थी। वह तो एक सामान्य गृहस्थ के घर जैसा प्रतीत हो रहा था। फिर भी दोनों को ऐसा महसूस हुआ मानो वे मद्रास की भूमि छोड़कर मिथिला लौट आए हों।

ब्रह्मचारीजी उस समय अपने करजान (बगीचे) में हँसुआ लेकर केले के सूखे तनों को काट रहे थे। केले के झुरमुट के कारण न तो उन्होंने आगंतुकों को देखा, न ही आगंतुक उन्हें देख पाए। गाड़ी की आवाज़ उन्होंने अवश्य सुनी, पर वहाँ गाड़ियाँ अक्सर गुजरती रहती थीं, इसलिए उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया और अपने काम में लगे रहे।

करीब एक बीघा भूमि में आश्रम फैला हुआ था, जिसमें सब कुछ सुव्यवस्थित ढंग से बना था। दो कट्ठे में दोनों घर, आँगन और गायों का थैर (जगह) था। चार कट्ठे में एक छोटा तालाब था और लगभग पाँच कट्ठे में बगीचे और पौधे लगे थे। दो कट्ठे में गायों के लिए घास बोई जाती थी, और सात कट्ठे में अनाज की खेती होती थी।

सबसे पहले चारों लोग तालाब के घाट पर पहुँचे। घाट पक्के ईंट-पत्थरों से बना हुआ था। वहाँ खड़े होकर वे तालाब को ध्यान से देखने लगे। तालाब के किनारे पाँच-सात बगुले चर रहे थे। उन्हें देखकर रामाकान्त सोचने लगे कि जिस दिन से यहाँ आए हैं, आज पहली बार अपने इलाके जैसे बगुले दिखाई दिए। बगुले तो यहाँ भी होते हैं, लेकिन मिथिला के बगुलों की चाल-ढाल ही अलग

होती है।

नज़र हटाकर उन्होंने तालाब की ओर देखा। पानी में दस-बारह कमल के छोटे-छोटे गुच्छे फैले हुए थे, जो हवा की लहर पाकर झूम रहे थे। तभी दो जलमुर्गियाँ चहचहाती हुई दिखाई दीं, जिन्हें वे अपने यहाँ 'पिहुआ' कहते थे। वे उन्हें देख ही रहे थे कि अचानक एक सिल्ली उड़ती हुई आई और तालाब में उतर गई।

उसी समय जुगेसर बोला- "काका, यह तो अपने इलाके का पुरैन है। फूल भी वैसा ही लगता है।"

जुगेसर की बात सुनकर रामाकान्त ने सिर उठाया, पेड़ की ओर देखा और बोले- "हाँ रे जुगेसर, यह सचमुच कमल जैसा ही लगता है।"

इसके बाद चारों ने हाथ-पाँव धोए और घाट की सीढ़ियाँ चढ़कर ब्रह्मचारीजी को खोजने लगे। जब वे कहीं दिखाई नहीं दिए तो रामाकान्त को लगा शायद वे कहीं बाहर गए होंगे। तभी जुगेसर की नज़र करजान (केले के बगान) की ओर गई। वहाँ एक व्यक्ति काम करता दिखा। जुगेसर ने कहा- "काका, कोई व्यक्ति बगीचे में काम कर रहा है। मैं जाकर पूछता हूँ कि ब्रह्मचारीजी कहाँ हैं।"

जुगेसर की बात पर रामाकान्त और महेन्द्र ने भी उधर देखा। लेकिन उस व्यक्ति का झुलसा हुआ चेहरा देखकर रामाकान्त को लगा कि वह कोई मज़दूर होगा।

उसी समय उनकी बातों की आवाज़ उस व्यक्ति के कानों तक पहुँची और उसने अपना हँसुआ नीचे रख दिया।

ब्रह्मचारीजी अनेक भाषाओं और बोलियों के ज्ञाता थे। चारों लोगों को देखते ही वे समझ गए कि ये लोग मिथिला से आए हैं, क्योंकि उन्होंने जुगेसर और रामाकान्त को मिथिला की पारंपरिक शैली में धोती पहने देखा था। महेन्द्र को देखकर वे थोड़े उलझे, पर श्यामा की साड़ी ने उन्हें आश्वस्त कर दिया कि ये सभी मिथिलावासी ही हैं।

रामाकान्त ने सहज भाव से पूछा- "ब्रह्मचारीजी कहाँ हैं?"

साधारण धोती पहने, कमर में बाँधे, देह पर केवल एक अंगोछा डाले,

बिना केश कटवाए, बिना दाढ़ी बनाए, बिना गले की माला और बिना जनेऊ के वह व्यक्ति मुस्कराया और बोला- “आप लोग मिथिला से आए हैं न? ऐसे खड़े क्यों हैं? आइए, बैठिए। बातें करेंगे। ब्रह्मचारीजी स्वयं ही आ जाएँगे।”

यह कहकर उसने तालाब के घाट पर रखा हँसुआ एक ओर रखा, हाथ-पाँव धोए और आँगन में जाकर मूँज की एक मुठ्ठी बिछा दी। फिर घर के भीतर से एक घौरा (गुच्छा) केला निकाल लाया, सबको बैठाने के बाद।

केलों का रंग-रूप देखकर रामाकान्त ने पहचान लिया कि यह मिथिला का गौरिया-मालभोग है, अँठियाहा नहीं। घौरा भी बड़ा था, पूरा पका हुआ, डंठल से लटकते-लटकते तैयार हुआ। स्वाभाविक रूप से पका होने के कारण इसका स्वाद भी अच्छा होना निश्चित था।

केलों का घौरा बीच में रख दिया गया और सबके हाथ उसकी ओर बढ़े।

जुगेसर मन ही मन सोच रहा था- “अभी पेट भरा हुआ है, वरना पूरा घौरा अकेले खा जाता।”

रामाकान्त बोले- “अभी एक घंटे पहले ही भोजन किया है, इसलिए खाने की इच्छा तो नहीं है। लेकिन यह तो आश्रम का प्रसाद है, इसलिए दो केले अवश्य खाऊँगा।”

यह कहकर उन्होंने ऊपर से दो केले तोड़कर खाए। उन्हें देखकर महेन्द्र और जुगेसर ने भी दो-दो केले ले लिए।

श्यामा चुपचाप बैठी रही। उसने हाथ नहीं बढ़ाया।

उसे यूँ संकोच में देखकर ब्रह्मचारीजी बोले- “बहन, जिस कारण आपने हाथ रोका है, उसे मैं समझता हूँ। लेकिन हमारी मिथिला में दोनों प्रथाएँ प्रचलित हैं। एक प्रथा यह है कि पत्नी पति के सामने नहीं खाती, और दूसरी यह कि विवाह-प्रसंगों में समाज की स्त्रियाँ साथ बैठकर पति-पत्नी को एक साथ भोजन कराती हैं। इसलिए आपको संकोच नहीं करना चाहिए। यह तो आश्रम है, और धर्म-स्थान भी।”

ब्रह्मचारीजी के विचार सुनकर श्यामा का मन बाल्टी उठा, लेकिन सामाजिक व्यवहार ने मन को रोक लिया। उसकी झिझक देख जुगेसर मुस्कराया और बोला- "काकी, जब मेरी पत्नी की ऊँगली ढेकी में कट गई थी, तब मैंने खुद

अपने हाथों से उसे खाना खिलाया था। आप तो वृद्धा हैं।”

जुगेसर की बात सुनकर रामाकान्त ने सिर झुका लिया। श्यामा ने भी दो केले खा लिए। चारों ने केले खाकर हाथ-मुँह धोए। इसके बाद ब्रह्मचारीजी ने रामाकान्त से पूछा- “यहाँ आप लोग कैसे आए?"

रामाकान्त ने महेन्द्र की ओर इशारा करते हुए कहा- “यह मेरा ज्येष्ठ बेटा है। डॉक्टरी पढ़कर नौकरी करने यहाँ आ गया। साल में एक बार गाँव आता है। बच्चे और पत्नी अब तक गाँव नहीं गए। वे भी यहीं रहते हैं। हमारे मन में आया कि देश-कोस और बच्चों को देख लें, इसलिए चले आए।”

महेंद्र की ओर देखते हुए ब्रह्मचारीजी ने अगला प्रश्न किया- “कितने वर्षों से यहाँ रह रहे हो?"

महेंद्र थोड़ी देर चुप रहा, फिर समय को याद करते हुए बोला- “बाईस वर्ष हो गए।”

"इतने वर्षों से यहीं हो, फिर भी कभी भेंट नहीं हुई?"

अपनी विवशता जताते हुए महेन्द्र ने उत्तर दिया- “एक तो नौकरी करता हूँ, फिर डॉक्टरी ऐसा पेशा है जिसमें मन भर कभी आराम नहीं मिलता। घूमने-फिरने का तो सवाल ही नहीं उठता। अगर पता होता तो अवश्य आता, पर जानकारी ही नहीं थी।”

"आज कैसे आना हुआ?"

"चार दिन पहले हम लोग रामेश्वरम् गए थे। वहाँ एक पुजारी ने आपके बारे में बताया।”

महेंद्र की बात सुनकर ब्रह्मचारीजी हल्के से मुस्कुराए और बोले- “मैं भी महीने में एक बार रामेश्वरम् जाता हूँ। समाज-रूपी समुद्र के किनारे बसे उस नगर में समुद्र की लहरों को ध्यान से देखता हूँ और सोचता हूँ। समुद्र में दो तरह की लहरें उठती हैं, अच्छी और बुरी। अच्छी लहरें देखकर मन प्रसन्न होता है, बुरी देखकर मन जलने लगता है। फिर भी सोचता हूँ कि बुरी लहरें ज़्यादा प्रबल न हों और अच्छी लहरें बनी रहें।”

ब्रह्मचारीजी के विचार मानो महेन्द्र की सुप्त बुद्धि को जगा गए। उसके

भीतर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ, क्या हम अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ रहे हैं, या प्रकाश से अंधकार की ओर जा रहे हैं?

महेन्द्र एक विचित्र मानसिक स्थिति में पड़ गया। अब तक जिन रूपों में वह अपने माता-पिता और जुगेसर को देखता आया था, वे जैसे बदलने लगे थे। सोच के भँवर से निकलने के लिए वह चुपचाप उठकर बगीचे की ओर टहलने चला गया। ब्रह्मचारीजी सब समझ गए, पर कुछ बोले नहीं।

इसी बीच रामाकान्त ने ब्रह्मचारीजी से पूछा- “आप मिथिला छोड़कर यहाँ क्यों आ गए, जबकि यह क्षेत्र न धर्म में, न संस्कृति में, और न जातीय दृष्टि से हमारा है?"

ब्रह्मचारीजी मुस्कराए और बोले- “किसी भी जाति, संप्रदाय या संस्कृति का मूल आधार जीवन होता है। जीवन का आधार मनुष्य की बुद्धि, उसके विचार और उसके कर्म हैं। जब मनुष्य सच्चे कर्मों के बल पर जीवन का निर्माण करता है, तभी धर्म, संस्कृति, विचार और आचार उसका अनुसरण करते हैं। यही प्रक्रिया सही अर्थों में मनुष्य का निर्माण करती है। जिन्हें हम महामानव, धर्मात्मा या उच्च कोटि का मनुष्य मानते हैं, वे मिथिलांचल में धीरे-धीरे क्षीण होते जा रहे हैं। वे पूरी तरह नष्ट नहीं हुए हैं, लेकिन दबते-दबते बहुत दुर्बल हो गए हैं।

मिथिला के मूल निवासी लोगों को अभिजात या परजीवी वर्ग कहकर टाल दिया गया, और बाहरी लोगों ने धीरे-धीरे वहाँ का स्वरूप ही बदल डाला। परिणाम यह हुआ कि पुरानी संस्कृति दब गई और बनावटी जीवन का बोलबाला हो गया। जीवन की सच्चाई को दरकिनार कर कृत्रिमता को प्रतिष्ठा दे दी गई। अब स्थिति यह है कि मूल तत्व नष्ट तो नहीं हुए हैं, पर इतने क्षीण हो गए हैं कि अच्छाई और बुराई का भेद करना कठिन हो गया है।

हम मनुष्य को केवल मनुष्य मानते हैं, न कोई काला होता है, न गोरा। लेकिन सामाजिक संरचना ऐसी बन गई है कि अब कोई ऊँचा दिखता है और कोई नीचा। यह प्रवृत्ति निरंतर बढ़ रही है। बाहरी दृष्टि से सब एक-दूसरे से अलग प्रतीत होते हैं, लेकिन यह स्थिति वैसी ही है जैसी एक मकड़ी अपनी ही देह से रेशा निकालकर जाल बुनती है और अंततः खुद ही उसमें फँस जाती है।”

ब्रह्मचारीजी अपनी आँखें मूँदे हुए लगातार बोले जा रहे थे। तभी

रामाकान्त ने बीच में फिर पूछा- “आप तो प्रकाण्ड पंडित हैं। फिर भी मिथिला छोड़कर यहाँ क्यों चले आए?"

रामाकान्त के दोहराए गए प्रश्न पर ब्रह्मचारीजी गंभीर हो गए। कुछ देर शांत रहने के बाद बोले- “आपकी बात मैं मानता हूँ। पर स्थिति यह है कि आज पढ़े-लिखे से लेकर साधारण व्यक्ति तक के विचार ऐसे हो गए हैं कि अच्छे विचारों को स्थान ही नहीं मिल पाता। कहा भी गया है, ‘अकेला बृहस्पति भी झूठा ठहरता है।’

इतना ही नहीं, जिन लोगों को सबसे अधिक कल्याण की आवश्यकता होती है, वे ही सही मार्ग तक नहीं पहुँच पाते। जैसी कहावत है, ‘जिससे चोरी की जाती है, वही चोर कहलाता है।’

क्या किया जाए! यदि संघर्ष केवल वैचारिक स्तर तक सीमित होता, तो उसका सामना किया जा सकता था। लेकिन समस्या वहीं तक नहीं है। जीवन के कार्यक्षेत्र में जो उपद्रव होते हैं, वे लोग उन्हें खुलेआम करते हैं और प्राणों से भी खिलवाड़ करने से नहीं चूकते। अभिजात वर्ग इतना सशक्त हो गया है कि जैसे कोई साँड़ कीचड़ में फँसा हो और उसके आसपास कुत्ते, गिद्ध और कौए जीवित में ही उसकी आँखें नोचने लगें, वैसा ही हाल वहाँ ईमानदार लोगों का हो गया है।

फिर भी मैं हार मानने को न तैयार हूँ और ना ही कभी मानूँगा।

जैसे हर नए सूरज के साथ एक नया दिन शुरू होता है, वैसे ही कुछ नए लोग नया जीवन गढ़ने के लिए आगे बढ़ते हैं। उसी विश्वास से मुझे संतोष और शक्ति मिलती है।”

रामाकान्त ने फिर पूछा- “आपके परिवार में कौन-कौन हैं?"

ब्रह्मचारीजी ने उत्तर दिया- “मेरे पिता गृहस्थ थे। उनके पास लगभग पंद्रह बीघा जमीन थी। माँ और पिताजी दोनों मिलकर खेती करते थे। इससे परिवार अच्छी तरह चलता था। कभी-कभी सूखा और विपत्तियाँ भी आईं, लेकिन किसी तरह जीवन चलता रहा। हम दो भाई थे। मैं गाँव के नए विद्यालय में पढ़ा, और कुछ समय लोहना पाठशाला में भी पढ़ाई की। मेरा छोटा भाई बचपन से ही पिताजी के साथ खेती में लग गया। उसने पढ़ाई नहीं की। माँ और पिताजी दोनों

का निधन हो गया। मैंने विवाह नहीं किया। छोटे भाई का विवाह कराकर घर-गृहस्थी उसे सौंप दी, और मैं सब कुछ छोड़कर निकल पड़ा। मेरे मन में यह संकल्प था कि मिथिला समाज जिन कुरीतियों, अव्यवस्थाओं और छल-प्रपंचों में उलझा है, उसे सुधारना चाहिए, और उसे अच्छे मार्ग पर ले जाना चाहिए। तभी से उसी कार्य में लग गया।"

"लेकिन वहाँ की परिस्थितियों से निराश होकर मैं सब कुछ छोड़कर यहाँ चला आया," ब्रह्मचारीजी ने गहरी साँस लेते हुए कहा।

"वहाँ के नियम और व्यवस्थाएँ, और उनके पीछे खड़े वे पढ़े-लिखे लोग, जो स्वयं को बुद्धिमान समझते हैं, अभिजात वर्ग के साथ मिलकर मानवता की सच्चाई को इस हद तक विकृत कर चुके हैं कि अब कुपात्र ही आगे बढ़ते हैं और सुपात्र बनने का अवसर ही नहीं मिल पाता। चोरी, डकैती, बलात्कार, जातीय और धार्मिक उन्माद, मनुष्य बनने के जितने भी रास्ते थे, वे सब नष्ट हो चुके हैं। हर काम में संपत्ति की घुसपैठ हो चुकी है। इसी कारण सब कुछ बर्बाद होता जा रहा है।

सबसे दुखद बात यह है कि अच्छे से अच्छे, बड़े से बड़े और विद्वान से विद्वान व्यक्ति तक बोलते कुछ हैं और करते कुछ और। इसी कारण समाज में सत्य बोलने की परंपरा ही समाप्त हो गई है। ऐसे वातावरण में अच्छे लोगों का जीवित रहना ही कठिन हो गया है। यही कारण है कि मैंने सब कुछ छोड़कर मिथिला से निकलकर यहाँ आकर शरण ली। अब लोग केवल शरीर के सुख के पीछे अंधे होकर भाग रहे हैं।"

ब्रह्मचारीजी की बातें सुनकर रामाकान्त के भीतर कुछ बदलने लगा।

धन के प्रति जो मोह अब तक मन के किसी कोने में सुरक्षित बैठा था, वह ढहने लगा। उन्होंने मन ही मन सोचा- "मेरे पास भी दो सौ दो बीघा ज़मीन है। उसका क्या प्रयोजन? यदि मैं उसे भूमिहीनों और गरीबों में बाँट दूँ, तो कितने परिवार सुख से जी पाएँगे! जिनके पास ज़मीन है, वे तो इतनी कमाई कर ही लेते हैं। मिथिला तो त्यागियों और महापुरुषों की भूमि रही है। क्यों न मैं भी उसी परंपरा को जीवित करूँ?"

यही सोचते हुए उन्होंने ब्रह्मचारीजी से पूछा- "क्या आप इस जीवन से

संतुष्ट हैं?"

रामाकान्त का प्रश्न सुनकर ब्रह्मचारीजी मुस्कराए और बोले- "हाँ, मैं पूरी तरह संतुष्ट हूँ। इससे अच्छा जीवन और क्या हो सकता है? दुनिया की जितनी भाषाएँ हैं, उनकी उत्पत्ति, विकास और साहित्य की पुस्तकें मेरे पुस्तकालय में हैं। इतना ही नहीं, दुनिया के जितने धार्मिक संप्रदाय हैं, उनकी भी पुस्तकें मेरे पास हैं और मैं उनका नियमित अध्ययन करता हूँ।

मेरे पास वेद, उपनिषद, ब्राह्मण संहिता, याज्ञवल्क्य, ज्योतिष, पुराण, रामायण, संवर्त, शंख, गार्गेय, देवल, शरतातप और शातातप स्मृतियाँ हैं। साथ ही बाइबिल, कुरान शरीफ़ और गुरु ग्रंथ साहिब भी हैं। मैं सभी दर्शनों की पुस्तकें पास रखता हूँ और नियमित रूप से उनका अध्ययन करता हूँ। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्रतिदिन कुछ समय शारीरिक श्रम करता हूँ और शेष समय अध्ययन, चिंतन और मनन में व्यतीत करता हूँ।

हर महीने एक दिन सभी धार्मिक संप्रदायों के विद्वानों को बुलाकर उनके विचार सुनता हूँ। एक दिन राजनीतिक विषय पर व्याख्यान आयोजित करता हूँ, एक दिन साहित्य पर। इसके अतिरिक्त समय-समय पर किसान गोष्ठियाँ, चिकित्सा और विज्ञान गोष्ठियाँ भी आयोजित करता हूँ। आज के वैश्वीकरण के गुण-दोषों पर भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चर्चा करता हूँ।

समय कैसे बीत जाता है, पता ही नहीं चलता।"

ब्रह्मचारीजी बोल ही रहे थे कि महेन्द्र भी आ पहुँचे। उनका चेहरा व्याकुल और भीतर से टूट चुका प्रतीत हो रहा था, जैसे कोई गहरी बेचैनी उन्हें मथ रही हो।

उधर, रामाकान्त भी अब बाहरी संसार से हटकर अपनी भीतरी दुनिया की ओर बढ़ने लगे थे।

चारों ने ब्रह्मचारीजी के चरण छुए और विदा लेने की इच्छा प्रकट की, पर उन्होंने उन्हें रोक लिया। वे स्वयं उन्हें गाड़ी तक छोड़कर लौट गए।

गाड़ी में किसी ने कुछ नहीं कहा। सब अपने-अपने विचारों में डूबे हुए थे, गहरे, मौन और व्यथित।

डेरे पर पहुँचते ही रामाकान्त ने महेन्द्र से कहा- "बेटा, अब मैं एक दिन

भी नहीं रुकूँगा। गाँव की याद बहुत खींच रही है। जितनी जल्दी हो सके, विदा कर दो।”

महेन्द्र ने तुरंत उत्तर दिया- “ठीक है, आज ही टिकट देख लेते हैं। यहाँ से दरभंगा की गाड़ी साप्ताहिक है, इसलिए तत्काल तो नहीं मिलेगा। और मिल भी गया तो पाँच दिन रुकना पड़ेगा।”

रात आठ बजे सभी एक जगह बैठ गए। विषय था, गाँव।

गाँव की स्मृतियों, लोगों, बीते दिनों की बातों का सिलसिला शुरू हो गया। बातचीत के दौरान महेन्द्र बोले- "जीवन पहले कैसा था और अब कैसा हो गया है, इस पर सोचने का अवसर ही नहीं मिला था। बचपन में हम बिलकुल पक्षियों की तरह स्वतंत्र थे, न चिंता, न फिक्र। जीवन वैसा था जैसे कोई गाड़ी मध्यम गति से चल रही हो। न परीक्षा का दबाव था, न नौकरी पाने की बेचैनी। सहज गति से आई.एस-सी. पास किया, मेडिकल कॉलेज में नाम लिखाया और डॉक्टर बन गया। डॉक्टर बनने के बाद नौकरी और पैसों की भूख इस कदर बढ़ी कि गाँव, समाज, रिश्ते- सब पीछे छूट गए। हजारों कोस दूर चला आया और यहाँ आकर बाजारू समाज और नकली संस्कृति में इस तरह उलझ गया कि न परिवार बचा, न लोकजीवन। पैसा जितना कमाना चाहता हूँ, काम का बोझ उतना ही बढ़ता जाता है। सुख-भोग की कल्पनाएँ तो बहुत हैं, पर उनके लिए समय ही नहीं बचता। समय का यह हाल है कि कई दिनों तक अख़बार तक नहीं पढ़ पाता। अब सोचता हूँ कि अब तक जो जीवन की परिभाषा थी, वह कितनी भ्रमित थी। इतने वर्षों तक स्वयं को सुखी समझता रहा, लेकिन आज समझ में आता है कि वह सुख असली सुख नहीं था। सच्चा सुख वही है जिसमें हर व्यक्ति को जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ मिलें। हर व्यक्ति से परिवार बनता है और परिवार से समाज। हर व्यक्ति का पहला कर्तव्य है कि वह पहले अपने पैरों पर खड़ा हो, फिर अपने परिवार को। जब परिवार सशक्त होगा, तभी समाज स्वतः खड़ा होकर आगे बढ़ेगा।”

असल में, सुख क्या है, इस पर विचार करना चाहिए। मनुष्य पंचभौतिक शरीर और आत्मा के संयोग से बनता है। सुख और दुख आत्मा की अनुभूति हैं, शरीर की नहीं। वैसे देखा जाए तो संसार के सभी लोगों को समान स्तर पर

जीवन जीने का अधिकार होना चाहिए, लेकिन ऐसा है नहीं।

दुनिया देश में बँटी हुई है, और देश शासन, व्यवस्था, समाज, भाषा, संस्कृति और जातियों में विभाजित हैं। इन्हीं कारणों से खान-पान, रीति-रिवाज और जीवन-शैली में भिन्नता आ गई है। हम कहते हैं कि हम मनुष्य की सेवा कर रहे हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि पैसों के कारण सेवा केवल पैसे वालों की ही हो पाती है। बिना पैसे वालों की सेवा नहीं हो पाती, जबकि उन्हें ही इसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। वे भोजन, आवास, वस्त्र, दवा और इलाज जैसी बुनियादी चीजों से वंचित रह जाते हैं। इस कारण उनका जीवन पशुओं से भी अधिक कठिन हो गया है। वे शरीर से भले ही मनुष्य हैं, पर जीवन के स्तर पर जानवरों जैसी स्थिति में जीने को विवश हैं। डॉ. महेन्द्र की बातें सब ध्यान से सुन रहे थे। रामाकान्त ने सिर हिलाते हुए कहा- "बेटा, जिस गाँव में तुम्हारा जन्म हुआ और जिस मिट्टी-पानी में रहकर तुम डॉक्टर बने, उसी गाँव के लोग इलाज के अभाव में मर जाएँ, यह कितनी दुख की बात है।"

रामाकान्त की यह बात सुनकर सब चुप हो गए। कोई कुछ नहीं बोल पाया। सब एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे।

गाँव हजारों कोस दूर है, वहाँ से यहाँ इलाज कैसे संभव है, यही सवाल सभी के मन में उठने लगा। काफी देर बाद महेन्द्र ने कहा- "पिताजी, सवाल इतना भारी है कि इसका जवाब सोच में नहीं आ रहा। लेकिन एक उपाय मन में आया है।"

रामाकान्त ने पूछा- "क्या?"

महेन्द्र ने कहा- "आप गाँव जाएँ तो वहाँ से दो युवाओं को, एक लड़का और एक लड़की, जो थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे हों, यहाँ भेज दीजिए।

हम उन्हें छह महीने तक प्रशिक्षित करेंगे। प्राथमिक इलाज और देखभाल सिखाकर उन्हें वापस गाँव भेज देंगे।

वहाँ पहुँचते ही वे सेवा कार्य शुरू कर देंगे। साथ ही हम चारों डॉक्टर साल में एक-एक महीना गाँव जाकर वहाँ रहेंगे और यथासंभव सेवा करेंगे।

यदि कोई गंभीर बीमारी होगी तो फोन पर बुलाया जा सकता है।

और लहेरियासराय तो है ही। वहाँ तक भी मरीजों को पहुँचा सकते हैं।"

महेन्द्र की बात रामाकान्त को बहुत पसंद आई।

मुस्कराते हुए वे बोले- “बेटा, गाँव के लोग तो बहुत गरीब हैं। वे इलाज का खर्च कैसे उठाएँगे?"

गरीबी की बात सुनते ही रवीन्द्र तुरंत बोल पड़े- “बाबू, हम सब अच्छी कमाई करते हैं। इलाज में जितना भी खर्च होगा, हम सब मिलकर वहन करेंगे। इतना ही नहीं, आप अभी जाइए और दो लोगों को भेज दीजिए। अगले महीने हम गाँव आकर एक स्वास्थ्य केंद्र बनाएँगे, जहाँ सभी का इलाज होगा।”

रवीन्द्र की बात सुनकर सबके चेहरे पर मुस्कान फैल गई।

रामाकान्त के मन में एक विचार उठने लगा, हमारे पास दो सौ बीघा ज़मीन है, लेकिन हम हैं कितने लोग? यदि ईमानदारी से सोचें तो क्या हम भी चोर नहीं हैं? महाभारत में कहा गया है कि जो अपनी आवश्यकता से अधिक संपत्ति रखता है, वह चोर है। यही बात पिताजी भी बार-बार कहते थे। यद्यपि हमने दूसरों की तरह बेईमानी से खेत नहीं जोड़े, लेकिन हमारी आवश्यकता से अधिक तो आज भी हमारे पास है। बातों-बातों में रात के साढ़े दस बज गए। भोजन का समय हो गया और सबने बातचीत रोककर खाना खा लिया। अगले दिन सुबह से ही रामाकान्त के दोनों बेटे और बहुएँ विदाई की तैयारी में लग गए। यहाँ कई परिवारों से मेल-मिलाप हो चुका था, जिनके यहाँ ये लोग काम के सिलसिले में आते-जाते थे।

इसलिए विदा होने से पहले परिचितों को सूचना देना ज़रूरी समझा गया। घर के अपने लोग भी माता-पिता की विदाई की तैयारी में जुट गए। इन चार दिनों में रामाकान्त ने टहलना-फिरना छोड़ दिया और आत्मनिष्ठ होकर दिन-रात सोच में डूबे रहे। चाय पीते समय, पान खाते समय, भोजन करते समय और बाकी समय बिस्तर पर लेटे-लेटे वे जीवन के बारे में गहराई से विचार करते रहे। अब तक वे केवल एक ही दुनिया को जानते थे, पर अब उन्हें लग रहा था कि उन्होंने दूसरी दुनिया को भी देख लिया है। एक दुनिया वह है जो बाहर है और आँखों से देखी जा सकती है। दूसरी दुनिया भीतर है, जिसे अब तक उन्होंने कभी नहीं देखा था।

यह भीतर की दुनिया किसी फूलों की बगिया जैसी लगती थी, जिसमें

आशा के अनगिनत फूल खिले हुए थे। शाम पाँच बजे मद्रास रेलवे स्टेशन से दरभंगा की गाड़ी छूटने वाली थी। आरक्षित टिकट होने के कारण रामाकान्त के मन में किसी प्रकार की चिंता नहीं थी। गाड़ी पकड़ने की हड़बड़ी तो उसे होती है जिसे साधारण बोगी में ताज़ा टिकट लेकर यात्रा करनी हो।

आरक्षित डिब्बों में यात्री गिने-चुने होते हैं और अनधिकृत लोगों का प्रवेश नहीं होता। दोपहर दो बजे तक सारा सामान अटैचियों और कार्टनों में सहेज लिया गया। रास्ते के लिए एक झोले में खाने-पीने का सामान रख दिया गया। दस लीटर का एक गैलन पानी, एक थर्मस में चाय और पानबट्टी में पान भी रखे गए।

डॉ. सुजाता ने एक कार्टन में विदेशी शराब देते हुए आँखों के इशारे से अपने ससुर को सावधानीपूर्वक समझा दिया।

चार बजे पराठा-भुजिया खाकर तीनों जन नए वस्त्र पहनकर तैयार हो गए। स्टेशन पास ही था, इसलिए किसी प्रकार की हड़बड़ी नहीं थी। हालाँकि सामान अधिक था, इस कारण गाड़ी खुलने से पहले स्टेशन पहुँचना आवश्यक लगा। वैसे भी गाड़ी मद्रास से ही बनकर चलती थी, इसलिए डिब्बों में सामान रखने में कोई कठिनाई नहीं थी। साढ़े चार बजे तक सभी लोग डेरा छोड़कर गाड़ी पकड़ने के लिए स्टेशन रवाना हो गए। ❑

6.

छुट्टी का दिन होने के बावजूद हीरानन्द गाँव नहीं गए। पास में ही गाँव होने के कारण वे अक्सर शनिवार को जाते और सोमवार को स्कूल खुलने से पहले लौट आते थे। परंतु जब से रामाकान्त मद्रास गए हैं, यह क्रम बदल गया है। रामाकान्त घर पर नहीं रहने के कारण परिवार की सारी ज़िम्मेदारी उनके कंधों पर सौंपकर गए थे।

सूर्योदय होते ही हीरानन्द ने स्नान किया, चाय पी और फिर बौएलाल के घर पहुँचे। मन ही मन उन्हें याद आ रहा था कि रामाकान्त बाबू ने कहा था- "मद्रास जा रहा हूँ, बच्चों से मिलूँगा और पास पड़ोस भी घूम आऊँगा।" लेकिन अब पंद्रह दिन बीत चुके हैं, फिर भी वे लौटकर क्यों नहीं आए? हालाँकि मद्रास दूर है और परिवार के लोग भी वहीं हैं, इसलिए देर होना स्वाभाविक है।

रास्ते में जब भी कोई बच्चा मास्टर साहब को देखता तो हाथ जोड़कर प्रणाम करता और हीरानन्द उसे आशीर्वाद देते हुए आगे बढ़ जाते। बौएलाल के घर से थोड़ी ही दूरी पर पहुँचते ही बौएलाल ने उन्हें देख लिया। देखते ही वह आगे बढ़ा, प्रणाम किया और उन्हें अपने घर ले आया।

हीरानन्द को पाकर बौएलाल ने बहुत कुछ सीखा और खुद को सुधारा भी। उसने मास्टर साहब को अपने एकचारी में बैठाया और स्वयं आँगन में पानी लेने गया। लोटे में पानी लाकर उसने कहा- "पैर धो लीजिए।" लोटे में पानी देखकर हीरानन्द के मन में मिथिला की परंपराएँ झिलमिलाने लगीं। वे सोचने लगे कि हमारे पूर्वज कितने विचारवान थे जिन्होंने ऐसी परंपराएँ स्थापित कीं।

पैर धोकर हीरानन्द चौकी पर बैठे। बौएलाल चाय बनाने आँगन में चला गया। इसी बीच अनूप, यानी बौएलाल के पिता, बाड़ी में खुरपी छोड़कर मिट्टी से सने हाथों के साथ आ गए। उन्होंने मास्टर साहब को प्रणाम किया और चौकी के नीचे एकचारी के खूँटे से टिककर बैठ गए। उनके मिट्टी से लथपथ हाथ देखकर

मास्टर साहब ने पूछा- “क्या काम कर रहे थे?"

अनूप ने निःसंकोच उत्तर दिया- “बाड़ी में गेनहारी साग बोई है। उसमें इतनी मोथा उग आई है कि साग ढक गया है, उसी को हटा रहा था।”

सुनकर मास्टर साहब बोले- “चलिए, जब तक बौएलाल आता है, हम भी देख लें।”

यह कहकर हीरानन्द उठ खड़े हुए। उन्हें खड़ा देख अनूप भी उठे और आगे-आगे चल दिए। थोड़ी ही दूर पर बाड़ी में साग लगा हुआ था। देखकर हीरानन्द बोले- “आज तक मैंने ऐसी गेनहारी कभी नहीं देखी। यह तो अद्भुत है। साधारण गेनहारी के तो एक ही रंग के पत्ते होते हैं, हम लोग भी उपजाते हैं, लेकिन यह तो फूल जैसी लगती है। आधा पत्ता लाल और आधा हरा। इसका बीज कहाँ से लाए?"

मास्टर साहब की जिज्ञासा देखकर अनूप प्रसन्न हुए और बोले- “हम साढ़ू के घर न्योता पूरने में गए थे। वहीं देखा। देखकर मन खुश हो गया। वहीं से बीज लाया। करीब दस साल से हर साल बोता हूँ। खाते-खाते जब पौधे में फूल और बीज आने लगते हैं, तो छोड़ देता हूँ। फिर उनमें इतना बीज हो जाता है कि हम बो भी लेते हैं और जो माँगता है, उसे भी दे देते हैं।”

हीरानन्द ने कहा- “इस बार मुझे भी थोड़ा दीजिए।”

अनूप खुशी से बोले- “अवश्य।”

दोनों बाड़ी से घूमकर फिर एकचारी में लौटकर बैठे। इसी बीच बौएलाल भी चाय बनाकर ले आया। दोनों को चाय देकर वह आँगन गया, खुद भी चाय पी और माँ को भी दी।

चाय पीकर बौएलाल की माँ घूँघट ताने दरवाज़े पर आईं और मास्टर साहब के चरण छुए। दुबला-पतला शरीर, पके बाल और धँसी हुई आँखें। रधिया की हालत देखकर मास्टर साहब का मन काँप उठा। उन्होंने सोचा- “हाय रे गरीबी, यह तो आग से भी भयंकर जलन है। पैंतीस-चालीस साल की उम्र में यह दशा।”

मुस्कुराते हुए रधिया ने एक आँख उठाकर कहा- “आज मेरा भाग्य जाग गया कि मास्टर साहब मेरे द्वार आए हैं। बिना खिलाए-पिलाए नहीं जाने दूँगी।

जो कनसाग बना है, वही खाकर जाइए।”

रधिया के स्नेहपूर्ण आग्रह का एक-एक शब्द सुनकर हीरानन्द की आँखें भर आईं। दोनों हथेलियों से आँसू पोंछते हुए बोले- “असल में तो मैं पास ही घूमने के विचार से आया था, लेकिन आप सबका स्नेह बिना खाए जाने नहीं देगा। अवश्य खाऊँगा।”

घर में सुपारी नहीं थी, इसलिए बौएलाल सुपारी लाने दुकान गया। तभी मास्टर साहब ने अनूप से पूछा- “आपके पूर्वज कितने दिन पहले इस गाँव में आकर बसे थे?"

हीरानन्द का प्रश्न सुनकर अनूप असमंजस में पड़ गया। मन ही मन सोचने लगा कि ऐसी बात तो आज तक किसी ने घर पर नहीं पूछी थी। मास्टर साहब ने यह क्यों पूछा? लेकिन उनके प्रति जो उपकार का भाव उसके हृदय में बसा था, वह इतना गहरा था कि वह उन्हें अपनी आत्मा का दूसरा रूप मानता था। उन्हीं की कृपा से बेटा पढ़-लिख पाया और इंसान बनने का रास्ता सीख सका।

मुस्कराते हुए अनूप बोला- “मास्टर साहब, मेरे पिता का अपना घर भी नहीं था। दूसरों की ज़मीन पर घर बना था और दूसरों के ही हल-बैल से खेती करते थे। उन्हीं के खेत में रोपाई और कमठौन भी करते। उन्हीं की गाय हम पालते थे। साल भर में जितने भी पर्व-त्योहार होते और जब कभी कर्ज़ लेना पड़ता, तो उसी गाय का दूध बेचकर या घर के बर्तन बेचकर कर्ज़ चुकाते।”

"एक दिन पिता का मन बहुत खराब था। गाँव का गिरहत आया और कहने लगा कि उसकी बेटी के यहाँ ब्याह है, तो वह आने के लिए कहा है। पिता का मन खराब रहता था, इसलिए उन्होंने मना कर दिया। इस पर उसने शोर मचाया और बाप-बेटे दोनों ने मिलकर मेरे पिता को गालियाँ दीं और आँगन की झोपड़ी उजाड़कर कह दिया कि हमारा घर छोड़ दो।”

"पिता ने कई लोगों से गुहार लगाई, लेकिन सब उसी की तरफ़ हो गए। तब मजबूर होकर पिता ने मिट्टी के बर्तन-भांड़े छोड़ दिए, थाली-लोटा, नए कपड़े और हल-खुरपी की गठरी बाँधी और मुझे और माँ को साथ लेकर गाँव से निकल गए।”

"रास्ते में एक आम का पेड़ था, वहीं जाकर हम बैठ गए। पिता का सीना

धड़क रहा था। दोनों आँखों से आँसू बह रहे थे। माँ भी रो रही थी। थोड़ी देर वहीं बैठे, फिर आगे बढ़ गए।”

बोलते-बोलते अनूप की आँखों में आँसू आ गए। उसे रोता देखकर हीरानन्द की आँखें भी भर आईं। उन्होंने रूमाल से आँसू पोंछते हुए फिर पूछा- “फिर क्या हुआ?"

अनूप के हाथ मिट्टी से सने थे, इसलिए उसने हाथ की पीठ से आँसू पोंछे और बोला- “यह मेरा ननिहाल है, मास्टर साहब। तब मेरे नाना जीवित थे। उनकी एक ही बेटी थी, मेरी माँ। जब हम तीनों यहाँ आए तो नाना और नानी आँगन में ही थे। नानी और माँ दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाकर रोना शुरू कर दिया। पिता भी रोने लगे। नाना ने मुझे गोदी में उठाया और आँसू पोंछते हुए आँगन से बाहर आकर सड़क पर बुलाने लगे। थोड़ी देर बाद नानी ने रोते-रोते गठरी घर में रख दी और जल्दी-जल्दी करती चूल्हा जला दिया। लेकिन माँ रोती ही रही।”

बीच में ही हीरानन्द ने पूछा- “नाना गुजर कैसे करते थे?"

हीरानन्द का प्रश्न सुनकर अनूप हल्के से हँस पड़ा और बोला- “आपसे क्या छिपाना, मास्टर साहब। महीने में आठ-दस शाम को तो भोजन भी नहीं होता था। जब मैं छोटा था, तब नानी मटके में बासी भात रख देती, वही हम खा लेते।”

अनूप की बात सुनकर हीरानन्द का हृदय पिघल गया। उन्होंने अनूप से कहा- “जाइए, अपना काम देखिए। बौएलाल तो आ ही गया।”

मास्टर साहब के कहने पर अनूप फिर साग की कमठौन करने चला गया। बौएलाल और हीरानन्द रामाकान्त की चर्चा करने लगे।

बौएलाल बोला- “करीब पंद्रह दिन हो गए, लेकिन बाबा अब तक क्यों नहीं लौटे? कहते तो थे कि आठ दिन में आ जाऊँगा। कहीं कुछ हुआ तो नहीं?"

हीरानन्द ने कहा- “अब तक तो कोई ख़बर भी नहीं भेजी है, तभी तो समझ नहीं पा रहा हूँ।”

दोनों उठकर बाड़ी की ओर घूमने चल दिए। पपीते के पेड़ को हीरानन्द ध्यान से देखने लगे। पहली बार का फल था, इसलिए बड़े-बड़े थे। शुरू के लगभग दस फल तो बड़े थे, बाकी जैसे-जैसे ऊपर आते गए, वैसे-वैसे छोटे और सिकुड़े

हुए। पाँच-सात फल इधर-उधर बिखरे थे, जिनमें से एक लाल होने लगा था।

हीरानन्द ने उंगली से इशारा करते हुए बौएलाल से कहा- “बौएलाल, वह फल तोड़ लाओ। पूरी तरह पका तो नहीं है, लेकिन खाने लायक हो गया है। आखिर हम लोग दाँत के मजबूत ही तो हैं।”

पेड़ बहुत बड़ा नहीं था। बौएलाल ने हाथ से ही वह फल तोड़ लिया और डंठल से बहते दूध को मिट्टी पर रगड़ दिया। दोनों घूमते हुए फिर एकचारी में लौट आए। हीरानन्द चौकी पर बैठे और बौएलाल फल लेकर आँगन में गया। वहाँ से चाकू और एक छोटी थाली लेकर लौटा। चाकू से पपीता काटकर टुकड़े-टुकड़े किया। थाली भर गई। भरी थाली बौएलाल ने हीरानन्द के सामने रख दी।

थाली देखकर हीरानन्द बोले- “यह सब तो मैं अकेले खा नहीं पाऊँगा। अधिक से अधिक पाँच-सात फाँकें खा लूँगा। बाकी तुम आँगन में ले जाओ।”

बौएलाल ने वैसा ही किया। पपीता खाकर और पानी पीकर हीरानन्द ने बौएलाल से कहा- “चलो, थोड़ा टहल आएं?"

दोनों रास्ते-रास्ते घूमने लगे।

जब तक दोनों लौटकर आए, तब तक रधिया अरवा चावल का भात, मछली की सब्ज़ी और तरुआ बना चुकी थी। खाना पकाकर उसने चिकनी मिट्टी से आँगन लीप दिया, हाथ धोकर कंबल चौगुना मोड़कर बिछा दिया। थाली, कटोरी, लोटा और ग्लास को राख से माँजकर धो दिया। लोटा और ग्लास में पानी भरकर बिछे कंबल के पास रख दिया और बौएलाल से कहा कि जाकर मास्टर साहब को बुला लाए।

आँगन में आकर हीरानन्द कंबल पर बैठ गए और मन ही मन सोचने लगे- “भोजन से तो पेट भरता है, पर स्नेह से मन भरता है, और वही यहाँ भर रहा है।”

तभी बौएलाल घर से थाली लाकर उनके सामने रख गया। गमगमाता भात, उस पर मछली की गाढ़ी सब्ज़ी, साथ में नींबू का टुकड़ा और कटोरी में तरुआ। सब कुछ परोसा देखकर मुस्कराते हुए हीरानन्द बोले- “निश्चय ही भोजन की व्यवस्था ढंग से की है। देखकर ही पेट भर गया!"

मास्टर साहब की बात सुनकर रधिया से खुशी रोकी न गई। वह बोली-

“मास्टर बाबू, आप बड़े हैं, देवता समान हैं। हमारा सौभाग्य है कि आप जैसे हमारे घर में भोजन कर रहे हैं।”

रधिया की बात सुनकर हीरानन्द समझ गए कि वह भात को अशुद्ध समझकर कह रही है। उस विचार को ढकते हुए हीरानन्द बोले- “मैं बौएलाल को छोटा भाई मानता हूँ और इस परिवार को अपना परिवार। फिर भात-रोटी खाने में संकोच कैसा?"

हीरानन्द की बात सुनकर रधिया का मन सावन के बादल की तरह उमड़ पड़ा। उसे लगा कि अपनी सारी जीवन-कथा मास्टर साहब को कह ही डाले। उत्साहित होकर कहने लगी- “मास्टर बाबू, ऐसे भी दिन देखे हैं कि एक दिन पिसियौत भाई आया हुआ था। घर में एक दाना चावल भी नहीं था। चिंता हो गई कि भाई को खाने को क्या दूँ। तीन-चार घरों में चावल उधार माँगने गई, पर सबकी हालत खराब थी। किसी के पास होता तो मुझे देती। हारकर मड़ुआ की रोटी और सेम-बैंगन की सब्ज़ी बनाकर भाई को खिलाया और हम भी उसी से पेट भरकर रहे। लेकिन अब तो रामाकान्त काका के आशीर्वाद से सब कुछ है।”

थाली में कटोरी से रस डालते हुए हीरानन्द बोले- “पहले और अब में कितना अंतर महसूस होता है?"

रधिया बोली- “मास्टर बाबू, आपसे क्या छिपाना! अब तो राजा हो गए हैं। पहले तो भिखारी जैसे थे। हर समय पेट की चिंता बनी रहती थी।”

हीरानन्द अपने मुँह का भात और मछली चबा रहे थे कि तभी दाँतों के बीच एक काँटा चुभ गया। भात निगलकर उन्होंने उँगली से काँटा निकाला और थाली के किनारे रखकर बोले- “पहले जितना काम करना पड़ता था, अब उससे ज़्यादा काम करना पड़ता है या कम?"

रधिया ने उत्तर दिया- “पहले ज़्यादा काम करना पड़ता था। मजदूरी करके लौटती तो आँगन के काम में लग जाती। आँगन का काम सँभालकर खाना बनाती। खाना बनाते-बनाते देर हो जाती, तब जाकर मैं खाती।”

ओसारे पर बैठे अनूप ने रधिया पर चिढ़ते हुए कहा- “मास्टर साहब को खाने दोगी या नहीं?"

अनूप की बात सुनकर हीरानन्द ने टोका- “अनूप, आप झुंझला क्यों रहे

हैं? मैं भोजन भी कर रहा हूँ और बातें भी सुन रहा हूँ। जो कुछ काकी कह रही हैं, वह मुझे अच्छा लग रहा है।”

मास्टर साहब का समर्थन पाकर रधिया के मन में और उत्साह जाग गया। उसे लगा कि जितना भी मन में है, सब कुछ मास्टर साहब को कह सुनाए। बोली- “मास्टर बाबू, साल में आधे से ज़्यादा दिन साग ही खाकर गुज़ारे हैं। माघ-फाल्गुन में जब खेसारी और मसूर उराहते थे, तब सिर्फ दस-पंद्रह दिन दाल खाई जाती थी, वरना बाड़ी-झाड़ी में जो भी हरी सब्ज़ियाँ होतीं, उसी से काम चलता था। ज़्यादातर समय साग ही बनता था। खेसारी महीने में तो महीना भर, दोनों वक़्त, या तो खेसारी का साग खाते थे या फिर बनाती हैं?”

हीरानन्द ने जैसे ही 'खेसारी साग' का नाम सुना, उत्सुकता से पूछा- “खेसारी साग कैसे बनाते हो?"

मास्टर साहब का यह सवाल सुनते ही अनूप पुरानी यादों में खो गया। चेहरे पर हल्की मुस्कान आई और वह बोला- “मास्टर साहब, कहीं औरतें खेसारी का साग भी पकाती हैं?"

अनूप की बात पर हँसते हुए हीरानन्द ने टोकते हुए कहा- “अरे, खेसारी साग में हरी मिर्च और लहसुन का तड़का लगाकर मेरी पत्नी भी बनाती हैं। मुझे तो बड़ा स्वादिष्ट लगता है।”

इस पर अनूप ने व्यंग्य से कहा- “आप सबकी पत्नियों का परतर राँड़िन को होगा। भला मैं ही हूँ जो ऐसे लोगों का गुजर-बसर चल रहा है। नहीं तो...?"

अनूप की व्यंग्यात्मक बात समझकर हीरानन्द चुप हो गए। मगर मुस्कराकर रधिया बोली- “नहीं तो ससुराल में वास नहीं होता, यही न?"

अनूप ने कहा- “याद करो, जिस दिन तुम यहाँ आई थी, उस दिन कितनी-कितनी कमियाँ थीं। अगर सास ने न सिखाया होता तो क्या कोई हुनर आता?"

बात का रुख बदलते हुए रधिया बोली- “माँ और सास में भला क्या अंतर होता है। जैसे अपनी माँ, वैसे ही पति की माँ। सीखा तो मैंने ही।”

रधिया ने अनूप की ओर देखा और अनूप ने रधिया की ओर। दोनों के मन में क्रोध नहीं था, केवल स्नेह भरा था। इसलिए वातावरण मधुर बना रहा।

इसी बीच हीरानन्द ने साग के संबंध में कहना शुरू किया- “हमारे पूर्वज बहुत गरीब थे। आज की तरह सुविधाएँ कहाँ थीं। ज़्यादातर तो वे साग-सब्ज़ी ही खाकर रहते थे।”

भोजन जैसा बना था, वैसा ही पवित्र बर्तन था, और उससे भी उत्तम थी बैठने की जगह और साथ में ऐतिहासिक बातचीत। जितने भी व्यंजन हीरानन्द के सामने आए, उन्होंने धीरे-धीरे सब खा लिया। पानी उन्होंने नहीं पिया क्योंकि न तो उनके गले में भात फँसा और न ही तीता।

पूरी तृप्ति के साथ भोजन कर, कटोरे में हाथ धोते हुए उठते समय हीरानन्द बोले- “इतना कसकर भोजन आज तक नहीं किया था।”

आँगन से निकलकर वे बरामदे में आकर सीधा लेट गए। लेटे-लेटे अनूप और बौएलाल से कहा- “तुम लोग भी जाकर भोजन कर लो। मुझे तो नींद आ रही है।”

हीरानन्द करवटें बदलते रहे। मन ही मन सोचते रहे कि इतने कम समय में अनूप कितनी तरक्की कर गया। तरक्की का कारण यही रहा कि उसने परिवार को सही ढंग से आगे बढ़ाया। जो परिवार जितनी सही दिशा में चलता है, वह उतनी ही तेजी से आगे बढ़ता है।

मगर ज़िंदगी का रास्ता बाँस की तरह सीधा नहीं होता। वह तो टेढ़ा-मेढ़ा होता है, जिसमें इंसान भटक जाता है। जीवन के मार्ग पर कदम-कदम पर तिनबट्टी और चौराहे होते हैं, जहाँ आदमी रास्ता खो बैठता है। और अगर किसी को उस मार्ग के आदि और अंत का ज्ञान नहीं होता, तो वह और भी उलझ जाता है।

ज़िंदगी के रास्ते पर तरह-तरह की उलझनें हैं। इसी में फँसकर कोई रास्ता भटक जाता है, तो कोई अपना घर-द्वार छोड़कर भटकने लगता है। क्षणिक सुख की चाह में कितने लोग स्थायी सुख के मार्ग से दूर हो जाते हैं। छोटे-छोटे सुख बड़े सुख की राह में ऐसे पर्वत बनकर खड़े हो जाते हैं जिन्हें पार करना आसान नहीं होता। जीवन का रास्ता एक नहीं, अनेक हैं, लेकिन पहुँचने का ठिकाना एक ही है। जितने मनुष्य हैं, उतने ही रास्ते हैं। हर व्यक्ति का जीवन दूसरे से अलग होता है।

अनुभवहीन और अनुभवशील, अज्ञानी और ज्ञानी, दोनों ही जीवन की शुरुआत में यह नहीं समझ पाते कि कौन-सा मार्ग उन्हें सही मंज़िल तक पहुँचा सकता है और कौन-सा रास्ता भटका देगा। उद्धार की बात तो एक से एक लोग कहते आए हैं और कई सम्प्रदाय अपनी-अपनी कहानियाँ गढ़ते रहे हैं। मगर उस मार्ग में कितनी गहरी खाइयाँ हैं, जहाँ आदमी फँस जाता है और गिर पड़ता है, यह समझना आसान नहीं।

फिर भी यह सत्य है कि निष्कलंक जीवन जीकर बहुत-से लोग उस स्थान तक पहुँच चुके हैं, और बहुत-से अब भी पहुँच रहे हैं और आगे भी पहुँचेंगे। भले ही उन्हें भरपेट भोजन न मिला हो या तन ढकने को वस्त्र न रहे हों। सूखे पेड़ रूपी समाज को जब तक गंगाजल-सा पवित्र जल नहीं मिलेगा, तब तक उसमें न कलश भरेगा, न फूल खिलेगा। और यदि कभी फूल खिल भी जाए तो वह कुछ ही दिनों में मुरझा जाएगा। दुख कोई क्षणिक अनुभूति नहीं है, वह तो समाज की जड़ों में गहराई से समाया हुआ है।

अनेक महान व्यक्ति इस दिशा में देखने और सुधार करने के लिए अदम्य साहस और शक्ति लगाए, लेकिन दुख कहाँ पूरी तरह मिट पाया।

हम सब मातृभूमि की संतान हैं। हम सबका कर्तव्य है कि अपनी माँ की सेवा करें। छठ्ठी की रात समाज की माताएँ और बहनें अपने आँगन में दीप जलाकर पूजा करती हैं, उन्हें सीने से लगाती हैं। हम उन्हें भुलाकर कैसे जी सकते हैं? क्या सब वीरान हो चुके हैं? क्या अब अपना कोई नहीं रहा?"

समय ढलने लगा तो हीरानन्द चलने की सोचने लगे। बौएलाल ने चाय पीने का आग्रह किया, लेकिन भरे पेट होने के कारण हीरानन्द ने इनकार करते हुए कहा- "चाय रहने दो। खाने के समय पानी नहीं पिया था, बस एक लोटा पानी पिला दो।"

आँगन से लोटे में पानी लाकर बौएलाल ने उन्हें दिया। लोटा भर पानी पीकर हीरानन्द बोले- "लगता है मानो अभी-अभी खाकर उठे हैं। चाय नहीं पीऊँगा, बस एक ज़ूम तम्बाकू खिला दो।"

अनूप तम्बाकू चुन रहा था। इसी बीच हीरानन्द ने बौएलाल से कहा- "तुम तो अब ढेर सारी किताबें पढ़ने लगे हो। अब तुम भी पड़ोस के बच्चों को, जब

समय मिले, पढ़ाया करो। इससे यह होगा कि कभी बेरोजगारी महसूस नहीं होगी और थोड़े-बहुत बच्चे भी पढ़ाई की ओर झुकेंगे।”

पढ़ाई का नाम सुनकर अनूप बोला- “मास्टर साहब, बौएलाल किसके बच्चों को पढ़ाएगा!"

आँगुली से दिखाते हुए अनूप आगे बोला- “देख रहे हैं, वे तीन घर कुरमी हैं। उनसे पुरखों की दुश्मनी है। न खान-पान है और न ही किसी त्योहार में आना-जाना।”

हीरानन्द अनूप की कही बात पर सोच ही रहे थे कि अनूप फिर अपनी उँगली से इशारा करते हुए कहने लगा,

“वैसे ही वह घर है, मल्लाह का। पूरा दिन जाल लेकर नालों-नालों और तालाब-झीलों में मछली पकड़ते हैं। मछली बेचकर गुज़ारा करते हैं और फिर ताड़ी-दारू पीकर आते हैं और झगड़ा-फसाद शुरू कर देते हैं।”

"उसी तरह वह है कुजरटोली। सब गरीब ही हैं, पर व्यापारी हैं। स्त्रियाँ सब्ज़ी बेचती हैं और पुरुष पुराना लोहा-कबाड़ का कारोबार करते हैं। जाति के नाम पर हमेशा झगड़ालू बने रहते हैं।”

“वैसे ही हम दस घर धानुक हैं। हम भी गरीब ही रहे, मजदूरी करते थे। अब तो अपने रामाकान्त बाबू के दिए दो बीघा खेत हो गए तो खेती करने लगे, वरना सब मज़दूरी करते। जवान-जहान बेटियाँ सिर पर टोकरी रखकर दूसरे गाँव भेजी जाती हैं। इसलिए उनका तो एक समूह है और हम अकेले हैं। न खान-पान का मेल है और न कोई लेन-देन। अब आप ही बताइए कि बौएलाल किसके बच्चों को पढ़ाए?"

अनूप की बात सुनकर हीरानन्द चुप रह गए। मन ही मन सोचने लगे कि समाज की स्थिति कितनी विचित्र है। ऐसे समाज में प्रवेश करना कितना कठिन है।

कुछ देर बाद हीरानन्द बोले- “कहा तो ठीक ही, अनूप। लेकिन यह सब बीमारियाँ पहले के समाज में अधिक थीं। हाँ, अभी भी कुछ तो हैं, पर अब बदल रही हैं। अब लोग गाँव छोड़कर शहर-बाज़ार जाकर कारखानों में काम करने लगे हैं। साथ ही गाँव में चाय-पान की दुकानें खोलकर जीवन बदल रहे हैं।”

"खेती-बारी तो मर ही गई है। इसमें न काम है और न ही लोग करना चाहते हैं। करेंगे भी कैसे, एक साल सूखा तो एक साल बाढ़ आकर सब कुछ नष्ट कर देती है। जैसे गरीब आदमी मर-मर कर जीता है, वैसे ही खेतिहर भी।"

"खेत वालों को देखता हूँ कि बेटी की शादी, बीमारी और पढ़ाई-लिखाई बिना खेत बेचे संभलती ही नहीं। वैसे भी, सबकी जड़ में मूर्खता है जिसे बिना पढ़े-लिखे मिटाया नहीं जा सकता।"

"बेटा-बेटी को पढ़ाने की इच्छा सबकी है, लेकिन वह केवल मन में है। व्यवहार में तो एक रत्ती नहीं। हाँ, यह भी सच है कि जिसके पेट में अन्न नहीं और तन पर वस्त्र नहीं, वह पढ़ेगा कैसे?"

हीरानन्द और अनूप की सारी बातें वाड़ी के टाट की कड़ची उठाकर सुमित्रा भी सुन रही थी। बारह-तेरह वर्ष की सुमित्रा, अनूप के घर के बगल में ही रहती थी।

तम्बाकू खाकर हीरानन्द विदा हुए। उन्हें छोड़ने के लिए बौएलाल भी पीछे-पीछे गया। थोड़ी दूर साथ चलने के बाद वह लौट आया।

जैसे ही बौएलाल घूमकर घर पहुँचा, सुमित्रा चूल्हे की कड़ची अपने आँगन में रखकर उसके पास आ गई। वैसे तो परिवार के झगड़े से बच्चों का कोई लेना-देना नहीं होता। बच्चों की दुनिया अलग होती है। सुमित्रा ने बौएलाल से कहा- "मुझे पढ़ा दो।"

कुछ कहने से पहले ही बौएलाल मन ही मन सोचने लगा कि उसके पिता और सुमित्रा के पिता में कितने दिनों से झगड़ा है। दोनों को कितनी बार गाली-गलौज करते देखा है, तो वह कैसे पढ़ाए? लेकिन हीरानन्द की कही बात याद आ रही थी, इसलिए वह विचार में पड़ गया।

थोड़ा सोचकर बौएलाल ने सुमित्रा से कहा- "पहले माँ से पूछ आओ।"

सुमित्रा दौड़कर आँगन में गई और अपनी माँ से कहा- "माँ, मैं पढ़ूँ?"

माँ ने पूछा- "कहाँ पढ़ोगी?"

"बौएलाल के पास।"

बौएलाल का नाम सुनकर माँ मन ही मन सोचने लगी कि मुझसे तो कम,

लेकिन बौएलाल के पिता से तो राम प्रसाद की लड़ाई है।

थोड़ी देर सोचकर माँ बोली- “अगर बौएलाल पढ़ा दे तो पढ़ लेना।”

खानदानी घर की बेटी थी सुमित्रा की माँ। इधर-उधर की बेटियाँ और बहुएँ सिर पर टोकरी उठाती थीं, लेकिन वह हमेशा इस काम से अलग रही। हाँ, पति राम प्रसाद मज़दूरी करते थे, पर पत्नी ने कभी घर के बाहर हाथ नहीं फैलाया।

जब भी अनूप और राम प्रसाद के बीच मज़दूरी को लेकर झगड़ा होता, सुमित्रा की माँ की सहानुभूति अनूप की ओर रहती। पर मर्दों के झगड़े में औरत विरोध कैसे करे? इसलिए चुपचाप आँगन में बैठकर मन ही मन अपने पति को कोसती कि किस कुल-खानदान में ब्याह कर आई।

लौटकर सुमित्रा आई और बौएलाल से बोली- “माँ ने भी कहा।”

"ठीक है। लेकिन पढ़ना कब होगा? दिन भर मैं भी काम-काज में लगा रहता हूँ और शाम को खुद पढ़ने जाता हूँ।”

दोनों ने सोचकर तय किया कि पढ़ाई सुबह-सुबह, काम शुरू होने से पहले होगी। ❑

7.

सुबह के तीन बजे हीरानन्द की नींद खुली। कोठरी से बाहर निकलकर उन्होंने गहरे अंधेरे में झाँका, फिर लौटकर बिस्तर पर लेट गए। जैसे सोने से पहले थे, वैसे ही जागते ही अनूप की कही बात उनके मन को मथने लगी। समाज में ऐसी कटुता और विषमता फैल चुकी है कि घर-घर, जातियों और मोहल्लों में भैंसा-भैंसी की तरह टकराव हो रहा है। ऐसी स्थिति में समाज कैसे आगे बढ़ेगा? समाज को आगे ले जाने के लिए आपसी आत्मीयता और प्रेम ज़रूरी है, पर वह होगा कैसे?

जितना समाधान सोचने की कोशिश करते, उतना ही उलझते जाते। सामने एक विचित्र स्थिति खड़ी हो गई थी। मन में प्रश्न उठते, तर्क-वितर्क होते, और अंततः सब कुछ धुँधला पड़ जाता। विवेक जैसे काम ही नहीं कर रहा था। तभी पूरब दिशा से चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई दी। आवाज़ सुनकर वे बाहर आए। पूरब की ओर देखा तो बादल लालिमा से आच्छादित थे। घड़ी देखी, पाँच बज रहे थे।

कोठरी से लोटा लेकर मैदान की ओर निकल पड़े। लेकिन मन के भीतर उठे सवालों ने उन्हें इस तरह जकड़ रखा था कि उन्हें अपने चलने का भी होश नहीं रहा। चलते-चलते वे काफी दूर निकल आए। खुले मैदान में पहुँचकर लोटा रख दिया, टहलते रहे और सवालों का हल खोजने की कोशिश करते रहे। पर कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं निकल पाया। फिर लौटकर घर आए, दातुन किया, मुँह-हाथ धोया और चाय बनाने लगे।

चाय का सारा सामान चूल्हे के ऊपर की चौकी पर रखा था। केवल केतली धोना, ग्लास माँजना और लकड़ी का जलावन लाना बाकी था। सब कुछ तैयार करने के बाद हीरानन्द चाय बनाने बैठे, लेकिन मन अब भी भटका हुआ था। चाय अकेले पीने वाले थे, फिर भी पूरी केतली पानी चढ़ा दी। जब पानी उबलने लगा,

तो ख्याल आया कि इतनी चाय व्यर्थ क्यों बना रहे हैं। उन्होंने केतली उतारी, दो ग्लास दूध मिला पानी बगल में रखे ग्लास में डाल दिया और बाकी को फिर से केतली में डालकर चूल्हे पर चढ़ा दिया।

मन अब भी भटका हुआ था। वे आँच देते रहे लेकिन चाय की पत्ती डालना भूल गए। जब पानी पूरी तरह सूख गया, तब ध्यान आया कि अरे, चाय की पत्ती तो डाली ही नहीं। घबराकर डिब्बे से चम्मच भर पत्ती निकाली और केतली का ढक्कन उठाया, पर अंदर तो पानी था ही नहीं। सब जलकर उड़ चुका था। पत्ती वापस डिब्बे में डाल दी, फिर पानी डाला और चाय बनाई। सुबह का समय था, इसलिए दो ग्लास चाय धीरे-धीरे पी गए।

हीरानन्द का मन पहले से ही समाज की समस्याओं में उलझा था। ऊपर से चाय की इस गड़बड़ी ने और बोझ डाल दिया। चाय पी लेने के बाद दरवाज़े पर बैठकर विचार करना चाहा। लेकिन चाय की गर्मी से मन और अधिक व्याकुल हो गया। जैसे कोई व्यक्ति कोई वस्तु खोकर उसे खोजने निकलता है, वैसे ही हीरानन्द उस समस्या का समाधान खोजने लगे जिसने समाज को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है। पर साथ में कोई न था जिससे तर्क-वितर्क कर पाते। अकेले ही सवाल उठाते और खुद ही जवाब ढूँढते।

पढ़ाई बहुत अधिक नहीं की थी, केवल मैट्रिक पास थे। फिर भी समस्या का हल तलाशना नहीं छोड़ा। जैसे कोई राहगीर बिना पूछे भी रास्ता भटकते-भटकते सही राह पा लेता है, वैसे ही हीरानन्द को भी एक दिशा मिल गई।

अचानक उनकी दृष्टि मिथिला की चिंतन-धारा और समाज की संरचना पर पड़ी। उस पर दृष्टि पड़ते ही उनके मन में नई ज्योति बिजली की चमक की तरह कौंध गई। वे ओसारे में आकर टहलने लगे। दो-चार बार इधर-उधर घूमते ही अनायास उनके मुँह से निकल पड़ा: “वाह रे मिथिला के चिंतक, दुनिया के गुरु! जो ज्ञान हजारों वर्ष पहले मिथिला की धरती पर आ गया था, वही ज्ञान उन्नीसवीं सदी में मार्क्स ने कठिन संघर्ष से खोजा, जिससे पूरी दुनिया की चिंतन-धारा बदल गई। लेकिन मिथिला का दुर्भाग्य रहा कि समाज के शासकों ने उसे बचाया नहीं। जिन्होंने मनुष्य को मनुष्य ही माना, उनकी उस दृष्टि को शासन करने वालों ने टुकड़े-टुकड़े कर काट डाला। आज आवश्यकता है उन टुकड़ों को

जोड़कर एक रूप बनाने की। यह छोटा काम नहीं है। और यह भी सच है कि आज भी टुकड़े करने वालों की कमी नहीं है। जबकि पहले से बने टुकड़ों में यह चेतना ही नहीं है कि वे अलग-थलग पड़े हैं और कौए-कुत्तों की तरह नोचे जा रहे हैं।”

विचार के पड़ाव पर पहुँचते ही हीरानन्द का मन स्थिर हो गया। स्थिर होते ही उनके भीतर नई स्फूर्ति, नई चेतना और नया उत्साह जाग उठा। वे सब वस्तुओं को नए दृष्टिकोण से देखने लगे। इसी बीच शशि शेखर भी टहलते हुए वहाँ आ पहुँचे।

हीरानन्द पर नज़र पड़ते ही शशि शेखर को लगा जैसे वे अभी-अभी पोखर से स्नान करके ऊपर आए हों। हीरानन्द का मन विचारों में डूबा हुआ था। वे सोच रहे थे कि पटुआ का सोन, सनै का रेशा या कपास का महीन रेशा, रेशा तो होता है, परंतु कारीगर उस रेशे को टेरुआ की सहायता से समेटकर धागा या सूतरी बनाता है और उससे कपड़ा, बोरी या मोटी रस्सी तैयार करता है। उसी प्रकार समाज के बिखरे हुए मनुष्यों को जोड़कर ही समाज बनाना होगा। तभी नए समाज का निर्माण संभव है। यह आसान नहीं है, बल्कि कठिन कार्य है। कठिन कार्य के लिए कठिन परिश्रम आवश्यक है। लेकिन केवल परिश्रम से हर काम सफल नहीं होता। इसलिए परिश्रम के साथ सही समझ और सही मार्ग का ज्ञान भी जरूरी है। कठिन मेहनत, गंभीर चिंतन और आगे बढ़ने का अदम्य साहस अनिवार्य है। इसके साथ दृढ़ संकल्प भी होना चाहिए।

विचार करते-करते हीरानन्द के मन में कठिन कार्य का संकल्प स्वतः ही स्थान बनाने लगा। सुबह का समय था, इसलिए लाल सूरज में ठंडक भी थी। सूरज को एकटक देखते हुए हीरानन्द ने अपने विचार और संकल्प को आपस में मिला दिया। दोनों का मेल होते ही मन का नया उत्साह शरीर में प्रवाहित होने लगा। दरवाज़े के सामने उत्तर-दक्षिण जाने वाला रास्ता था। हीरानन्द ने शशि शेखर से कहा- “चलो, थोड़ी देर घूम-फिर लेते हैं और कुछ बातचीत भी करनी है।”

दोनों दरवाज़े से उठकर आगे बढ़े ही थे कि उत्तर से दक्षिण की ओर जाते तीन बच्चों को देखा। तीनों के शरीर पूरे काले और दुबले थे। बाल बिखरे हुए।

पुराने डोर वाला फटा-पुराना काला पैंट पहने थे, शरीर पर और कोई वस्त्र नहीं था। केवल पैंट पहने हुए, हाथ में पुरानी साड़ी का टुकड़ा था, जिसके चारों कोनों को बाँधकर झोली बनाई गई थी। तीनों बच्चे आपस में बातें करते हुए हँसी-खुशी दक्षिण की दिशा में बढ़ रहे थे। उनकी बातें सुनकर हीरानन्द ने ध्यान से कान लगाया।

मुस्कराते हुए बेंगवा कह रहा था- “रात की बासी रोटी और डोका की चटनी इतनी खा ली कि अब चलना मुश्किल हो रहा है। पेट ढब-ढब कर रहा है।”

फिर दाहिना हाथ बढ़ाकर बोला- “अरे सुनो, मेरे हाथ से कैसी गंध आ रही है! लगता है जैसे उसमें मसाला मिला हो।”

हाथ समेटते हुए बेंगवा बोला- “तू क्या खाई रे, रोगही?”

सिर झुकाते हुए रोगही बोली- “मेरी माँ ने कहा कि जाकर डोका चुन लाओ। तभी मैं मड़ुआ पीसकर रोटी पकाऊँगी। डोका की चटनी और रोटी खाऊंगी।”

रोगही की बात सुनकर बेंगवा ने कबुतरी से पूछा- “और तूँ कबुतरी, क्या खाई?”

कबुतरी बोली- “मेरी माँ कल डोका बेचने गई थी, तो वहीं से मुरही का लाई खरीद लाई। वही खाई।”

कबुतरी की बात सुनकर बेंगवा ने कहा कि आज तुम्हारा भोजन सबसे अच्छा है। तुम्हारे पास सबसे अधिक डोका होगा, उसके बाद मेरे पास और सबसे कम रोगही के पास। बेंगवा की इस बात का विरोध करते हुए रोगही बोली- “तू बड़ा पंडित बनता है। तेरे कहने से मुझे कम होगा और तुम लोगों को ज़्यादा? मेरे जैसा तुम दोनों लोग डोका बिछने की समझ रखते हो? घौदियाएल डोका कहाँ रहता है, यह समझते हो?”

चेहरा सिकोड़ते हुए बेंगवा ने पूछा- “तो कहाँ होता है, यह तुम ही कहो।”

“क्यों बताऊँ? तुमने जो खाया, क्या हमें बाँटा?”

बेंगवा बोला- “बाँट कैसे देता? हम अगरजानी जानने वाला भगवान थोड़े ही हैं, जो तूँ बोला है अभी और हम बाँट देती आँगन में ही?”

बेंगवा की बात सुनकर रोगही चुप हो गई। हीरानन्द और शशि शेखर उनकी बातें ध्यान से सुन रहे थे। इतने में तीनों बच्चे उनके पास आ गए। हाथ के इशारे से हीरानन्द ने उन्हें रोककर पूछा- "बच्चों, तुम लोग कहाँ जा रहे हो?"

हीरानन्द का प्रश्न सुनते ही बेंगवा बोला- "डोका चुनने।"

"डोका चुनकर क्या करोगे?"

"हम सभी खुद खाएँगे भी और माँ बेचेंगी भी। पिता ने कहा है कि डोका बेचकर जो पैसे मिलेंगे, उससे सर्ट-पैंट खरीद देंगे। घुरना की शादी में पहनकर बरात में जाएँगे।"

बेंगवा की बात सुनकर हीरानन्द ने रोगही से पूछा- "और तुम, बच्चे?"

रोगही बोली- "मैं भी डोका चुनने जा रहा हूँ। डोका बेचकर जो पैसे मिलेंगे, उससे शिवरात्रि के मेले में माँ खुशबूदार तेल, सुगंधित साबुन, बाल बाँधने का फीता और क्लिप खरीद देगी।"

मुस्कराते हुए हीरानन्द बच्चों की बात का समर्थन करते सिर हिलाते रहे और मन ही मन सोचते रहे कि कितनी आशा से गरीबों के बच्चे जीते हैं। शशि शेखर की ओर आँखों के इशारे से हीरानन्द ने कहा- "शशि, इन बच्चों का उम्र देखो और उनकी आशा देखो।"

तीसरे बच्चे से उन्होंने पूछा- "बेटी, और तुम?"

हीरानन्द की आँखों में आँखें डालकर कबुतरी बोली- "मेरी माँ कहती है कि डोका बेचकर सलवार-सूट खरीद देगी।"

काम के समय में देर होता देखकर हीरानन्द ने तीनों से कहा- "तुमलोग अब जाओ।"

हीरानन्द और शशि शेखर लौटकर दरवाज़े पर आ गए। तीनों बच्चे बातें करते हुए आगे बढ़ गए। थोड़ी दूर बढ़ते ही कबुतरी ने बेंगवा से पूछा- "बेंगवा, तुम शादी कब करोगे?"

शादी का नाम सुनकर बेंगवा के मन में खुशी दौड़ गई। हँसते हुए बोला- "अभी शादी नहीं करूँगा। मामा के गाँव गया था तो भाई ने कहा कि थोड़ा और बड़ा हो जाऊँगा तो तुम्हें भिवंडी ले जाऊँगा। वहाँ नौकरी करोगे। जब बहुत पैसे

कमाऊंगा तब ईंट का घर बनाऊंगा और शादी भी करूंगा।”

बीच में रोगही बोली- “तेरे जैसे बुड़बक से क्या बीवी सँभलेगी?”

बीवी का नाम सुनते ही बेंगवा का हृदय खुशी से भर गया। हँसते हुए बोला- “अरे रोगही, तुम मुझे पुरुष नहीं मानती हो क्या? मैं तो ऐसा पुरुष हूँ कि एक नहीं, तीन-तीन बीवीयों को सँभाल लूँगा।”

कबुतरी ने पूछा- “खिलाओगे क्या बीवीयों को?”

बेंगवा बोला- “भिवंडी में नौकरी करूँगा तो समझते हो कितनी कमाई होगी? पूरे दो हज़ार रुपए एक महीने में।”

हँसते हुए रोगही ने बीच में टोका- “क्या तुमने कभी दो हज़ार रुपए गिने हैं?”

“क्यों नहीं? बीस-बीस करके गिनूँगा। जब पैसे होंगे तो फुलपैंट सिलवाऊँगा, अच्छे कपड़े खरीदूँगा, घड़ी, रेडियो, मोबाइल, फीते वाले जूते सब खरीदूँगा। तब देखना कैसा लगूँगा।”

रोगही ने पूछा- “तुम्हें नौकरी कौन देगा?”

“गाँव का भाई नौकरी दिला देगा। उसने कहा कि जिस मालिक के यहाँ मैं हूँ, उसी मालिक के यहाँ तुम्हें भी रखवा दूँगा। बड़ा धनी मालिक है। ढेरों नौकर हैं। जब मैं मामा गाँव गया था तो भाई भी आया था। वह कह रहा था कि वह मालिक के यहाँ रहता है। तनख्वाह छोड़कर उपरी कमाई भी बहुत है। मालिक की एक बेटी है। वह बड़े स्कूल और कॉलेज में पढ़ती है। अपनी गाड़ी खुद चलाती है। रोज मेरा भाई उसे स्कूल ले जाता है। वह पढ़ती है और मेरा भाई गाड़ी चलाता है। छुट्टी होते ही दोनों साथ लौटते हैं। वह मालकिन मेरे भाई को बहुत मानती है। साथ में सिनेमा देखने जाती है। बाज़ार घुमाती है। बड़ी-बड़ी दुकानों से खूब लड्डू खिलाती है। वैसे बड़े मालिक सभी नौकरों को दीपावली में नए कपड़े देते हैं, मेरे भाई को भी देते हैं। लेकिन छोटी मालकिन तो अलग से अच्छी-अच्छी पैंट, अच्छी-अच्छी कमीज़ खरीदकर देती है। रुपए भी देती है।”

तीनों बच्चे बाँध पहुँच गए। वहाँ पहुँचते ही तीनों अलग-अलग दिशाओं में बँट गए और डोका चुनने लगे। ढेर सारे डोके चारा करने के लिए बाहर निकले थे। डोका चुनकर तीनों बच्चे आगे निकल गए। दरवाज़े पर आकर हीरानन्द ने

शशि शेखर से पूछा- “शशि, इन बच्चों में तुमने क्या देखा?”

चेहरा सिकोड़े शशि बोले- “भाई, इन बच्चों को देखकर मैं क्षुब्ध था। मैं उनके शरीर की दशा देख रहा था और मन की खुशी भी देख रहा था। वे जैसे दुनिया-दारी से बेपरवाह थे, बिल्कुल निर्विकार। अपने आप में डूबे हुए।”

हीरानन्द बोले- “कहा तो ठीक, पर एक बात और समझनी चाहिए। हमारा समाज इतना बड़ा है कि उसमें भिखारी से लेकर राजा तक रहते हैं। एक ओर बड़े-बड़े मकान हैं, तो दूसरी ओर झोपड़ियाँ भी हैं। एक ओर आधुनिक, विकसित मनुष्य है, तो दूसरी ओर आदिम युग का मनुष्य भी है। इतना बड़ा इतिहास यह समाज अपने भीतर सँजोए हुए है, पर न तो उस इतिहास को कोई पढ़ता है और न ही समझता है।”

“ठीक कहा भाई।”

“आज तक हम समाज के जिस रूप को देखते आए हैं, वह केवल ऊपरी है। लेकिन देखने की ज़रूरत है उसके भीतरी ढाँचे को। जैसे समुद्र की लहरें और ऊपर का पानी सब देखते हैं, पर पानी के भीतर क्या है, यह कितनों ने देखा है?”

हर दिन सुबह बौएलाल खुद भी पढ़ता और सुमित्रा को भी पढ़ा देता। जब तक मोहल्ले के लोग नींद से उठते, तब तक बौएलाल और सुमित्रा एक–डेढ़ घंटा पढ़ चुके होते। सुमित्रा तेज दिमाग की थी और पढ़ने की गहरी जिज्ञासा भी उसमें थी, इसलिए उसने एक ही दिन में अ, आ से लेकर य, र, ल, व तक सीख लिया। अक्षर पहचानने के बाद सुमित्रा ने बाल-पुस्तक पढ़ना और लिखना शुरू कर दिया।

सुमित्रा को पढ़ते देखकर माँ-बाप बहुत खुश होते। वैसे भी माँ और बाप के मन में शुरू से ही इच्छा थी कि बच्चों को पढ़ाएँ, पर समय की मार और परिवार की विपन्नता के कारण वह सब मनोरथ मन ही मन गलकर समाप्त हो गए थे। लेकिन जिस दिन से सुमित्रा ने पढ़ना शुरू किया, उसी दिन से उसका मनोरथ अंकुरित होने लगा। मनुष्य के जीवन की गति, उसके विचार और व्यवहार को बदल देती है।

अनूप के प्रति जो कटुता और बुरे विचार राम प्रसाद के मन को जकड़े हुए थे, वे धीरे-धीरे पिघलने लगे। सुमित्रा की माँ अब अनूप के आँगन आने-जाने

लगी। सब्ज़ी-भुजिया का लेन-देन वह पति से छिपाकर भी करती थी। फिर भी राम प्रसाद के मन से पुरानी दुश्मनी पूरी तरह मिट नहीं पाई थी। जैसे बरसात में सूखी धारा में पानी आते ही जीवन की धारा बहने लगती है, वैसे ही शिक्षा के प्रवेश से राम प्रसाद के परिवार की रेखा बदलने लगी। भाई-भाई में भैंस-भैंसी जैसी दुश्मनी की जगह प्रेम का प्रवेश होने लगा।

तरकारी और चूना खरीदने के लिए अनूप हाट गया था। लगभग दो कोस की दूरी पर कछुआ हाट लगता था। इस बीच राम प्रसाद कई बार अनूप की दुआरी पर आकर उसकी खोज करता रहा। राम प्रसाद के मन ने अधूरे विचारों को धिक्कार कर अच्छे विचारों को जगह दे दी थी।

दूसरे दिन शाम को अनूप हाट से लौटकर रास्ते में आ रहा था कि तभी राम प्रसाद फिर दुआरी पर आया। अनूप को देखते ही राम प्रसाद हल्की हँसी हँसते हुए बोला- “बहुत दिन जियोगे भाई, दोपहर से ही कहाँ गायब थे?”

राम प्रसाद का बदला चेहरा और बदले विचार देखकर अनूप मन ही मन सोचने लगा कि आज सूरज किधर उग गया। जीवन भर की दुश्मनी अचानक इतनी बदल कैसे गई?

पिछली बात अनूप को याद आई। अब तक राम प्रसाद से उसकी दुश्मनी उसके खराब काम के कारण ही थी। लेकिन ताराकांत को धन्यवाद देना चाहिए कि बेचारे ने मार भी खाकर और जेल भी जाकर गाँव में खबासी प्रथा को मिटा दिया। जब तक राम प्रसाद अधला काम करता रहा, तब तक अगर दुश्मनी थी तो वह भी ठीक ही थी, क्योंकि मैं भी अपने धरातल पर खड़ा था। लेकिन अब अगर उसने वह काम छोड़ दिया है तो उसके साथ मेल-मिलाप करने में हर्ज ही क्या है। काल की गति प्रबल होती ही है। समय भी बदल रहा है। एक तो अब पहले की तरह लोग बोझ ढोने का काम नहीं करते, और दूसरे, पहले लोग कंधे पर बोझ उठाते थे, अब गाड़ी-सवारी से ले जाने लगे हैं। इतना ही नहीं, अब सब लोग परदेश में भी काम करने लगे हैं। गाँव के मालिकों का पुराना रुतबा धीरे-धीरे घटता जा रहा है।

राम प्रसाद की बात के जवाब में अनूप ने कहा- “हाट जाना ज़रूरी था। घर में न तो मिर्च थी और न चूना। जो चुनवाली चुन बेचने आती थी, उसकी सास

मर गई। इस साल एक भी दिन कटहल की गुठली डालकर दाल भी नहीं खाई थी, इसलिए मन हो रहा था।"

इतना कह अनूप सीधे आँगन में जाकर ओसारे पर गुठली और मिर्च की गठरी रखकर, कोही में चूना रख दिया।

इसी बीच राम प्रसाद अनूप की दुआरी में बैठकर तम्बाकू चुनने लगा। चूने की कोही ओसारे पर रखकर अनूप बाहर आया और राम प्रसाद से बोला- "तब तक तम्बाकू लगाइए, मैं ज़रा हाथ-पाँव धो लूँ। एक तो कच्ची सड़क है, ऊपर से इतने ट्रैक्टर चलते हैं कि पूरी सड़क घुटनों तक धूल से भर गई है। जैसे पैर थाल के पानी में धँसते हैं, वैसे ही धूल में धँस जाते हैं।"

बोलते-बोलते अनूप कुएँ पर पहुँच गया। हाथ-पाँव धोकर वह राम प्रसाद के पास आकर बैठ गया। अनूप को तम्बाकू देते हुए राम प्रसाद बोला- "भैया, दोपहर से मन में आया कि तुम्हारे बैल की जोड़ी दूसरे टोले में है और मेरी भी। दोनों मिलकर उन्हें छोड़ दें और आपस में जोड़ लें। इससे हम दोनों को सुविधा होगी।"

थूक फेंककर अनूप बोला- "यह बात तो कई दिन से बौएलाल कह रहा था कि जितना समय बैल लाने-ले जाने में लगता है, उतने समय में एक काम हो सकता है।"

सिर हिलाते हुए राम प्रसाद ने कहा- "कल जाकर तुम भी अपने बैलगाड़ी वाले से कह देना और मैं भी कह दूँगा। परसों से हम दोनों मिलकर खेत जोतेंगे।"

आँगन बुहारना छोड़कर रधिया आकर टाट के पास खड़ी हो गई, क्योंकि उसने बहुत दिनों बाद दोनों को आमने-सामने बातें करते देखा। बैलों की जोड़ी की बात कह अनूप ने राम प्रसाद से कहा- "देर हो गई। अब तुम भी जाओ, मैं भी शौच के लिए जा रहा हूँ।"

जैसे सड़े-गले पानी में कमल खिलकर भगवान के माथे पर चढ़ने योग्य हो जाता है, वैसे ही बौएलाल की सेवा सबके लिए उपयोगी होने लगी। जिससे पूरे गाँव में बौएलाल चर्चा का विषय बन गया। हीरानन्द का सहारा पाकर बौएलाल ने रामायण, महाभारत, कहानी, कविता पढ़ना भी सीख लिया। जिस गाँव में लोग दिनभर ताश और जुआ खेलते थे, उसी गाँव में बौएलाल की दिनचर्या

सबसे अलग होने लगी, जिससे उसका जीवन का रास्ता बदल गया। अक्सर हीरानन्द बौएलाल से कहते- “बौएलाल, गरीब का सबसे बड़ा दोस्त मेहनत है। जो कोई मेहनत को दोस्त बनाकर चलेगा, वही गरीबी रूपी दुष्ट को हरा सकेगा। इसलिए हमेशा समय को पकड़कर सही रास्ते पर मेहनत करने वाला ही इस धरती और दुनिया का सुख भोग सकता है।” ❑

8.

रात की गाड़ी से रामाकान्त और उनके दोनों साथी अपने स्टेशन पर उतरे। घोर अंधेरी रात थी। स्टेशन पर सन्नाटा पसरा था। केवल दो व्यक्ति, स्टेशन मास्टर और पैटमैन, स्टेशन के कमरे में दरवाज़ा बंद किए जाग रहे थे। कोठरी में एक लालटेन जल रही थी। प्लेटफॉर्म और मुसाफ़िरखाने दोनों में रोशनी नहीं थी।

अंधेरे में ही रामाकान्त और उनके दोनों साथी अपना सामान मुसाफ़िरखाने में रखकर जाजिम बिछाकर बैठ गए। गाड़ी की थकान और दो रातों की जागरण से उनके शरीर टूट रहे थे। प्लेटफॉर्म पर न कोई चाय की दुकान खुली थी, न कोई दुकानदार जाग रहा था, न ही कहीं दीपक जल रहा था। संयोग ऐसा रहा कि गाड़ी से उनके अलावा और कोई यात्री नहीं उतरा। मुसाफ़िरखाने में केवल वही तीन लोग थे।

रामाकान्त की नींद तोड़ने के लिए चाय पीने की इच्छा हुई, पर कोई उपाय नज़र नहीं आया। कभी वह सामान के पास बैठ जाते, कभी उठकर टहलने लगते। श्यामा और जुगेसर चादर ओढ़कर मुँह ढककर सो गए। लेकिन रामाकान्त को डर था कि यदि वे सो गए और कोई सामान चुरा ले गया, तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। वैसे भी प्लेटफॉर्म पर भिनभिनाते मच्छर नींद तोड़ने का पर्याप्त कारण थे।

प्लेटफॉर्म पर पंद्रह-बीस आवारा कुत्ते इधर-उधर घूम रहे थे। प्लेटफॉर्म के पिछवाड़े में जानवरों की हड्डियों का ढेर पड़ा था, जिससे दुर्गंध आ रही थी। सकरी का एक व्यापारी हड्डियों का कारोबार करता था। गाँव-घर में जो पशु मरते, उनकी हड्डियाँ छोटे व्यापारी ढोकर यहाँ लाते और बेचते। जब हड्डियाँ ज़्यादा जमा हो जातीं, तो उन्हें मालगाड़ी से बाहर भेज दिया जाता। जब तक वे प्लेटफॉर्म के पास रहतीं, आवारा कुत्ते वहीं मंडराते और उन्हें चबाते रहते। दिन हो या रात, स्टेशन के आसपास के सभी कुत्ते उसी जगह टिके रहते। यहाँ तक कि दूसरे गाँवों

के कुत्ते भी अपने गाँव छोड़कर यहाँ आ जाते।

इसी बीच, एक पिल्ला और एक पिल्ली प्लेटफॉर्म के पूरब से आए। तभी एक कुत्ते की उन पर नजर पड़ी। बिना भौंके ही वह कुत्ता उनकी ओर दौड़ पड़ा। पिल्ली आगे-आगे, और पिल्ला पीछे-पीछे पूँछ हिलाते हुए बढ़ रहे थे। उस कुत्ते ने पहले पिल्ली का मुँह सूँघा। सूँघते ही पिल्ली मुँह बिचकाकर उस पर झपट पड़ी। उसके झपटते ही पीछे वाला पिल्ला भी जोर से भौंक उठा। उसकी आवाज सुनकर प्लेटफॉर्म पर मौजूद सभी आवारा कुत्ते दौड़कर आ गए और पिल्ली को घेर लिया। सब एक-दूसरे पर भौंकने लगे। लेकिन पिल्ली डरी नहीं। वह मानो रानी हाथिनी की तरह शान से पश्चिम की ओर बढ़ी और टिकट घर के सामने आकर प्लेटफॉर्म पर बैठ गई। उसके बैठते ही सारे पिल्ले आपस में पटका-पटकी करने लगे।

प्लेटफॉर्म के पिछवाड़े, कदम के पेड़ के नीचे मघैया डोमों का डेरा था। उसी समय एक लड़का और एक लड़की उस डेरा से थोड़ा पश्चिम जाकर कर रहे थे।

कुत्तों की आवाज से एक आदमी की नींद खुल गई। आँखें खुलते ही उसने पिछवाड़े में दोनों को छेड़छाड़ करते देखा। उसने किसी को नहीं जगाया। अकेले ही उठकर वह उन दोनों के पास गया। दोनों ने उसे देख लिया। लड़का सकपका कर झाड़ी के पास जा बैठा। लेकिन लड़की चालाक थी। उसने तुरंत उस आदमी से कहा- “काका?”

‘काका’ सुनकर वह आदमी कुछ नहीं बोला, लेकिन लौटा भी नहीं। आगे की ओर सरकता रहा। लड़की भी उसी ओर खिसक गई। पास पहुँचते ही उसने उसका कंधा पकड़कर धीरे से कहा- “काका!”

कंधे पर हाथ पड़ते ही उस आदमी का मन बदल गया। जैसे शिकारी को अनपेक्षित शिकार मिल जाए, वैसी ही उसे खुशी हुई। उसने भी अपना हाथ लड़की के शरीर पर रख दिया। लेकिन उसके छूते ही लड़की जोर से चीख पड़ी। पास बैठा लड़का भी घबरा कर चिल्लाने लगा। शोर सुनकर सभी मघैया डोम जाग उठे और दौड़ पड़े।

शोर सुनकर स्टेशन मास्टर ने पैटमैन से कहा- “रघु! प्लेटफॉर्म पर बड़ा

हल्ला हो रहा है, जाकर देखो तो क्या बात है।”

पैटमैन ने जवाब दिया- “यह स्टेशन है। यहाँ हर तरह के लोग आते-जाते हैं। अगर मैं उधर चला जाऊँ और इधर कोई चोर घरों में घुस आए, तो सब सँभालना आपको ही पड़ेगा। दरवाज़ा तो बंद है। आप दोनों जागते रहिए, नहीं तो अगर सरकारी सामान चोरी हो गया, तो आप ही की नौकरी जाएगी। कोई सुरक्षा गार्ड तो है नहीं, जो दोष उसी पर डाल दें।”

पैटमैन की बात स्टेशन मास्टर को ठीक लगी। उन्होंने कहा- “ठीक ही कहा।”

दोनों फिर बातें करने लगे। लालटेन जलती रही। दरवाज़े की दरार से पैटमैन ने प्लेटफॉर्म की ओर झाँका तो देखा कि कुत्ते आपस में झगड़ रहे हैं। अँधेरा अधिक होने के कारण मघैया लोगों पर उसकी नज़र नहीं पड़ी।

एक ओर कुत्तों की झड़प और भौंकने की आवाज थी, तो दूसरी ओर मघैया लोगों की गाली-गलौज से प्लेटफॉर्म शोर-गुल से भर गया था। रामाकान्त सोच रहे थे कि चाहे जो भी हो रहा हो, इस शोरगुल में हमारा सामान तो सुरक्षित है। उन्होंने जुगेसर को जगाते हुए कहा- “जुगे, ज़रा आगे बढ़कर देखो तो, कैसा हल्ला मचा है।”

जुगेसर उठकर बोले- “काका, किस झंझट में पड़ रहे हैं! बस अड्डों और रेलवे स्टेशनों पर ऐसे झूठ-मूठ का हल्ला तो हमेशा होते रहता है। अपनी जान बचाइए, बेकार में मत जाइए।”

सुबह होते ही टमटम वाले आने लगे। थोड़ी दूरी पर उत्तर दिशा में ठाकुरबाड़ी से घंटे-घड़ियाल की आवाजें आने लगीं। यह सुनकर रामाकान्त ने गहरी साँस ली और जुगेसर से कहा- “नींद से मन बेकाबू हो रहा है। चाय की दुकान पर लोगों को बात करते सुन रहा हूँ। थोड़ी चाय पीकर आता हूँ, तब तक तुम सामान देखना।”

रामाकान्त उठकर कुएँ पर गए, कुल्ला किया और पानी पिया। फिर चाय की दुकान पर जाकर चाय पी कर, पान खाया और घूमते-फिरते लौटकर जुगेसर से बोले- “अब तुम भी जाओ। चाय पी लो, और दो टमटम भी साथ ले आना।”

जुगेसर उठकर पहले कुएँ पर गया, कुल्ला किया। फिर सोचा, अभी सुबह

का समय है, तीन-चार टमटम वाले आ चुके हैं। अगर मैं चाय पीने चला गया और टमटम वाले किसी और को पकड़ लें, तो मुसीबत हो जाएगी। बेहतर है, पहले टमटम वालों से बात कर लूँ।

एक टमटम वाले के पास जाकर जुगेसर बोले- “भाई, टमटम खाली है?”

“हाँ।”

“चलोगे?”

“हाँ, चलूँगा।”

पहले टमटम वाले की पत्नी बीमार थी। उसे दस बजे डॉक्टर के पास ले जाना था। पैसे न होने के कारण वह सुबह ही स्टेशन आ गया था, ताकि एक-दो सवारी मिल जाएँ और दिन का खर्च निकल आए। कम से कम पचास रुपये दवा के लिए चाहिए। फिर घर-परिवार का खर्च, घोड़े का चारा, और बैंक वाले को देने के लिए भी दस रुपये चाहिए।

टमटम वाला मन ही मन सोचने लगा, सुबह की पहली सवारी है, इसे हाथ से नहीं जाने दूँगा। बाकी टमटम वाले तो बस ऊपर-ऊपर बातें करते हैं। कहने को तो सबने मिलकर यूनियन बनाई है, लेकिन किसी में एकजुटता नहीं। बस बैठकर चर्चा कर लेते हैं, और जैसे ही जेब में दस रुपये आए नहीं कि ताड़ी पीने और मनमानी करने लगते हैं।

हाँ, एक बात तय हुई थी कि बड़ी बीमारी या आपात स्थिति में सब मिलकर मदद करेंगे और चंदा देंगे। लेकिन असल में किसने मदद की है? पंद्रह दिन से मेरी पत्नी बीमार है, इसी कारण इधर-उधर भटक रहा हूँ। न घोड़े को मुट्ठीभर चारा दे पा रहा हूँ, न खुद भरपेट खा पा रहा हूँ। बच्चे भी भूख से बिलबिला रहे हैं। शुक्र है उन बच्चों का, जो भूखे-प्यासे रहकर भी माँ की सेवा कर रहे हैं।

मैं भी घोड़े के साथ टमटम खींचता हूँ। अगर ऐसा न करूँ और सब कुछ घोड़े पर छोड़ दूँ, तो वह भी जल्दी मर जाएगा। यही तो मेरी लक्ष्मी है। इसी के सहारे दो पैसे कमा पाता हूँ। उसे कैसे छोड़ दूँ? पत्नी भी कमजोर है। पूरी ज़िंदगी उसी के साथ सुख-दुख बाँटा है। बच्चों को भी उसी ने पाला-पोसा है। मैं दिन-भर बाहर मेहनत करता हूँ, लेकिन घर तो उसी बेचारी के सहारे चलता है।

टमटमवाला सोच ही रहा था, तभी जुगेसर ने पूछा- “कितना किराया

लोगे?”

किराये का नाम सुनते ही टमटमवाला मन ही मन सोचने लगा, यह सुबह की पहली सवारी है और मुझे डॉक्टर के पास भी जाना है। अगर अभी किराया बता दूँ और ये उतना न दें, तो बहस होगी। और अगर किसी और का टमटम पकड़ लिया, तो मैं खाली हाथ रह जाऊँगा। इसलिए बेहतर यही है कि पहले सवारी और सामान चढ़ा लूँ। इतना सोचकर वह बोला,

“जो उचित किराया होगा, वही लूँगा। अगर मैं तुमसे एक हज़ार रुपये माँग लूँ, तो क्या तुम दोगे?”

टमटमवाले की बात सुनकर जुगेसर मुस्कराए और बोले- “अच्छा, ठीक है। पहले चाय पी लो।”

दोनों, टमटमवाले और जुगेसर चाय की दुकान पर गए और चाय पी। फिर पान खाया। चाय के पैसे जुगेसर ने दिए। उसके बाद तीनों रामाकान्त के पास लौटे और सामान उठाकर टमटम पर लाद दिया। एक टमटम पर श्यामा और जुगेसर बैठे, दूसरे पर रामाकान्त अकेले सामान के साथ।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर रामाकान्त ने टमटमवाले से पूछा- “घोड़ा इतना दुबला क्यों है? क्या तुम उसे ठीक से खाना नहीं देते?”

रामाकान्त की बात सुनकर टमटमवाला बेबस आँखों से उनकी ओर देखने लगा। वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन भीतर उमड़ते दुःख ने उसके मुँह से शब्द छीन लिए। रामाकान्त ने उसकी आँखों में झाँक कर उसे समझने की कोशिश की। तभी टमटमवाले की आँखों में आँसू भर आए। उसने कंधे पर रखी गमछी से आँसू पोंछे और बोला,

“सरकार, यही टमटम और यही घोड़ा मेरी ज़िंदगी है। इसी से मेरा परिवार चलता है। जब से मेरी पत्नी बीमार पड़ी है, जितनी भी कमाई होती है, सब दवा-दारू में लग जाती है। अब तो बच्चों और घोड़े को खिलाना भी मुश्किल हो गया है। क्या करें! किसी तरह जान बची है। जान रहेगी, तो जहान भी बन ही जाएगा।”

टमटमवाले की बेबसी और धैर्य देखकर रामाकान्त का दिल पिघलकर पानी-सा कोमल हो गया। बिना कुछ कहे वे मन ही मन सोचने लगे कि मजबूरी

के भी दो प्रकार होते हैं, एक वह, जो कुछ करने की स्थिति में ही नहीं होता; और दूसरा, जो दिन-रात मेहनत करता है, लेकिन प्रकृति और समाज की विपरीत परिस्थितियों ने उसे ऐसे संकट में डाल दिया है कि वह हतप्रभ रह जाता है। यह टमटमवाला दूसरे प्रकार का मजबूर है। ऐसे लोगों की मदद करना धर्म की श्रेणी में आता है। इनकी अवश्य सहायता की जानी चाहिए।

लेकिन मेहनतकश आदमी का मन इतना कठोर होता है कि वह किसी से मदद लेना नहीं चाहता। अगर मैं सहायता की पेशकश करूँ और वह मना कर दे, तो मन में खटक रहेगी।

रामाकान्त असमंजस में पड़ गए। किस रूप में सहायता की जाए? सोचते-सोचते उन्होंने तय किया कि सीधे कुछ देने के बजाय पहले यह पूछें कि मौजूदा संकट से उबरने के लिए उसे कितनी मदद चाहिए।

रामाकान्त ने पूछा- "अभी तुम्हें कितनी मदद मिल जाए तो काम चल जाएगा?"

उनकी बात सुनकर टमटमवाले के मन में संतोष की एक छोटी-सी किरण जागी। मन ही मन हिसाब लगाते हुए उसने कहा- "सरकार, अगर अभी पाँच दिन के परिवार और घोड़े का खर्च मिल जाए, और सौ रुपये मिलें तो मैं अपनी ज़िंदगी को फिर से पटरी पर ला सकता हूँ। जैसे ही ज़िंदगी रफ्तार पकड़ेगी, सब कुछ संभल जाएगा। पत्नी का इलाज, परिवार और टमटम, तीनों ऐसे हैं जिन्हें छोड़ा नहीं जा सकता।"

उसकी बातों में मदद की आशा रामाकान्त ने साफ महसूस की। उसे आशान्वित देखकर उनके भीतर भी खुशी हुई। तभी उन्होंने सोचा, अगर पाँच दिन के बजाय दस दिन का खर्च और सौ की जगह दो सौ रुपये दे दूँ, तो वह इनकार नहीं करेगा। और जब उसे संकट से निकलने की थोड़ी-सी भी उम्मीद दिखेगी, तो काम करने का साहस भी लौट आएगा।

लेकिन यहाँ तो दो टमटमवाले हैं। क्या दोनों की मदद करूँ या केवल इसी की? यह सवाल रामाकान्त के मन में उठा। वे सोचने लगे कि मुसीबत तो इसी बेचारे पर है। दूसरे टमटमवाले से तो कोई बातचीत ही नहीं हुई कि उसकी स्थिति समझ पाते, लेकिन इस टमटमवाले की परिस्थिति तो जान ली है, इसलिए इसकी

मदद करेंगे।

दूसरे टमटमवाले से किराया पूछ लेंगे। जितना वह बताएगा, उतना दे देंगे। मगर उसके सामने कम या ज़्यादा देना ठीक नहीं होगा। इसलिए पहले उसे किराया देकर विदा करेंगे और बाद में इस टमटमवाले को। गरीब का दिल जोड़ना बड़ा पुण्य का काम है। यह सोचते हुए रामाकान्त घर पहुँचे।

हीरानन्द घर में ताला लगाकर शौच के लिए गए थे। दोनों टमटम आँगन के दरवाज़े पर आकर रुके। सभी लोग टमटम से उतर गए। टमटमवालों और जुगेसर ने मिलकर सारा सामान उतारकर दरवाज़े की चौखट पर रख दिया। तभी हीरानन्द भी बगीचे की तरफ से लौटते हुए पोखरे के पूर्वी किनारे पर पहुँचे। दरवाज़े पर टमटम खड़ा देखकर उन्होंने समझ लिया कि रामाकान्त बाबू आ चुके हैं।

हीरानन्द हाँफते हुए, दाँत माँजते और कुल्ला करते हुए दरवाज़े पर पहुँचे और ताला खोल दिया। हाथों-हाथ तीनों ने सामान कमरे में रख दिया। दूसरे टमटमवाले को रामाकान्त ने किराया देकर विदा किया और पहले टमटमवाले को इशारे से रुकने को कहा। दूसरे के चले जाने के बाद, रामाकान्त ने पहले टमटमवाले को दो सौ रुपये नकद, दस दिन का राशन, दो पसेरी और तीन पसेरी चावल देकर विदा किया।

टमटम पर बैठते ही वह गदगद मन से गीत गुनगुनाने लगा,"हे बाबा, आप तो सबकी सुधी लेते हैं, फिर हमें क्यों भूल गए?"

पसीने से भीगा, गंध करता कुर्ता और बनियान उतारकर रामाकान्त ने चौकी पर रख दिया। शरीर थका हुआ था, लेकिन घर पहुँचने की खुशी मन में उमड़ रही थी। हीरानन्द कुछ पूछते, उससे पहले ही रामाकान्त बोले- "गाँव-घर का हाल-चाल अच्छा है न?"

हीरानन्द ने 'हाँ' में सिर हिलाते हुए पूछा- "यात्रा अच्छी रही न?"

"अरे, इस यात्रा के बारे में क्या कहूँ! अभी तो नींद से मन भारी है, और तीन दिन से नहाया भी नहीं हूँ। पहले नहा लेने दीजिए, फिर विस्तार से सब बताऊँगा।"

जुगेसर को जो विदाई उपहार मद्रास में मिला था, वह चार कार्टन में था।

वे चारों कार्टन जुगेसर ने खोलकर चौखट पर रख दिए। उसकी पत्नी और बच्चे भी आ गए। चारों कार्टन दिखाते हुए जुगेसर ने अपनी पत्नी से कहा- "ये हमारे हैं, आँगन में ले चलो।"

'हमारे' शब्द सुनते ही पत्नी और बच्चे खिल उठे। वे चारों कार्टन उठाकर आँगन में ले गए।

रामाकान्त के आने की खबर गाँव में आंधी की तरह फैल गई। बच्चे, बूढ़े, युवा, सभी उन्हें देखने आने लगे। दरवाज़े पर भीड़ बढ़ती गई। रामाकान्त ने नहाना छोड़कर जुगेसर से कहा- "जुगे, उपहार वाले कार्टन यहीं ले आओ।"

डॉ. महेंद्र ने उपहार में दो कार्टन नारियल दिए थे। जुगेसर ने कोठरी से एक कार्टन निकालकर ला दिया। जिस दिन से रामाकान्त ब्रह्मचारीजी के आश्रम गए थे, उसी दिन से उनका दृष्टिकोण बदल गया था। अब वे अपने सुख-दुख को उतना महत्व नहीं देते थे, जितना दूसरों के सुख-दुख को।

दरवाज़े पर लोग शोर मचाने लगे। ऐसा लगने लगा जैसे लोगों का हृदय रामाकान्त के हृदय में और रामाकान्त का हृदय लोगों में समा गया हो। एक आत्मीय वातावरण बन गया। रामाकान्त ने नहाना, दाँत माँजना और आँखों की नींद सब भुला दिया और जुगेसर से कहा- "बड़ों को दो-दो टुकड़े और बच्चों को एक-एक टुकड़ा बाँट दो। दरवाज़े पर आया कोई यह न कहे कि उसको कुछ नहीं मिला।"

कार्टन खोलकर जुगेसर नारियल बाँटने लगा। हाथ में पड़ते ही चाहे बड़े हों या बच्चे, सब खाने लगे। एक कार्टन खत्म हो गया, फिर भी भीड़ कम नहीं हुई। दूसरा कार्टन भी खोला गया। वह भी समाप्त होते-होते भीड़ छँट गई।

भीड़ कम होता देख रामाकान्त ने गहरी साँस छोड़ते हुए जुगेसर से कहा- "अब तुम भी जाओ, नहा-धोकर खा-पी लो। मैं भी नहाने जा रहा हूँ।"

आँगन में जाकर जुगेसर ने अपने चारों कार्टन खोले। मद्रास में उसने भीतर का सामान नहीं देखा था, इसलिए देखने की उत्सुकता थी। एक-एक कार्टन डॉ. महेंद्र, डॉ. रवींद्र, डॉ. जमुना और डॉ. सुजाता ने दिया था।

डॉ. महेंद्र के दिए पहले कार्टन में एक जोड़ी धोती, एक कुरते का कपड़ा, एक गंजी का कपड़ा, एक चादर, एक गमछा और एक जोड़ी जूते जुगेसर के

लिए थे। एक जोड़ी साड़ी, साया-ब्लाउज का कपड़ा और एक जोड़ी चप्पल उसकी पत्नी के लिए थी। बच्चों के लिए पैंट-शर्ट और तीन सौ रुपये भी रखे गए थे। इसी तरह बाकी तीनों कार्टन में भी सभी के लिए सामान था।

चारों कार्टन का सामान देखकर जुगेसर के परिवार में मानो खुशी की आँधी आ गई। दोनों बच्चे अपने कपड़े देखकर इतने प्रसन्न हुए कि एक-एक कपड़ा पहनकर आँगन में नाचने लगे। ऐसा सुख उन्हें जीवन में पहली बार मिला था। पति-पत्नी दोनों का मन भी खुशी से भर आया। जुगेसर हिसाब लगाने लगा कि अगर इन्हें सँभालकर पहनें, तो ये जीवन भर के लिए पर्याप्त होंगे। इतना अच्छा कपड़ा आज तक नसीब नहीं हुआ था।

जुगेसर की एक आँख सामान पर थी और दूसरी पत्नी की आँखों पर। दोनों की आँखों में जैसे जीवन का वसंत उतर आया था। उन्हें अपना विवाह याद आ गया। जुगेसर को मन हुआ कि पत्नी को दोनों बाँहों में भरकर सीने से लगा लें, और पत्नी को लगा कि वह पति की गोद में बैठकर उनसे एक हो जाए। लेकिन तीन दिन की गाड़ी की थकान से जुगेसर का शरीर पस्त था, और नींद उनकी पलकों को दबा रही थी।

उन्होंने पत्नी से कहा- "एक-एक जोड़ी कपड़े और जूते पहनने के लिए बाहर रख दो, और बाकी सब अच्छी तरह सँभालकर रख लो।"

जुगेसर ने नई धोती और बनियान पहनकर, कंधे पर गमछा रखकर रामाकान्त के पास पहुँचा। दरवाज़े पर रामाकान्त सो रहे थे। आँगन में जाकर उन्होंने श्यामा को देखना चाहा कि काकी भी सोई हुई हैं या नहीं, पर वे तो उठ चुकी थीं और मुँह-हाथ धो रही थीं। जुगेसर को देखते ही श्यामा ने टकटकी लगाकर मुस्कुराते हुए पूछा- "आज तो तुम बारात के दूल्हे जैसे लग रहे हो, जुगेसर?"

हँसते हुए जुगेसर बोले- "काकी, यह सब महेंद्र भाई का दिया हुआ है।"

महेंद्र का नाम सुनकर श्यामा बोलीं- "भगवान महेन्द्र को भोग दे! और बच्चों के लिए क्या-क्या दिया है?"

जुगेसर ने उत्तर दिया- "अरे काकी, आपसे क्या छिपाना! इतने कपड़े-लत्ते और जूते-चप्पल दिए हैं कि जीवन भर धाँग कर पहनेंगे, तब भी खत्म नहीं

होंगे।”

बेटे और बहू की बड़ाई सुनकर श्यामा का हृदय उमड़ आया। प्रसन्न होकर बोलीं- “पैसे भी दिए हैं या सिर्फ कपड़े-लत्ते?”

“पैसे गिने तो नहीं, पर समझ आया कि दस-पंद्रह नोट होंगे।”

“वाह! मालिक ने देखा या नहीं?”

“वह तो सो रहे हैं। उन्हीं को दिखाने के लिए तो पहनकर आया हूँ।”

“तो मैं चाय बना रही हूँ। दरवाज़े पर जाकर उन्हें उठा दो।”

“बहुत बढ़िया।”

‘बहुत बढ़िया’ कहकर जुगेसर दरवाज़े पर पहुँचे और रामाकान्त को जगाने लगे। आँख खुलते ही रामाकान्त ने दीवार की घड़ी पर नज़र डाली। चार बजे थे। उन्होंने लेटे-लेटे ही नींद का हिसाब लगाया और बुदबुदाए- “ऐसी नींद तो जवानी में भी नहीं आई थी!”

बिस्तर से उठकर रामाकान्त ने जुगेसर से कहा- “जरा चाय बनवा लाओ। अभी भी लगता है कि नींद आँखों पर झूल रही है। तब तक मैं कुल्ला कर लेता हूँ।”

वे पहले पेशाब के लिए गए। करते समय उन्हें महसूस हुआ कि पेशाब चाय की तरह गर्म हो रहा है। इतना ही नहीं, जितनी बार सामान्यतः चार बार में पेशाब होता है, उससे भी अधिक बार हो रहा है।

इसके बाद वे चापाकल पर आए, आँख-कान धोए, कुल्ला किया और जमकर पानी पिया। पानी पीते ही उन्हें लगा कि आधी नींद उतर गई है।

तब तक जुगेसर चाय ले आए। रामाकान्त चाय पीने लगे। उसी समय हीरानन्द भी स्कूल से लौट आए और शशि शेखर भी पहुँचे। हीरानन्द ने जुगेसर से पूछा- “यात्रा अच्छी रही न?”

हँसते हुए जुगेसर बोले- “जाने के समय गाड़ी में बहुत भीड़ थी। जब तक गाड़ी में रहे, न तो ठीक से बैठ पाए और न सो पाए। कारण यह कि रिजर्व सीट नहीं मिली थी। जिस डिब्बे में बैठे थे, उसमें पहले से ही लोगों की भीड़ थी। हर स्टेशन पर एक-दो लोग उतरते और दस-बीस चढ़ जाते। पर भगवान की दया से

किसी तरह पहुँच ही गए।”

“जब मद्रास स्टेशन पर उतरे तो अलग ही तरह के लोग देखे। हमारी तरफ जैसे सभी जाति-धर्म के लोग मिले-जुले रहते हैं, वैसा वहाँ नहीं है। ज़्यादातर लोग काले रंग के थे, गिने-चुने ही उजले दिखे।”

“जब डेरापर पहुँचे तो मकान देखकर यक़ीन ही नहीं हुआ कि यह इनका है। बहुत बड़ा मकान था, कमरों की कोई कमी नहीं।”

हीरानन्द ने पूछा- “मन भरकर देखा न?”

जुगेसर मुस्कराते हुए बोले- “अरे मास्टर साहब, क्या कहूँ! महेंद्र भाई तो हमें रोज़ कार से घुमाने ले जाते थे। कार भी ऐसी कि जहाँ बैठो, वहीं आराम लगने लगे। नींद आने लगे। कहाँ-क्या देखा, अब तो वह भी ठीक से याद नहीं।”

रामाकान्त के मद्रास से आने की खबर सुनकर महेंद्र के स्कूल के पुराने साथी सुबुध भी वहाँ पहुँचे। वे हाई स्कूल में शिक्षक हैं। महेंद्र और सुबुध ने साथ-साथ हाई स्कूल तक पढ़ाई की थी। महेंद्र विज्ञान के विद्यार्थी थे और सुबुध कला के। बीए पास करने के बाद सुबुध शिक्षक बन गए और महेंद्र ने डॉक्टरी की पढ़ाई कर डॉक्टर की डिग्री हासिल की।

महेंद्र का हालचाल पूछने के बाद सुबुध ने रामाकान्त से पूछा- “अपने यहाँ के लोग और मद्रास के लोगों में क्या अंतर देखा?”

रामाकान्त ने दोनों जगह के लोगों की तुलना करते हुए कहा- “वहाँ के और हमारे यहाँ के लोगों में आकाश-पाताल का अंतर है। वहाँ के लोग हमारे यहाँ के लोगों से अधिक मेहनती और ईमानदार हैं।”

बीच में शशि शेखर ने पूछा- “कैसे मेहनती?”

रामाकान्त बोले- “मनुष्य की तुलना करने से पहले, अपने इलाके और मद्रास की मिट्टी और पानी की तुलना सुन लो। हमारी मिट्टी कितनी सुंदर, मुलायम और उपजाऊ है, यह तो देखते ही बनता है। पानी भी कितना अच्छा है। ऐसी मिट्टी और पानी मद्रास में नहीं है। वहाँ हमारी तुलना में ज़्यादा गर्मी पड़ती है।”

“जहाँ तक लोगों का सवाल है, हमारे यहाँ के लोग अधिक आलसी हैं।

वे समय को कोई महत्व नहीं देते, या कहो कि उसका मूल्य समझते ही नहीं। अगर कोई समझता भी है, तो वह परजीवी बनकर जीवन बिताना चाहता है।"

"हाँ, कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं जो मर्यादित और पूजनीय जीवन जी रहे हैं, लेकिन सामाजिक व्यवस्था उन्हें भी बार-बार झकझोरती रहती है। वहाँ के लोग समय के साथ चलते हैं। इसलिए, ज़मीन और संसाधनों की कमी होते हुए भी वे अपना जीवन अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से जी लेते हैं। वहाँ के लोग भीख को अधम मानते हैं भीख कभी नहीं माँगते, जबकि हमारे यहाँ के लोग उसे भी आय का साधन बना लेते हैं।"

बीच में सुबुध ने पूछा- "पढ़ाई-लिखाई कैसी है?"

रामाकान्त ने जवाब दिया- "स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय सब देखा। वहाँ लड़के-लड़कियों के स्कूल शुरू से ही अलग-अलग हैं, फिर भी उन्हें साथ-साथ पढ़ते हुए देखा। वहाँ अधिक लड़कियाँ पढ़ती हैं। हमारे यहाँ तो लड़के ही पिछड़े हुए हैं, लड़कियों का तो कहना ही क्या। ट्रेन, गाड़ी, बस, हर जगह अलग-अलग व्यवस्था है। जबकि हमारे यहाँ सब एक साथ चलते हैं।"

सुबुध ने फिर पूछा- "खाने-पीने की कैसी व्यवस्था है?"

रामाकान्त बोले- "गरीबों का खान-पान सीमित है, लेकिन एक दृष्टि से देखा जाए तो हमारा खान-पान बेहतर है। अगर कपड़ों की बात की जाए, तो इसमें हमारे यहाँ की स्थिति कहीं ज़्यादा अच्छी है।"

इसी बीच रामाकान्त ने आँख के इशारे से जुगेसर को ब्रांडी की बोतल लाने को कहा। जुगेसर भीतर गया और एक बोतल ले आया। दरवाज़े पर आकर उसने चाय के ग्लास धोकर सबमें ब्रांडी भर दिए। सामने पड़ते ही रामाकान्त ने गटगटाकर पी लिया, लेकिन हीरानन्द, शशि शेखर और सुबुध झिझक रहे थे। उन्होंने कभी पी ही नहीं थी।

दूसरा ग्लास पीते हुए रामाकान्त ने सभी से कहा- "पी लो, यह तो फल का रस है। कोई नुकसान नहीं करेगा।"

फिर भी सभी एक-दूसरे का मुँह देखते रहे। रामाकान्त ने दोबारा कहा। मन ही मन सुबुध ने सोचा, कोई ज़हर-वहर तो है नहीं कि मर जाएँगे। अगर मरना ही होता तो पहले काका ही मरते। यह सोचकर उन्होंने सामने रखा ग्लास उठाया

और धीरे से दो घूँट पिया। ग्लास रखकर हीरानन्द से बोले- “पी लीजिए मास्टर साहब। स्वाद तो बिल्कुल खराब नहीं लग रहा।”

सुबुध की बात सुनकर हीरानन्द और शशि शेखर ने भी ग्लास उठाया और पी लिया। तब तक रामाकान्त तीसरा ग्लास भी पी चुके थे। तीसरा ग्लास पीते ही उनकी आँखें लाल होने लगीं, मन हल्का होने लगा, और बोलने का वेग बढ़ने लगा।

जैसे आग पर रखे पानी में उबाल आने लगता है और नीचे का पानी ऊपर उठने लगता है, वैसे ही रामाकान्त को लगने लगा। धीरे-धीरे नशा चढ़ता गया और उन पर पूरी तरह हावी हो गया। हीरानन्द, सुबुध और शशि शेखर की आँखें भी चमकने लगीं। तेज़ नज़र से सुबुध ने पूछा- “काका, महेंद्र भाई मौज-मस्ती में रहते हैं न?”

रामाकान्त, जिनकी वाणी पहले ही तेज़ हो रही थी, महेंद्र की मस्ती का जिक्र सुनकर और भी उन्मत्त हो उठे। बोले- “उनकी मेहनत और कमाई देखकर मैं दंग रह गया। उनका बड़ा मकान है, चार गाड़ियाँ हैं, बाज़ार में काफी जमीन है। ऊपर से बैंक में ढेर सारा रुपया जमा है। यहाँ की संपत्ति की उन्हें कोई ज़रूरत नहीं! और क्यों होगी? जिसकी अपनी कमाई ही इतनी अपार हो...।”

बीच में सुबुध ने टोका- “तो फिर यहाँ की ज़मीन-खेत गरीबों को दे दीजिए।”

बिना कुछ सोचे-समझे रामाकान्त बोल उठे- “बहुत सुंदर बात कही तुमने। बेकार ही मैंने इतनी ज़मीन संभाल रखी है। यही ज़मीन अगर गरीबों के हाथ में जाएगी तो ज़्यादा उपज होगी और सबकी ज़िंदगी सुधर जाएगी।”

जिस तरह धधकती आग में हवा और तेज़ी लाती है, उसी तरह ब्रांडी का नशा, परिवार में चार-चार डॉक्टरों की कमाई, और अपार संपत्ति की कल्पना ने रामाकान्त को उत्साहित कर दिया। समाज का स्नेह भी उन्हें और ऊँचा उठा रहा था। इसके साथ-साथ अद्वैत दर्शन ने उनके हृदय को और भी विशाल बना दिया।

हँसते हुए रामाकान्त बोले- “अब तक मैं गुल्लर का कीड़ा बना हुआ था, पर अब दुनिया देख ली है। दो सौ बीघा ज़मीन है। क्यों मैं इतनी ज़मीन लिए बैठा हूँ? एक जमींदार की ज़मीन से सैकड़ों गरीब परिवार हँसी-खुशी जीवन बिता

सकते हैं। जबकि इतनी संपत्ति का सुख केवल एक ही परिवार उठाए, यह कितना बड़ा अन्याय है! सब मनुष्य, मनुष्य हैं। सबको सुख-दुख का अनुभव होता है। अगर किसी को अनाज के अभाव में कष्ट हो और किसी का अनाज सड़ जाए, तो यह घोर अन्याय है।"

इसके बाद रामाकान्त ने जुगेसर से कहा- "जुगे, इलायची डालकर पान बना दो।"

जुगेसर पान लगाने चला गया। उसी बीच बौएलाल भी वहाँ आ पहुँचा। उसने रामाकान्त के पैर छुए और बगल में बैठ गया। बौएलाल के बैठते ही रामाकान्त ने हीरानन्द से कहा- "मास्टर साहब, महेंद्र ने कहा था कि एक लड़का और एक लड़की, दो लोगों को मद्रास भेज दीजिए। उन्हें अपने साथ रखकर छोटे-छोटे रोगों का इलाज करना सिखा देंगे। गाँव में इलाज की बड़ी कठिनाई है। गरीबी के कारण लोग बीमारियों से मर जाते हैं, पर डॉक्टर के अभाव में इलाज नहीं करा पाते।"

"इसलिए एक छोटा-सा अस्पताल भी बना देंगे, जहाँ लोगों का मुफ्त इलाज होगा। जितना भी खर्च दवाइयों पर आएगा, वह मैं दूँगा। हम चार लोग हैं। समय-समय पर हम चारों में से कोई एक साल में एक महीना गाँव में रहकर लोगों का इलाज करेगा।"

"इस बीच छोटे-छोटे रोगों के इलाज के लिए दो लोगों को तैयार कर दिया जाएगा। अगर किसी को बीच में कोई बड़ी बीमारी होगी, तो उसका खर्च भी हम उठाएँगे। इसलिए दो लोगों को मद्रास भेज दीजिए। उनके रहने, खाने, पढ़ने का सारा खर्च मैं भर दूँगा।"

रामाकान्त की बात सुनकर सबने मिलकर विचार किया और यह तय किया कि बौएलाल और सुमित्रा को मद्रास भेजा जाए। हीरानन्द ने बौएलाल से कहा- "बौएलाल, सबकी राय तो तुम सुन ही चुके हो। कल तुम और सुमित्रा दोनों मद्रास जाने के लिए विदा हो जाओ।" ❑

9.

कशमकश में डूबे हीरानन्द सारी रात जागते रहे। कभी मन में आता कि रामाकान्त द्वारा दान दी गई ज़मीन को समाज में कैसे बाँटा जाए। अगले ही पल उनका ध्यान रामाकान्त के त्यागभाव और उदारता पर चला जाता। फिर संदेह भी उठता कि कहीं यह बात नशे में तो नहीं कही गई थी? सुबह होते-होते अगर वह अपने वचन से मुकर गए तो? आखिर अमीरों के लिए बात से पलट जाना कोई नई बात नहीं है।

लेकिन मैं तो शिक्षक हूँ। और शिक्षक के प्रति समाज में आदर और आस्था सदा रही है और रहेगी भी। ऐसे में अगर हम दोनों शिक्षक, मैं और सुबुध, पीछे हट जाएँ, तो समाज में किस मुँह से रह पाएँगे?

यही द्वंद्व हीरानन्द को घेरे रहा। फिर उन्होंने खुद पर भी संदेह किया कि कहीं मैं भी शराब के नशे में बहक तो नहीं गया? यह विचार आते ही वे बिस्तर छोड़ बाहर निकल आए और चारों ओर देखने लगे। चारों ओर घुप्प अँधेरा था, सन्नाटा पसरा हुआ था, रात साँय-साँय कर रही थी, हाथ तक नहीं सूझता था। लेकिन आकाश एकदम साफ था। तारे श्रृंगार फूल जैसे चमक रहे थे। रात काली, हवा बह नहीं रही थी, लेकिन रात ठंडी हो चली थी।

बाहर से लौटकर हीरानन्द फिर बिस्तर पर लेट गए, लेकिन नींद अब भी दूर थी। ज़मीन का विचार उनके मन से हटने का नाम नहीं ले रहा था।

थोड़ी देर बाद पेशाब के लिए उठे। पेशाब करने के बाद मन हल्का हो गया। जैसे ही हल्कापन आया, वे लौटकर बिस्तर पर लेटे और इस बार उन्हें नींद आ ही गई।

सुबुध ने भी पूरी रात आँखों-आँखों में काट दी। पर वे हीरानन्द की तरह उलझे नहीं थे। समाजशास्त्र के शिक्षक होने के नाते उनकी सोच स्पष्ट थी और समाज की दिशा को लेकर उनके भीतर ठोस समझ मौजूद थी। उनके मन में दृढ़

संकल्प और साफ दृष्टिकोण था।

हाँ, बीच-बीच में यह विचार जरूर आता कि जैसे आर्थिक रूप से टूटा हुआ समाज सहारा पाकर मजबूत होता है, वैसे ही उस ताकत को सही दिशा देने के लिए एक स्पष्ट रास्ता भी चाहिए। यह काम रामाकान्त काका के बस की बात नहीं है।

रामाकान्त काका ने तो अपने ईमानदार और उदार स्वभाव के कारण अपनी संपत्ति का त्याग कर दिया। लेकिन सवाल यह है कि वह संपत्ति आगे कैसे बढ़ेगी? जिस तरह कोई परिवार समय के साथ दुगुनी, तिगुनी या चौगुनी गति से आगे बढ़ता है, उसी तरह संपत्ति में भी वृद्धि होनी चाहिए। और यह तभी संभव है जब उसमें श्रम का इंजन जोड़ा जाए।

हाँ, श्रम करने वाले मजदूरों की कमी नहीं है। लेकिन समस्या यह है कि उनके श्रम को किस दिशा में लगाया जाए। इसका उपाय यही है कि उन्हें नए प्रकार के कार्यों के ढाँचे में ढाला जाए और नए कार्य सौंपे जाएँ। पर यह इतना सरल नहीं है, क्योंकि इसके लिए नए औजार और तकनीक की भी आवश्यकता है, जो बिना नए ज्ञान के हासिल नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि जो औजार और तकनीक पहले से मौजूद हैं, उनका ही सही ढंग से उपयोग किया जाए, उन्हें और पैना बनाया जाए। यह रास्ता न केवल संभव है बल्कि उपयुक्त भी है। लेकिन इसके लिए एक कुशल मार्गदर्शक चाहिए, जिसका अभाव है।

मैं भी तो नौकरी करता हूँ। हफ्ते में केवल रविवार को गाँव में होता हूँ, बाकी छह दिन गाँव से बाहर रहना पड़ता है। ऐसे में काम कैसे आगे बढ़ेगा? समाज बड़ा है, और समस्याएँ भी अनेक हैं। हर समस्या का समाधान एक अलग रास्ता माँगता है।

बुद्धदेव ने कहा था कि अगर दुश्मन को सुई की नोक जितनी भी जगह मिल जाए, तो वह उसी रास्ते से हाथी जैसे विशाल जीव को घुसाने की कोशिश करता है। समाज की समस्याएँ भी कुछ वैसी ही हैं।

अनासक्ति के भाव में डूबे सुबुध के मन में यह विचार उपजा कि जैसे रामाकान्त काका अपनी पूरी संपत्ति समाज को सौंपने को तैयार हैं, वैसे ही मुझे

भी अपनी नौकरी छोड़कर अपने ज्ञान को समाज के लिए समर्पित कर देना चाहिए। सबकुछ जानने के बावजूद मैं एक सड़ा-गला रास्ता केवल अपनी सुविधा के लिए अपनाए हुआ हूँ।

मेरे पास सात बीघा ज़मीन है, एक तालाब है, दस कट्ठा की गाछी-कलम और खड़होर भी है। इन्हीं साधनों से मेरे पिता ने अच्छा-खासा जीवन बिताया और मुझे पढ़ाया भी। पर मैं तो केवल नौकरी करता रहा। खेत-खलिहान वैसे ही पड़े हुए हैं। आखिर मैंने अब तक क्या आगे बढ़ाया?

हाँ, इतना ज़रूर हुआ है कि मैंने अपनी पत्नी और बच्चों को अमीरों के मंदिर की मूर्तियों की तरह अच्छे-अच्छे प्रसाद और सजावट देकर इतना आरामतलब बना दिया है कि वे काम से दूर हो गए हैं।

क्या मैं नहीं देखता कि छाती की हड्डियाँ उभरी हुई, कंकाल-सा दिखता मनुष्य दिनभर रिक्शा खींचता है? साठ वर्ष की वृद्धा चिमनी में चिउड़ा भूनती है? मृत्यु के निकट पहुँचा बूढ़ा आदमी बैल के साथ हल जोतता है और अनाज का बोझ ढोता है? क्या उनके शरीर लोहे के बने हैं और हमारा शरीर रुई का? यह सब तो धन और बुद्धि का बुना हुआ मायाजाल है। अब तक समाज और उसके नियम बनाने वाले इसी मायाजाल से पोषित होते आए हैं।

लेकिन अब इसका सुधार ज़रूरी है। अगर यह नहीं हुआ, तो मनुष्य और जानवर में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। जिस समाज में मनुष्य जानवर की तरह जीवन जीने को मजबूर हो, उस समाज के शिक्षित और संवेदनशील लोगों को शर्म से डूब मरना चाहिए।

इतना सोचते ही सुबुध ने मन ही मन निश्चय किया कि सबसे पहले कल ही स्कूल जाकर त्यागपत्र दे देंगे। अब तक जैसी जिंदगी जी, सो जी ली। लेकिन अब नई जिंदगी की शुरुआत करनी होगी। इसी संकल्प और विकल्प के बीच उनका मन लगातार उलझा रहा।

सुबह होते ही सुबुध बिस्तर से उठकर मैदान की ओर चल दिए। हाथ में लोटा था, पर मन विचारों में ही डूबा हुआ था। थोड़ी दूर चलने पर गाँव से कोलाहल सुनाई देने लगा। रास्ते में रुककर उन्होंने देखा कि आखिर यह शोर किस बात का है। लेकिन आसपास कोई नहीं दिखा जिससे पूछ सकें। उन्होंने

अंदाज़ लगाया कि शायद रात में कोई दुर्घटना हुई हो, किसी को साँप ने काट लिया हो या कहीं चोरी हो गई हो। लेकिन ऐसा कुछ नहीं था।

दरअसल, शाम को रामाकान्त ने जो विचार सार्वजनिक रूप से रखे थे, वह पूरी रात में जंगल की आग की तरह गाँवभर में फैल गए थे।

सुबुध वापस लौटे। रास्ते में एक कड़ची तोड़कर उससे दाँत साफ करते हुए घर पहुँचे। वहाँ देखा कि आँगन में सुकना बैठा है। लेकिन उसकी नजर सुबुध पर नहीं थी, वह दरवाज़े की ओर एकटक देख रहा था।

सुबुध ने पूछा- “सुबह-सुबह किस काम से आए हो, सुकना?”

सुबुध की आवाज़ सुनकर सुकना चौकी से चौंककर उठा और दोनों हाथ जोड़कर बोला- “मालिक, आप तो जानते ही हैं कि हम लोग हर काम मिलजुलकर करते हैं। गरीबों का ध्यान रखिएगा।”

सुबुध को उसकी बात समझ में नहीं आई। उन्होंने फिर पूछा- “सुकन भाई, तुम्हारी बात मैं समझा नहीं। कहना क्या चाहते हो?”

सुकना ने जवाब दिया- “लोग कह रहे हैं कि रामाकान्त काका अपनी सारी ज़मीन गरीबों-गुरबों को दे रहे हैं, जिसे आप ही बाँटेंगे।”

सुकना की बात सुनकर सुबुध मन ही मन सोचने लगे। यह तो ज़मीन-जायदाद का सवाल है, ऐसे में हड़बड़ी में कुछ भी कहना ठीक नहीं। अगर आम लोगों के बीच बिना सोच-विचार के कोई बात कह दी, तो हल्ला मच जाएगा और मामला बिगड़ सकता है। इसलिए ज़रूरी है कि ठंडे दिमाग से सोच-विचार कर फैसला किया जाए। लेकिन अभी अगर मैं सुकना से यह सब कहूँ, तो उसे बुरा लगेगा। इसलिए उसे कुछ आशा देने वाली बात कहनी चाहिए।

सुबुध बोले- “सुकन भाई, जब गरीबों में ज़मीन का बँटवारा होगा, तो तुम भी गरीब हो, तुम्हें क्यों नहीं मिलेगा? अब तुम जाओ।”

सुकना विदा हो गया। अगले दिन की ओर बढ़ते हुए, सुबुध के मन में असमंजस की एक अजीब स्थिति बन गई। एक ओर गरीबों की उम्मीदें हैं, और दूसरी ओर ज़रा सी भी गलती हुई, तो सारी ज़िंदगी बदनामी का बोझ उठाना पड़ेगा। इसलिए ईमानदारी ज़रूरी है। लेकिन जैसे ही वह ईमानदारी की ओर देखते हैं, उन्हें अपने भीतर ही बेईमानी की छाया दिखने लगती है। परिवार में भी

यही अनुभव होता है, और समाज में तो यह बात और गहराई से देखी जा सकती है।

गरीबों के बीच भी फर्क है। जो मेहनती है, उसने कुछ न कुछ बना लिया है, जैसे पक्का या कच्चा घर, चापाकल, बँटाई की खेती, और खूँटे से बँधे हुए पशु। वहीं, जो आलसी है, उसके पास कुछ नहीं है। इतना ही नहीं, अगर मैं ईमानदारी से ज़मीन बाँटने की सोचूँ, तब भी उलझनें बनी रहेंगी। आखिर फैसला मैं अकेले नहीं कर सकता। और सभी लोगों का रुख बराबर हो, यह भी जरूरी नहीं। अगर कोई किसी परिचित को फायदा पहुँचाने के लिए चुपचाप ज़मीन बाँटने लगे और मैं उसे रोकूँ, तो क्या वह मेरी बात मानेगा? शायद नहीं। और अगर रामाकान्त काका खुद किसी को ज़्यादा देना चाहें, तो क्या मैं उन्हें रोक सकता हूँ? ज़मीन तो उनकी ही है।

इन तमाम विचारों के जंगल में सुबुध उलझते चले गए। दातून कभी तेज़ चलती, कभी थम जाती। एक तो पूरी रात की नींद नहीं, उस पर उलझनों की अमरलता जैसे मन पर लिपटी हुई थीं। थोड़ा भी दबाव पड़ा, तो सब बिखर सकता है। उनका मन इस अजीब स्थिरता में झूलता रहा। उन्हें लग रहा था कि अगर समाज की मूल बीमारी को जड़ से नहीं पकड़ा गया, तो सब कुछ गड़बड़ा जाएगा।

इसी बीच मुनमा दूध लेकर लोटा आँगन में रख गई और पास आकर हाथ जोड़कर बोली- “भैया, गरीब पर दया कर दीजिए।”

एक तो सुबुध का मन पहले से ही उलझा हुआ था, ऊपर से लोगों की सिफारिशों ने उसे और जटिल बना दिया। मन मसोसकर उन्होंने कहा- “अभी जाओ। जब ज़मीन का बँटवारा होगा, तब तुम्हें भी बुला लेंगे।”

दाँत साफ कर, मुँह-हाथ धोकर सुबुध आँगन में पहुँचे और पत्नी से पूछा- “लोटे में मुनमा क्या लाई थी?”

पत्नी ने कहा- “दूध।”

“क्या पैसे दिए?”

“नहीं।”

“क्यों?”

“मुझे लगा कि आपने ही भेजा है।”

पत्नी का यह जवाब सुनकर सुबुध का मन जैसे आग से भर गया। झुँझलाते हुए बोले- “चलो, जल्दी चाय बनाओ। स्कूल जाना है।”

पत्नी हैरान होकर बोली- “अभी क्यों? और दिन तो खाना खाकर स्कूल जाते थे। आज सुबह-सुबह ही क्यों निकल रहे हो?”

सुबुध ने कहा- “रात का खाया अनाज भी गले में अटका हुआ है। अभी कुछ नहीं खाऊँगा।”

यह कहकर उन्होंने लुंगी बदलकर धोती पहनी ही थी कि पत्नी चाय लेकर आ गई। कुर्ता पहनकर चाय पी, फिर वे स्कूल के लिए निकल गए। ❑

10.

रामाकान्त को जीवन में कभी वैसी नींद नहीं आई थी जैसी आज रात आई। सुबह का समय अनुमान लगाकर जुगेसर खिड़की के पास आया और देखा कि रामाकान्त काका गहरी नींद में खर्राटे ले रहे हैं।

उन्हें इतनी देर तक सोते देखकर जुगेसर ने ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया। आवाज़ सुनकर रामाकान्त आँखें मसलते हुए उठे। जुगेसर उन्हें जगाकर चाय लाने के लिए आँगन की ओर चला गया। रामाकान्त भी उठकर कुएँ पर गए और कुल्ला किया। तभी जुगेसर चाय लेकर दरवाज़े पर लौट आया।

चाय पीते हुए रामाकान्त के मन में विचार आया कि आचार्य चाणक्य ने सही कहा था- "धन किसके लिए रखा जाए।" यह भी तो पिता जी की अर्जित संपत्ति है। जब तक वे जीवित रहे, मैंने कभी इस संपत्ति की परवाह नहीं की। लेकिन उनके निधन के बाद सबकुछ मेरा हो गया।

अब तो दोनों बेटे इतनी अच्छी कमाई कर रहे हैं कि इस धन की उन्हें कोई ज़रूरत नहीं। और मैं खुद कितने दिन और जीऊँगा? तब तो यह सब धन यों ही पड़ा रहेगा, एक दिन कुत्ते-कौए लूट-लूटकर खाएँगे। इससे अच्छा है कि इसे समाज के गरीब-गुरबों को दे दूँ।

जैसे तिब्बत के आठवीं-नौवीं शताब्दी के राजकुमार चेन्पो ने अपनी पूरी संपत्ति प्रजाजनों में बाँट दी थी, वैसे ही मैं भी बाँट दूँ। इससे समाज में भाईचारे का भाव मजबूत होगा।

अगर आज व्यास बाबा जीवित होते, तो वे निस्संदेह बिना कुछ कहे आकर आशीर्वाद देते। अगर स्वर्ग जाने का रास्ता त्याग से होकर जाता है, तो मैं क्यों न उस रास्ते पर चलूँ? मुझे सुबुध और हीरानन्द मास्टर साहब का आभार मानना चाहिए, जिन्होंने मेरी अज्ञानता का दरवाज़ा खोल दिया।

जब बेटे-बहुएँ यह सब सुनेंगे, तो मन ही मन प्रसन्न ही होंगे। मेरे इस धर्म-

कार्य का श्रेय क्या उन्हें नहीं मिलेगा?

चाय पीने और पान खाने के बाद रामाकान्त ने लोटा उठाया और बग़ीचे की ओर निकल पड़े। कृष्णभोग आम के पेड़ के नीचे लोटा रखकर टहलते हुए पेड़ों को निहारने लगे।

आज पेड़ों का जो रूप रामाकान्त की आँखों के सामने उभरा, वैसा उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। उन्हें लगा जैसे हर पत्ता मुस्करा रहा हो, धरती की शक्ति से भरकर ऐश्वर्यवान बन गया हो और अब दूसरों की सेवा के लिए तैयार खड़ा हो।

पेड़ों के इस अद्भुत रूप को एकटक निहारते हुए रामाकान्त का हृदय गदगद हो उठा। लोटा उठाकर वे शौचालय की ओर बढ़े ही थे कि दूर से आती जय-जयकार की आवाज़ कानों में पड़ी। आवाज़ अभी अस्पष्ट थी, लेकिन धीरे-धीरे वह पास आती जा रही थी। शौच से उठकर वे सतर्क होकर सुनने लगे। अब उसमें उनका अपना नाम भी सुनाई पड़ने लगा। यह सुनते ही वे और अधिक चौकन्ने हो गए। कान के पास हथेली रखकर ध्यान से सुनने की कोशिश करने लगे।

जैसे-जैसे लोगों की टोली पास आती गई, आवाज़ और स्पष्ट होती गई। लोटा हाथ में लिए वे जल्दी-जल्दी पोखर के घाट की ओर बढ़े, कुल्ला किया और फिर घर की ओर लौट पड़े। अपने नाम के साथ जय-जयकार सुनकर उनके मन में कौतूहल भर गया। सोचने लगे कि यह सब किसलिए हो रहा है, लोग किस बात पर इतने प्रसन्न हैं।

रामाकान्त का हृदय धड़कने लगा, भीतर एक अजीब-सी गुदगुदी उठी। उनके चेहरे पर एक अनोखा उत्साह था और उनकी छाती जैसे भरती जा रही थी।

जैसे ही लोगों का जुलूस उनके घर के पास पहुँचा, वे पहले ही दरवाज़े पर खड़े होकर देखने लगे। हीरानन्द और शशि शेखर भी दलान के सामने खड़े यह दृश्य देख-सुन रहे थे। बूढ़े हों या जवान, बच्चे हों या स्त्रियाँ, सभी के चेहरों पर हँसी थी। सभी प्रसन्न थे, सभी उत्साहित। चारों ओर नाचते-गाते लोग दिखाई दे रहे थे।

जुलूस दरवाज़े पर आकर रुका। सबसे आगे पाँच व्यक्ति घोड़ा नाच कर रहे थे। वे घोड़े की भंगिमा में दौड़ते, कभी हिनहिनाते, कभी पिछली टाँगें उठाकर नचाते। उनके पीछे ढफरा और बांसुरी की संगत वसंत जैसी बहार फैला रही थी। उसी धुन पर कई लोग नाचते और जय-जयकार करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

रामाकान्त भी अपने भीतर उमड़ते उत्साह को रोक नहीं पाया। वे दलान के ओसारे से उतरकर सीधे जुलूस में जा पहुँचे और नाचने लगे।

वहाँ न कोई छोटा था, न बड़ा। न कोई केवल दर्शक था, न केवल अभिनेता। बूढ़े, जवान, स्त्रियाँ, बच्चे, सभी बाढ़ के पानी की तरह उमड़ पड़े थे। हर घर से स्त्रियाँ बाहर निकल आईं और चारों ओर भर गईं।

आँगन से श्यामा भी निकलकर दरवाज़े पर आ खड़ी हुई और यह दृश्य देखने लगी। उसकी नजरें रामाकान्त पर टिक गईं। उन्हें नाचते देख वह मन ही मन सोचने लगी, लोग किसी खुशी में नाच रहे हैं, यह तो समझ में आता है, लेकिन इन्हें ऐसा क्या मिल गया है कि इस उम्र में इस तरह कूद-फाँद कर रहे हैं?

श्यामा की समझ सीमित थी, इसलिए वह यह कैसे जान पाती कि जब नदी समुद्र में मिलती है तो उसका पानी समुद्र के जल से मिलकर इसी तरह उन्मुक्त होकर नाचता है। एक ओर होती है नदी की गतिशील धारा और दूसरी ओर समुद्र का स्थिर जल, जिसमें लहरें उठती हैं। यह मिलन स्वाभाविक होता है।

अब तक का जुलूस और नृत्य गाँव के उत्तर टोले से आया था, लेकिन अब दक्षिण टोले से भी एक नया जुलूस मोर-मोरनी के नृत्य के साथ आ पहुँचा। दोनों नृत्यों के संग पूरे गाँव ने उमंग से भरकर झूम-झूमकर नृत्य किया।

पास खड़े हीरानन्द ने शशि शेखर से पूछा- "यह आनंद जो इस समय है, क्या यह समाज में हर दिन बना रह सकता है?"

इस प्रश्न का उत्तर शशि शेखर को तुरंत नहीं सूझा। लेकिन सवाल ने उनके मन में हलचल ज़रूर पैदा कर दी। प्रश्न गंभीर था, इसलिए उन्होंने जल्दीबाज़ी में कुछ न कहना ही ठीक समझा और मौन साध लिया। फिर भी उनके भीतर यह विचार जरूर उठा कि यदि मनुष्य सच्चे कर्म के मार्ग पर प्रेरणा

के साथ चलता रहे, तो निश्चय ही यह आनंद जीवन का स्थायी हिस्सा बन सकता है।

इसी बीच जुलूस में रामाकान्त नाचते-नाचते पसीने से तर-बतर हो गए थे, लेकिन उनका मन अब भी थमा नहीं था। वह नृत्य में पूरी तरह रमे हुए थे। तभी एक युवक, जो पहलवान था, नाचते-नाचते आगे आया और रामाकान्त को दोनों हाथों से उठाकर कंधे पर बैठा लिया और नाचने लगा।

रामाकान्त को कंधे पर नाचते देख लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई। सब तालियाँ बजाने लगे और जय-जयकार करने लगे।

भीड़ के एक किनारे खड़े हीरानन्द को चिंता हुई कि कहीं रामाकान्त बाबू गिर न जाएँ। उन्होंने फुर्ती से आगे बढ़कर भीड़ के बीच घुसते हुए उन्हें सहारा दिया और नीचे उतार लाए।

जैसे ही उन्हें नीचे उतारा गया, रामाकान्त फिर ताली बजाते हुए नाचने लगे। तभी हीरानन्द ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर सबको शांत होने का संकेत दिया। उनके इशारे पर लोग धीरे-धीरे शांत हो गए।

रामाकान्त ने अपनी धोती के छोर से पसीना पोंछते हुए कहा- “मैं आप सबके सामने कह रहा हूँ कि खेत-खलिहान, जो अब तक मेरे थे, अब से ये सब आपके हो गए।”

यह बात सुनकर सबके मुँह से खुशी की हँसी फूट पड़ी, जैसे धान के लावा की तरह भावनाएँ छलक पड़ी हों। वह समाज, जिसकी आर्थिक दरिद्रता ने अब तक उसकी काया को मुरझा दिया था, उसी में आज नई खुशी के फूल खिल उठे।

लोग हँसी-मजाक करते हुए, प्रसन्न मन से अपने-अपने घरों की ओर लौट गए।

घर से निकलते ही सुबुध सीधे अपने डेरे पर गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्यागपत्र लिखा। मेस का पूरा हिसाब निबटाकर वे स्कूल पहुँचे और प्रधानाध्यापक को त्यागपत्र सौंपते हुए बोले- “श्रीमान, आज से मैं सेवा में सहयोग नहीं कर सकूँगा।”

इतना कहकर सुबुध जाने को मुड़े। उन्हें ऑफिस से निकलता देख

प्रधानाध्यापक कुर्सी से उठकर बोले- "सुबुध बाबू, ज़रा सुनिए।"

हेडमास्टर के आग्रह पर सुबुध रुक गए और मुस्कराते हुए बोले- "क्या कहा, मास्टर साहब?"

प्रधानाध्यापक की छाती की धड़कन तेज हो गई थी, और उसी गति से उनकी बोली भी। उन्होंने कहा- "सुबुध बाबू, आपने यह निर्णय बहुत जल्दबाज़ी में ले लिया है। मैं अब भी कहूँगा, अपना आवेदन वापस ले लीजिए।"

सुबुध ने निश्चल और गंभीर स्वर में उत्तर दिया- "श्रीमान, आज तक आपके साथ रहा हूँ, पर अब मैं वैरागियों के संग जा रहा हूँ। अब यहाँ एक क्षण भी रुकने की इच्छा नहीं है। मुझे तनिक भी दुख नहीं है। अब तक व्यक्तिगत जीवन जीता रहा, लेकिन अब सामाजिक जीवन जीने जा रहा हूँ। आपसे विनम्र आग्रह है कि कृपया आशीर्वाद दीजिए।"

एक ओर सुबुध का चेहरा नई ज्योति से दमक रहा था, तो दूसरी ओर हेडमास्टर का चेहरा मलिन होता जा रहा था।

सुबुध के त्यागपत्र की खबर स्कूल में फैल गई। शिक्षकगण अपनी-अपनी कोठरियों से निकलकर प्रधानाध्यापक के कक्ष में आ गए। सुबुध ने सभी से दोनों हाथ जोड़कर कहा- "भाइयों, अब तक का जीवन आप सबके साथ बीता। यदि मुझसे कोई भूल हुई हो, तो कृपया उसे भुला दीजिए। अब तक मैं केवल किताबों के ज्ञान में उलझा रहा, लेकिन अब उस ज्ञान को व्यवहार की धरती पर लाने जा रहा हूँ।"

जैसे सूर्योदय से पहले कमल सफेद होता है और सूर्य की रोशनी पाकर धीरे-धीरे लालिमा पाता है, वैसे ही समाज की चेतना की रोशनी पाकर सुबुध का हृदय भी बदल गया।

वे तेज़ कदमों से स्कूल के ओसारे से नीचे उतरे और आगे बढ़ गए।

सुबुध की तेज़ चाल देखकर विवेक बाबू भी लम्बे-लम्बे डग भरते हुए उनके पास आ पहुँचे और बोले- "सुबुध भाई, आपने जो किया है, वह आपके विचारों के अनुरूप ही है। इसलिए उस पर मुझे कुछ कहना नहीं है। जिस दिन आपने स्कूल में नौकरी शुरू की थी, उस समय जितना आप समझते थे, आज उससे कहीं अधिक समझते हैं। उस दिन आपने अपने तत्कालीन विचार के

अनुसार निर्णय लिया था, और आज वर्तमान विचार के अनुसार निर्णय ले रहे हैं। पर मेरा संबंध आपसे केवल एक शिक्षक का नहीं है, बल्कि एक मित्र का भी है।”

सुबुध और विवेक हाई स्कूल से ही मित्र थे। हाई स्कूल से लेकर कॉलेज तक दोनों साथ-साथ पढ़े। हालाँकि उम्र में सुबुध विवेक से तीन दिन बड़े थे, लेकिन यह बात न तो सुबुध को मालूम थी और न ही विवेक को। स्कूल और कॉलेज, दोनों जगह सुबुध की शैक्षणिक उपलब्धियाँ विवेक से बेहतर रही थीं। परीक्षाओं में अधिक अंक सुबुध को ही मिलते थे। दोनों एक ही श्रेणी में पास करते थे, पर अंकों का अंतर बना रहता था। विवेक, सुबुध को अपना सीनियर मानते थे।

इसका प्रमाण उस दिन मिला जब दोनों की नियुक्ति एक ही स्कूल में हुई। यद्यपि नियुक्ति के कागज़ों में विवेक का नाम पहले था, फिर भी उन्होंने स्वयं हेडमास्टर से कहकर सुबुध को तीसरे क्रम पर और अपने को चौथे क्रम पर दर्ज कराया। बाद में जब सुबुध की नियुक्ति का पत्र बदला गया, तब भी हेडमास्टर ने वही क्रम रजिस्टर में दर्ज रखा। सुबुध के मन में विवेक के प्रति हमेशा स्नेह बना रहा।

सुबुध के साथ विवेक उनके डेरे पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही विवेक की पत्नी ने चाय बनाकर दोनों के सामने रख दी और खुद चुपचाप बैठकखाने से निकलकर खिड़की के पास जा खड़ी हुईं। जीवन के एक संबंध के टूटने का आभास पाकर विवेक बाबू का मन काँप उठा। काँपती आवाज़ में उन्होंने पूछा- “एक दिन पहले तक तो आपने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया था। फिर इतनी जल्दी यह निर्णय कैसे ले लिया?”

सुबुध मुस्कराते हुए बोले- “यह पहले से तय नहीं था। इस बार जब गाँव गया, तो मन में यह विचार उठा। जैसे देवताओं और असुरों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था, वैसे ही समाज में भी आज मंथन की परिस्थिति बन गई है। मुझे लगा कि अब समाज को मेरी आवश्यकता है। पढ़ा-लिखा आदमी मैं भी हूँ, इसलिए अपना दायित्व निभाने के लिए नौकरी छोड़ दी है।”

विवेक बाबू चुप रहे। उनकी चुप्पी देखकर सुबुध फिर बोले- “महान जीवन

पाने के लिए सेवा आवश्यक है। अगर नौकरी को ही सेवा कहा जाए तो फिर खेतों में मेहनत करने वाले बोनिहार को क्या कहा जाएगा? वह भी तो बोइन के बदले मजदूरी करता है, जैसे नौकरी करने वाला। पेट के लिए कमाना ज़रूरी है। अगर न कमाएँ तो खुद क्या खाएँगे और दूसरों को क्या खिलाएँगे?

भूखे को भोजन चाहिए ही, चाहे वह भूख अनाज की हो या ज्ञान की। इसलिए नौकरी हो या कोई भी आजीविका, उसे ईमानदारी से निभाया जाना चाहिए, पर उससे आगे जो कुछ किया जाए, वही असल सेवा है। फिर चाहे वह ज्ञान का क्षेत्र हो या भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा और चिकित्सा जैसी ज़रूरतों की पूर्ति।

ज्ञान की सेवा तभी सार्थक है जब वह जीवन से जुड़कर कर्म बन जाए। केवल विचारों के धरातल से बदलाव नहीं आता। मिथिला में बड़े-बड़े विचारक हुए जिन्होंने मनुष्य के उद्धार के लिए रास्ते बताए, लेकिन आज भी समाज में वही समस्याएँ हैं जो हजारों वर्ष पहले थीं। हाँ, थोड़ी-बहुत प्रगति हुई है, यह भी सच है। लेकिन जो लोग बौद्धिक या आर्थिक रूप से आगे बढ़े, उन्होंने पीछे रह गए लोगों को बाँह पकड़कर ऊपर उठाया या उन्हें और पीछे ही धकेल दिया? यह सवाल अब भी हमारे सामने खड़ा है।

अगर सबको साथ लेकर चलना ही उद्देश्य था, तो इतनी जातियाँ, संप्रदाय, और कर्मकाण्ड पैदा करने की ज़रूरत क्यों थी? राजसत्ता और समाजसत्ता, दोनों ने मिलकर पिछड़ों को और पीछे ही धकेला है। ख़ैर, अब जाने दीजिए। मैं अब यहाँ एक क्षण भी नहीं रुकूँगा। मेरी राह में रामाकान्त काका प्रतीक्षा कर रहे होंगे।”

विवेक बाबू ने सुबुध को दोनों बाँहों से पकड़कर बैठाया और अपनी पत्नी से कहा- “थाली जल्दी लगाओ, सुबुध भाई जल्दी में हैं।”

भोजन के बाद सुबुध ने विवेक बाबू के डेरे से विदा ली। हाथ जोड़ते हुए विवेक बोले- “हम पर भी ध्यान रखिएगा।”

गाँव की सीमा में प्रवेश करते ही सुबुध ने अपने घर की चिंता पीछे छोड़ दी। अब उन्हें पूरा गाँव ही अपना परिवार लगने लगा था। खेत-पथार, पोखर-झाड़ियों और बग़ीचे को एकटक देखते हुए वे मन ही मन सोचने लगे, अगर इन

संपत्तियों को सही ढंग से सँभालकर विकसित किया जाए तो निश्चित ही गाँव में खुशहाली आ सकती है।

अभी तक खेत मरणासन्न पड़े हैं, पोखर सूख चुके हैं और झाड़ियाँ उजड़ गई हैं। सबसे दुखद यह है कि इंसान भी दबते-दबते इतना दब चुका है कि अब उसमें केवल एक ढाँचा ही शेष बचा है। ऐसे में ज़रूरी है कि सबमें नई चेतना जगे, काम का ढंग बदले और नई तकनीक के औज़ारों का उपयोग किया जाए। तभी शिशिर का यह सिकुड़ा हुआ समाज वसंत की तरह खिल सकेगा।

यही सोचते-सोचते सुबुध राजिन्दर के घर के पास पहुँचे और वहीं रुक गए। राजिन्दर का घर तीन हिस्सों में बँटा हुआ था। आँगन के एक कोने में चटाई बिछी थी, दक्षिणी घर में अनाज रखा था और वहीं एक छोटी-सी बैठक भी बनी थी। बैठक में दो चौकियाँ थीं, एक पर राजिन्दर स्वयं सोते थे और दूसरी मेहमानों के लिए रखी गई थी।

सुबुध को देखकर राजिन्दर ने तुरंत हाथ जोड़कर प्रणाम किया, आदरपूर्वक अपनी चौकी पर बैठाया और दरवाज़े की ओर मुँह कर पत्नी को आवाज़ दी- “मास्टर साहब आए हैं, जल्दी से एक लोटा पानी ले आओ।”

पति की बात सुनकर गुलबिया पानी लेकर आई और ओसारे में खड़ी हो गई। उसकी झिझक देखकर राजिन्दर ने कहा- “इन्हें नहीं पहचानती हो? ये सुबुध भाई हैं। मुँह क्यों छिपा रही हो?”

राजिन्दर की बात पर मुस्कुराकर सुबुध बोले- “गाँव में रहकर भी जैसे अनजान हो गया हूँ। जब से नौकरी शुरू की, गाँव से नाता ही छूट गया। हफ्ते में एक दिन आता था, वह भी इतना जल्दी-जल्दी निकल जाता था कि घूमने-फिरने का समय ही नहीं मिला। लोग मुझे पहचानते ही नहीं। लेकिन अब तो गाँव में ही रहने का निश्चय किया है, नौकरी भी छोड़ दी है। अब सब पहचानने लगेंगे।”

सुबुध की बात सुनकर राजिन्दर ने पत्नी से कहा- “सुबुध भाई बड़े आदमी हैं। जब हमारे दुआर पर आए हैं तो उन्हें कुछ खिलाए-पिलाए बिना कैसे जाने देंगे? जाओ, बाड़ी से चार ओरहा वाला मकई तोड़कर भून लाओ।”

पति की बात सुनकर गुलबिया मुस्कराती हुई चली गई। इधर राजिन्दर ने सुबुध से पूछा- “भाई, नौकरी क्यों छोड़ दी?”

राजिन्दर के प्रश्न का सीधा उत्तर देना सुबुध ने उचित नहीं समझा। केवल इतना बोले- “मन नहीं लगा। अपने ही खेत-पथार हैं, अब खेती ही करूँगा।”

कुछ ही देर में गुलबिया चार ओरहा मकई, साथ में नमक-मिर्च सजाकर थाली में रखकर ले आई और सुबुध के सामने रख दी। फिर खुद नीचे बैठ गई। मकई के ओरहा को देखकर सुबुध प्रसन्न हो उठे। एक ओरहा हाथ में लेकर वे उसके दानों को गौर से देखने लगे। दाने भरे-पूरे और सुगठित थे। मुस्कुराते हुए बोले- “बहुत अच्छी मकई है। हमारे यहाँ की ज़मीन में भी अगर मेहनत से खेती की जाए, तो अच्छी उपज हो सकती है। मैंने बेगूसराय, सहरसा और मुज़फ्फरपुर में देखा है कि वहाँ मकई की खेती से लोग काफी संपन्न हो गए हैं। साल भर मकई बोते हैं और प्रति कट्ठा पाँच-छह मन उपज मिलती है। खाने में भी बढ़िया, रोटी, सतुआ, भुजा, ओरहा सब इसी से बनते हैं। और बादाम और मकई का सतुआ तो बिना दाँत वालों के लिए भी अमृत है।”

बाएँ हाथ में मकई की डंडी पकड़कर, दाहिने हाथ से एक दाना तोड़कर मुँह में डालते हुए सुबुध ने पूछा- “राजिन्दर भैया, आपके कितने बच्चे हैं?”

सवाल सुनकर राजिन्दर चुप रह गए। लेकिन गुलबिया बोली- “तीन भाई-बहन हैं। बड़ी बेटी ससुराल में है, उसका गुज़ारा अच्छा है। दूसरी की भी शादी की थी, पर दामाद ग़ायब हो गया। दिल्ली में नौकरी करता था, वहीं से लापता हो गया। न कोई चिट्ठी, न कोई ख़बर। छह महीने तक बेटी को ससुराल में रखा, फिर वापस ले आए। दिल्ली से जो कोई लौटता है, अलग-अलग कहानियाँ सुनाता है, कोई कहता है उसने दूसरा ब्याह कर लिया, कोई कहता अरब चला गया, कोई कहता सेना में भर्ती हुआ, कोई कहता उग्रवादी बन गया। कोई भी पक्की बात नहीं करता। चार साल हो गए, बेटी हमारे पास ही है। पर गाँव में कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें औरतों की इज़्ज़त की कोई क़द्र नहीं।”

हाथ से इशारा करते हुए राजिन्दर बोला- “वो घर देख रहे हैं? उसी आँगन का एक लड़का कभी मछली खरीद लाता था, तो कभी फोटो खिंचवाने के बहाने उसे साथ ले जाता। हम दोनों खेत-बाग़ में लगे रहते। गाँव की गप-शप पर ध्यान ही नहीं दिया। जब लोगों ने कान भरना शुरू किया, तब समझ में आया। तब तक बड़ी बेटी घर पर थी, उसी को कहा। वह उसे अपने साथ ले गई। दूसरी शादी

इसलिए नहीं की कि क्या पता दामाद जीवित हो। बाद में उसी बड़ी बेटी के पति से उसका विवाह कर दिया। अब दोनों बहनें एक ही घर में हैं, आपस में मेलजोल भी बना हुआ है। छोटा बेटा भी है, उसका भी ब्याह कर दिया है।"

सुबुध मुस्कुराते हुए बोले- "दान-दहेज में क्या-क्या देना पड़ा?"

दान-दहेज का नाम सुनते ही गुलबिया हँसते हुए बोली- "समधी खुद आया था। साथ में लड़की का मामा भी था। दुआर पर आकर भोला के बाप से बात करने लगे। मैं उस समय गोबर से उपले थाप रही थी। कमर में साड़ी का छोर कसकर बाँधा था, सिर का आँचल गर्दन तक लटक रहा था और दोनों हाथ गोबर से सने हुए थे। ऐसे में आँचल कैसे सँभालती? मैं वैसे ही उपले थापती रही। कौन किसे पहचान रहा था? वह मुझे नहीं जानता था, मैं भी उसके लिए अजनबी थी। वह भी मनुष्य, मैं भी मनुष्य, तो फिर बीच में शर्म कैसी?"

गुलबिया की बात सुनकर राजिन्दर ने दाँत किटकिटाते हुए टोका- "अब भी इस उम्र में तुम्हें समझदारी नहीं आई? जो मन में आता है, बक देती हो।"

राजिन्दर की बात को दबाते हुए गुलबिया बोली- "क्या झूठ बोल रही हूँ कि लाज आएगी? मास्टर बाबू कोई पराए हैं क्या, जो इन बातों का ढोल पीटेंगे?"

बीच-बचाव करते हुए सुबुध बोले- "फिर उसके बाद क्या हुआ?"

गुलबिया ने कहना शुरू किया- "तभी वह भी आ गया। दोनों लोग चौकी पर बैठकर बातें करने लगे। मेरा उपला थापना पूरा हो गया, तो आँगन में आ गई। हाथ-पाँव धोकर पिछली तरफ खड़ी हो गई और चुपचाप उनकी बातें सुनने लगी। लड़की का मामा थोड़ा उचक्का लगा, लेकिन बाप बहुत समझदार था। बेचारे ने बहुत सही बातें कहीं। उन्होंने कहा, 'देखो, तुम्हारा बेटा है और मेरी बेटी। दुनिया में जितने लोग हैं, सब अपने बेटा-बेटी के लिए ही सब कुछ करते हैं। जैसे तुम हो, वैसे मैं भी हूँ। जैसे तुम अपनी नमक-रोटी से गुज़ारा करते हो, वैसे ही मैं भी करता हूँ। कौवे से अनाज लुटवाना बेवकूफ़ी होगी। मैंने एक बेटी की शादी में एक लाख रुपये नगद दिए, इतना तामझाम किया कि बैंक में जमा किया साठ हज़ार भी खत्म हो गया। अब वैसा नहीं करूँगा। इस बेटी और दामाद को एक चापाकल गाड़ दूँगा, दो कमरे का मकान बना दूँगा, एक जोड़ी गाय या भैंस दे

दूँगा, साथ में कपड़े, बर्तन, लकड़ी का सामान और शादी का पूरा खर्चा मैं ही करूँगा। तुम्हें कुछ भी खर्च नहीं करना होगा। क्योंकि जो भी खर्च होगा, आखिर उन्हीं दोनों का होगा।'"

गुलबिया थोड़ी देर रुकी, फिर बोली- "मुझे बात पसंद आई, लेकिन मन उलझा हुआ था। मर्दों की बातचीत चल रही थी। मन में डर था कि अगर बाद में कभी मनमुटाव हुआ तो न रिश्तेदारी बचेगी न इज़्ज़त। मन बहुत स्थिर हो गया। सोचा शायद वह खुद कुछ कहेगा, लेकिन नहीं कहा। तब मैंने खांसी कर इशारा किया, तब भी नहीं। अब बताइए, क्या करती? रिश्ता अच्छा था, लेकिन कहीं अड़चन आ गई तो सब मिट्टी में मिल जाएगा। फिर भी हिम्मत करके दुआर पर जाकर उनसे बोली, 'भैया! समधी ने बहुत अच्छी बात कही है, भोला का ब्याह कर लीजिए।'"

"इतना कहकर तुरंत आँगन लौट आई, शरबत बनाया और तीनों को पिला दिया। उसी दिन बात पक्की हो गई और अगले लग्न में विवाह भी हो गया।"

इतनी देर में सुबुध ने सामने रखी चारों भुनी मकई खा ली। फिर पानी पिया और उठकर चल पड़े। कुछ दूर तक पैदल चलते रहे, लेकिन मन में विचार उठने लगे, घर जाएँ या रामाकान्त काका के पास?

चौराहे पर पहुँचकर सुबुध ठिठक गए। मन का एक हिस्सा कहता था कि दिन भर की थकान के बाद आराम ज़रूरी है, इसलिए सीधे घर जाना चाहिए। लेकिन दूसरा मन कहता था, अगर इस उम्र में आराम करने लगे तो जीवन ही हाथ से निकल जाएगा।

अंततः मन के द्वंद्व में डूबे सुबुध ने तय किया कि पहले घर चलकर नौकरी छोड़ने की खबर देनी चाहिए। बेचैनी के साथ उन्होंने रामाकान्त के घर का रास्ता छोड़ दिया और मलाहटोली की गली पकड़ते हुए अपने घर की ओर बढ़ गए।

घर के पास आते ही सब कुछ बदला-बदला लगने लगा। ऐसा लग रहा था मानो सारा माहौल किसी अनजानी खुशी में डूबा हो। दरवाज़े की चहचहाहट भी आज कुछ ज़्यादा ही मधुर लगी।

दरवाज़े पर पहुँचकर सुबुध ने कुर्ता उतारकर चौकी पर रखा और आवाज़

लगाई- “एक लोटा पानी ले आओ, बहुत प्यास लगी है।”

आवाज़ सुनकर पत्नी किशोरी पानी लेकर आ गई। लोटा पकड़ाते ही सुबुध ने पानी पीते हुए कहा- “आज से नौकरी छोड़ दी है, विद्यालय में त्यागपत्र दे आया हूँ।”

यह सुनकर किशोरी चौंक गई। लेकिन पति-पत्नी के बीच अक्सर मजाक चलता रहता था, इसलिए उसने बात को हल्के में लिया। मुस्कुराकर बोली- “अच्छा किया। अब आठ दिन में एक बार मिलने की जगह रोज़ साथ रहेंगे। मेरे लिए भी बढ़िया है।”

किशोरी की बात सुनकर सुबुध को लगा कि उसने बात को मजाक ही समझा है। उन्होंने बात को गंभीर बनाते हुए दोहराया- “तुम इसे मजाक समझ रही हो, लेकिन यह बिलकुल सच है।”

फिर उन्होंने जेब से त्यागपत्र की एक नकल निकाली और दिखाते हुए कहा- “देखो, यह है कागज़।”

इसी बीच मंगल भी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर किशोरी संकोच में आकर वहाँ से हट गई। सुबुध मुस्कुराए और बोले- “काका, नौकरी छोड़ दी है। अब गाँव में रहकर खेती करूँगा और जितना बन पड़ेगा, समाज की भी सेवा करूँगा।”

सुनकर मंगल बोले- “बौआ, मैं उम्र में तुमसे बड़ा हूँ, लेकिन तुम पढ़े-लिखे हो, मास्टर रहे हो, ज़रूर सोच-समझकर ही ऐसा कदम उठाया होगा।”

मंगल की बात से सुबुध को तसल्ली मिली। मुस्कुराते हुए बोले- “काका, जब तक पढ़े-लिखे लोग गाँव और समाज में रहकर उसके कामकाज को आगे नहीं बढ़ाएँगे, तब तक समाज कैसे बदलेगा?”

इसी बीच अचानक किशोरी आँगन में ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। सुबुध समझ गए कि वह भीतर से बहुत आहत है। वे बेचैनी से बैठे रहे, लेकिन जब उसका रोना और तेज़ हो गया, तो टोले के लोग दौड़कर आ गए। देखते ही देखते पूरा आँगन लोगों से भर गया। सबने चकित होकर किशोरी से पूछा- “क्या हुआ? इस तरह अचानक क्यों रो रही हो?”

किशोरी ने कोई उत्तर नहीं दिया और और भी ज़ोर से रोने लगी। टोले की सखींया- फूल, पान, गुलाब, कदम, चाँद और किशोरी की सहेलियाँ—सब एक

ही सवाल करती रहीं- "क्या हुआ?" लेकिन जितना पूछा गया, वह उतना ही ज़्यादा रोने लगी। किसी को कुछ समझ नहीं आया। अटकलों का बाज़ार अपनी रफ़्तार से गर्म होता गया। कोई कुछ कहता, कोई कुछ और। दरवाज़े पर बैठे सुबुध मन ही मन प्रसन्न थे। उनके भीतर विचार उठ रहा था कि जब तक औरत-मर्द अपनी पुरानी आदतें नहीं छोड़ेंगे और नया रास्ता नहीं अपनाएँगे, तब तक नया समाज कैसे बनेगा। यह सवाल केवल समाज के लिए नहीं, परिवार और व्यक्ति के लिए भी है। इसलिए वे चुप ही रहे।

अकलबेरा का समय था। बाँध की तरफ़ से गाय, भैंस और बकरियाँ चरकर लौट रही थीं। घास बहनियाँ सिर पर घास की पथिया लिए आ रही थीं। गोबर बटोरने वाली औरतें सिर पर गोबर की छितनी उठाए घर लौट रही थीं।

इसी बीच बुधनी और सोमनी भी, सिर पर छिट्टा लिए, सुबुध के घर के पास पहुँचीं। तभी उन्होंने आँगन से रोने की आवाज़ सुनी। वे ठिठक गईं और समझ गईं कि सुबुध की पत्नी रो रही है। सोमनी ने बुधनी से कहा- "बहन, छिट्टा रखकर चलें, ज़रा देख आएँ।"

बुधनी बोली- "अरे बहन, इन चमचिकनियों की सिसकियाँ सुनकर हम क्या करेंगे? दिन भर चाय-पानी घोंटती रहती हैं, जैसे बस यही दुनिया हो। मर्द को चाहे जो हो जाए, औरतें रानी बनी रहती हैं। जब तक हम यहाँ रूकेंगी। तब तक हम घर पहुँच जाएंगे। घास-भूसा झाड़ना, जलावन-काँठी समेटना, गौशाला साफ करना है, बर्तन-भाँड़े धोना है, इन भभटपनों वाली का रोना सुनकर क्या करेंगे! चलो, अपना काम देखें।"

सोमनी सिर हिलाते हुए बोली- "ठीक कहती हो बहन। जिसे जितना सुख मिलता है, वह उतना ही ज़्यादा रोता है। हम ही अच्छे हैं- कमाते हैं, खाते हैं और चैन से रहते हैं। इन ललमुहीयों की करतूतें सुनोगी तो मन करेगा मुँह पर थूक दें।"❑

11.

पूरे दिन सुबुध के मन में यही खटका बना रहा कि जिस गाँव में लोगों का उत्साह बढ़ा है, वहीं अगर बीहड़ की तरह अचानक माहौल पलट गया, तो कोई अनहोनी भी हो सकती है। समाज का क्या भरोसा- कौन, कब, क्या कह दे या चुप रह जाए, कहना मुश्किल है। ज़रा-सी बात किसी के मन में असंतोष भर सकती है।

इसी चिंता के चलते सुबुध के भीतर बार-बार यह आशंका उठती रही कि कहीं गाँव के अगुआ लोग पैसों की चाल में फँसकर कोई चालबाज़ी तो नहीं करना चाह रहे हैं। अगर लोगों की दिशा रोकी गई, तो खतरा बढ़ सकता है। जैसे तेज़ रफ़्तार गाड़ी पर अचानक ब्रेक लगाने से दुर्घटना हो जाती है, वैसे ही किसी सामाजिक काम में ढिलाई आने पर अनचाहा नतीजा सामने आ सकता है।

फिर वे सोचते, पूरा दिन तो हम अपनी ही उलझनों में फँसे रहे, हमारी हालत कौन समझेगा? गाँव के लोग तो बस गाँव के काम को ही देखेंगे।

उलझनों में डूबा सुबुध रामाकान्त से मिलने निकल पड़ा। सामने संध्या उतर आई थी। थोड़ी दूर बढ़ने पर सुरैतिया के घर के आगे पाँच-सात लोग बैठे बातचीत कर रहे थे।

एक ने कहा- “ज़मीन बाँटने का ढोल तो रामाकान्त काका ने पीट दिया, पर बाँटते कहाँ हैं! धन का लोभ किसे नहीं होता। क्या वे सच में खेत बाँट देंगे? ये सब अमीरों की चालबाज़ी है।”

दूसरा बोला- “लोग अब कहाँ अच्छे-बुरे का विचार करते हैं! जो सुना, कौवे की तरह काँव-काँव करके पूरे गाँव में फैला दिया। पर इससे क्या? अगर वे खेत न भी बाँटें तो क्या लोग मर जाएँगे?”

तीसरा बोला- “जिसने ठग-फुसलाकर इतना धन जोड़ा, वही अब सहज भाव से ज़मीन दे देगा? ग़रीब के माथे पर जो दुख लिखा है, उसे गरीब ही

भुगतेगा। पर देखो, कैसे निर्लज्ज होकर रामाकान्त नाचते-नाचते लोगों से ऐसा कहे थे...!”

रास्ते में खड़ा सुबुध चुपचाप सब सुनता रहा। सुनकर उसके भीतर जैसे आग सी भड़क उठी। उसने सोचा कि दिन भर मैं तो दूसरी जगह उलझा रहा, इधर गाँव में क्या कुछ घट गया। वह बिना कुछ कहे आगे बढ़ा और सीधे रामाकान्त के घर पहुँचा। सुबुध को देखते ही हीरानन्द ने हँसते हुए कहा- “लो, जिनकी चर्चा हो रही थी, वे आ भी गए।”

रामाकान्त बोले- “कई बार मन हुआ तुमसे बात करूँ, लेकिन तुम तो दिन भर दिखे ही नहीं। कहीं बाहर गए थे क्या?”

सुबुध ने थकान भरे स्वर में कहा- “दिन भर इतनी भागदौड़ रही कि अब जाकर साँस ले पाया हूँ। आज पूरा दिन घर से बाहर परेशान घूमता रहा।”

रामाकान्त ने चौंककर पूछा- “किस बात की परेशानी?”

सुबुध ने गहरी साँस लेते हुए कहा- “कल रात जब बिस्तर पर गया तो आपकी बात रह-रहकर याद आती रही। मन बेचैन हो गया। देर रात तक सोचता रहा, नींद भी नहीं आई। अंत में मन में एक ठोस निर्णय लिया। जैसे आपने अपनी सारी संपत्ति समाज को दे दी, वैसे ही मैं भी अब नौकरी छोड़कर पूरी तरह समाज की सेवा करूँगा। क्योंकि जैसे गाड़ी इंजन के सहारे चलती है, वैसे ही समाज को भी दिशा देने के लिए एक इंजन की ज़रूरत होती है। तभी एक ऐतिहासिक घटना याद आई।”

‘ऐतिहासिक घटना’ सुनते ही हीरानन्द ने उत्सुकता से पूछा- “कौन-सी घटना?”

सुबुध ने बताया- “तिब्बत में एक राजकुमार हुआ था, चेन्पो। उसने अपने राज्य में अमीर और ग़रीब के बीच बहुत बड़ी खाई देखी। उस खाई को भरने के लिए उसने अपनी सारी संपत्ति प्रजा में बाँट दी। लेकिन कुछ ही समय में हालात फिर पहले जैसे हो गए। अमीर और अमीर हो गए, ग़रीब वहीं के वहीं रह गए। यह देखकर वह बहुत दुखी हुआ। उसे समझ नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ।”

कहानी सुनते हुए शशि शेखर ने बीच में पूछा- “फिर ऐसा क्यों हुआ?”

सुबुध ने गंभीरता से जवाब दिया- “मैं समाजशास्त्र का विद्यार्थी हूँ,

इसलिए जानता हूँ कि जब तक व्यवस्था नहीं बदलेगी, तब तक इंसान की ज़िंदगी नहीं बदल सकती। इसलिए मैंने अपना कर्तव्य समझते हुए नौकरी छोड़ दी है। मैं गाँव का हूँ और गाँव के हर व्यक्ति का हूँ। चाहे वह ग़रीब हो या अमीर, बच्चा हो या बूढ़ा। मैं तिब्बत के उस राजकुमार की तरह भावुकता में बहकर कोई मूर्खता नहीं करूँगा।”

यह सुनकर रामाकान्त का मन प्रसन्न हो उठा, लेकिन वह पूरी कहानी पर चुप ही रहा। हीरानन्द और शशि शेखर दोनों का मन उस प्रसंग में डूब गया। उसी समय जुगेसर चाय ले आया और सबने चाय पी।

चाय पीने के बाद रामाकान्त बोले- “देखो, मैंने अपनी सारी ज़मीन समाज को दे दी है। अब मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। लेकिन एक बात ज़रूर कहूँगा कि समाज में कोई गड़बड़ी नहीं होनी चाहिए। हर किसी को ज़मीन मिलनी चाहिए।”

रामाकान्त की बात सुनकर शशि शेखर ने अपना विचार रखा- “गाँव में जितने ग़रीब परिवार हैं, उन सबको जोड़ लो और खेतों को मिलाकर बराबर बाँट दो।”

शशि की बात सुनते ही हीरानन्द ने नाक सिकोड़ते हुए कहा- “उँ-हूँ।”

मुँह पर हाथ रखे सुबुध चुपचाप सोचते रहे कि कोई ऐसा भी है जिसके पास घर तक नहीं है, और कोई ऐसा भी है जिसके पास घर के साथ दो कट्ठा धान का खेत है। इसी तरह किसी के पास पाँच कट्ठा ज़मीन है। अगर सारी संपत्ति बराबर बाँट दी जाए तो क्या सबको बराबर मिल पाएगा?

उधर हीरानन्द सोच रहे थे कि ग़रीब भी सब एक जैसे नहीं होते। कोई मेहनती है तो कोई आलसी और बीमार। कोई नशाखोर है तो कोई सात्विक। ग़रीबी की स्थिति तो खुद में बहुत उलझी हुई है। लेकिन असली सवाल यह है कि समाज को आगे कैसे बढ़ाया जाए।

सबको चुप देखकर रामाकान्त ने मुँह में पान डालते हुए ज़र्दा थूककर कहा- “ऐसे चुप क्यों हो? मैं तो समाज के दाँव-पेंच नहीं समझता। लेकिन आप लोग तो पढ़े-लिखे, समझदार हैं। फिर भी कोई कुछ क्यों नहीं बोलता?”

हीरानन्द ने अपनी असमर्थता मानते हुए सुबुध से कहा- “भाई, जो

सोचता हूँ, उसी में उलझ जाता हूँ। इसलिए आप ही साफ़-साफ़ कुछ कहिए।"

गंभीर होकर सुबुध बोले- "हमारा समाज बहुत पिछड़ा हुआ है। पिछड़े समाज में समस्याएँ दलदल की तरह होती हैं, जो लोगों को जकड़े रहती हैं। जब तक उनका समाधान नहीं होता, समाज आगे नहीं बढ़ सकता। लेकिन समाधान केवल कागज़ पर नक्शा बना देने से नहीं होगा। समस्याएँ लोगों की ज़िंदगी को इस तरह पकड़ रखी हैं जैसे चुरीन शरीर में घुसकर असर दिखाती है। इसलिए अभी हमें दो सवालों को पकड़ना चाहिए। पहला, क्या सबके पास बराबर खेत हो सकता है? दूसरा, खेत के साथ जो पूँजी है, उसका उपयोग कैसे किया जाए?"

सुबुध बोल ही रहे थे कि जुगेसर बीच में टोकते हुए बोला- "मास्टर साहब, ज़रा साफ़-साफ़ कहिए। अगर बात को पौती में रखी चीज़ की तरह छिपाकर कहेंगे तो हम लोग कैसे समझेंगे?"

जुगेसर की बात सुनकर सुबुध को बुरा नहीं लगा। वह मुस्कुराते हुए बोले- "ठीक है जुगे, अब साफ़-साफ़ कहता हूँ। देखो, केवल खेत होने से उपज नहीं होती। उसे उपजाना पड़ता है। इसके लिए पहले खेत को जोतना और कोरना पड़ता है। फिर पानी से सींचकर उसमें बीज डालना होता है। जब पौधा रोपने का समय आता है, तो उसे उखाड़कर रोपा जाता है और उसकी कमठौन की जाती है। यह सब करने के बाद ही फसल मिलती है। खेत के साथ मेहनत भी एक पूँजी है। मेहनत के लिए औजार की ज़रूरत होती है। औजारों का भी अपना इतिहास है।

शुरुआत में लोग बहुत साधारण औजारों से काम करते थे। जैसे-जैसे औजार उन्नत होते गए, वैसे-वैसे लोगों की हालत भी बेहतर होती गई। लेकिन अभी हमारा गाँव बहुत पिछड़ा है, इसलिए यहाँ नए औजारों से काम करना संभव नहीं है। नए औजारों के लिए ज्यादा पैसे चाहिए, जो इस समय नहीं हैं। इसलिए अभी तो साधारण औजारों से ही काम चलाना होगा। हालात जैसे-जैसे सुधरेंगे, औजार भी वैसे ही बेहतर होते जाएँगे।"

जुगेसर जैसे पूरी बात समझ गया। वह बोला- "हाँ, अब समझ में आया। सच ही कहते हैं कि पढ़-लिखकर अगर हल भी जोतो, तो जोत सीधा होता है।"

हीरानन्द ने कहा- “बहुत सुंदर बात कही, सुबुध भाई। अब खेतों के बँटवारे के बारे में भी बताइए।”

हीरानन्द के चेहरे की ओर देखते हुए सुबुध बोले- “हीरा बाबू, गाँव में जितने भी एक बीघा से कम ज़मीन रखने वाले ग़रीब लोग हैं, उन्हें एक-एक बीघा ज़मीन दी जाएगी। इसमें केवल रामाकान्त काका की ज़मीन ही नहीं, मेरी ज़मीन भी जोड़ी जाएगी। जिसके पास घर भी नहीं है, उसे पूरा एक बीघा मिलेगा। लेकिन जिसके पास पहले से पाँच कट्ठा है, उसे केवल पंद्रह कट्ठा मिलेगा। और जिनके पास उससे भी ज़्यादा ज़मीन है, उन्हें और कम देना होगा।”

सुबुध की बात सुनकर रामाकान्त हँसते हुए बोले- “बहुत बढ़िया, बहुत बढ़िया। सुबुध का विचार बहुत सुंदर है। अब तो रात भी गहराने लगी है। खाने-पीने का समय हो गया है। रोटी गरम-गरम अच्छी लगती है, इसलिए अब बातचीत यहीं खत्म करो। कल सुबह ढोल पिटवाकर सबको बुलाऊँगा और सबके सामने अपना फैसला सुनाकर खेत बाँटने की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं पर छोड़ दूँगा। नहीं तो यह चर्चा बेवजह का हो-हल्ला बन जाएगी।”

सुबह ढोल पीटा गया। वैसे भी लोग पहले से ही उत्सुक थे। ढोल की आवाज़ सुनकर घर-घर से लोग जमा हो गए। जैसे कोई मुकदमे का फ़ैसला सुनने जाता है, वैसे ही सबके मन में उत्सुकता थी। अस्सी वर्ष के सोनेलाल बाबा भी आ पहुँचे। हालाँकि उनके पास खुद ढाई बीघा खेत था, लेकिन गाँव में उठे इस नए उत्सव के जोश में वे भी शामिल हो गए।

बैठते ही उन्होंने गर्दन उठाकर पूछा- “कहीं कोई टोला तो नहीं छूट गया? सब लोग अपने-अपने टोले के लोगों को गिन लो।”

सोनेलाल बाबा की बात सुनकर लोग अपने-अपने टोले के सभी लोगों को बुलाने के लिए घर-घर जाने लगे। सभा में केवल बौका और गोसैमा नहीं आए थे। दोनों टोले से दो-दो लोग भेजे गए, और उन्हें भी बुला लिया गया।

जैसे ही वे पहुँचे, सोनेलाल बाबा ने पूछा- “तुम दोनों के कानों में ढोल की आवाज़ नहीं पहुँची?”

बौका ने उत्तर दिया- “ढोल तो सुना, बाबा। लेकिन नौकरी करता हूँ, न माता-पिता हैं और न पत्नी। खेत लेकर क्या करूंगा? अभी तक विवाह भी नहीं

हुआ है। लोग मुझे उजड़ा हुआ मानते हैं, तो फिर यहाँ क्यों बेकार में आता?"

बौका की बात सुनकर सोनेलाल बाबा ने सिर हिलाकर सहमति जताई।

इसके बाद गोसैमा बोले- "हम दोनों बूढ़े हो चुके हैं। बेटा नहीं है। एक बड़ी बेटी है, इस बार उसका विवाह कर देंगे। विवाह के बाद वह भी अपने घर चली जाएगी। फिर भोगनेवाला कौन रहेगा? ऐसे में बेकार क्यों खेत लें?"

गोसैमा की बात पर भी बाबा ने सहमति में सिर हिलाया। दोनों की बातें सुनकर उनके मन में यह विचार आया कि समाज से ये दो परिवार धीरे-धीरे अलग हो जाएँगे। दोनों को अलग-अलग माना भी नहीं जा सकता, लेकिन यदि उन्हें जोड़कर एक परिवार बना दिया जाए तो बात बन सकती है।

वे बोले- "बौका तो नाम का है, लेकिन कितना समझदारी से बोलता है। और गोसैमा की बेटी विवाह के बाद चली जाएगी, तो ये दोनों बुज़ुर्ग अकेले हो जाएँगे। अगर बौका का विवाह गोसैमा की बेटी से कर दिया जाए, तो एक परिवार बन जाएगा।"

सोनेलाल बाबा की इस बात पर सभा में आधे से अधिक लोगों ने समर्थन दिया। लेकिन कुछ लोगों ने विरोध जताते हुए कहा- "एक ही गाँव में लड़का-लड़की का विवाह करना चलन में नहीं है। अगर ऐसा हुआ तो यह अनुचित माना जाएगा।"

तभी लखना धड़धड़ाते हुए उठे और बोले- "कौन सा गाँव और कौन सा समाज है जहाँ लड़के-लड़कियाँ आपस में विवाह नहीं करते? चोरी-छिपे करने से अच्छा है कि सामने-सामने विवाह हो। खुलेआम करने में क्या अधर्म है?"

लखना की बात पर सभी ने सहमति जताई। अंततः बौका और गोसैमा की बेटी का विवाह तय हो गया।

सुबुध के मन में एक नया सवाल उठा, क्या बौका और गोसैमा को ज़मीन बाँटते समय एक परिवार माना जाए या दो? विचार-विमर्श के बाद निर्णय हुआ कि उन्हें एक परिवार मानकर हिस्सा दिया जाएगा।

इसके बाद यह सवाल उठा कि ज़मीन की नाप-जोख कौन करेगा। इस पर रामाकान्त ने कहा- "आपस में ही बाँट लो।"

सुबुध के मन में आया कि रामाकान्त काका ने बिल्कुल सही कहा था। काम को बाँटे बिना करना बड़ी भूल होगी। अगर सब कुछ खुद ही करना चाहेंगे, तो फिर समाज के इतने लोगों का क्या उपयोग होगा? कोई गलती हो भी गई, तो उसे मिल-बैठकर जल्दी ही ठीक किया जा सकता है।

वे बोले- "खेत नापने की तरकीब कई लोगों को आती है। अगर अमीन बुलाकर बँटवारा करेंगे, तो बहुत खर्च होगा। जो पैसा बाँटने में लगेगा, उससे किसी और ज़रूरी काम को क्यों न पूरा किया जाए? पैसे की कमी है, इसलिए फिजूलखर्ची से बचकर सोच-समझकर खर्च करना ही बेहतर होगा।

मैं देखता हूँ कि जैसे देश का संविधान वकीलों को साल भर हरा-भरा रखता है, वैसे ही सर्वे का काम अमीनों को खिलाता रहता है। कौए से अनाज लुटाना समझदारी नहीं है। जैसे आपको मँगनी में खेत मिल रहा है, वैसे ही सीधा-सादा, सही-सलामत तरीके से हाथ में चला जाए। अगर अमीनों के झमेले में पड़े, तो वही होगा जैसा लोग कहते हैं, 'जितने में बहु नहीं, उतने में चुड़ी।'"

सुबुध की बात सुनकर बिलटा जोश में उठ खड़ा हुआ और बोला- "माघ से लेकर जेठ तक हम हर साल खेत नापते हैं। यह कोई एक साल की बात नहीं है, जब से होश सँभाला है, तभी से यही करते आ रहे हैं। कौन अमीन और कौन कमिश्नर हमारे गाँव में मापने आएगा! अपने गाँव की तो बात ही क्या, हम पूरे इलाके में नाप करते हैं, यहाँ तक कि नेपाल तक जाकर भी खेत नापे हैं।

साल-दर-साल नापते-नापते हमें पूरे गाँव की ज़मीन मुँहजबानी याद हो गई है, किसका कौन-सा टुकड़ा कितना है। अब मापने की कोई ज़रूरत नहीं। हम सीधे-सीधे बता देंगे कि किसे कितना खेत देना है। बस, उसे कागज पर दर्ज कर लो। हम बताते जाएँगे और टुकड़े गिनाते जाएँगे।

एक पंडितजी थे, जिनका बड़ा नाम था—अभी नाम याद नहीं आ रहा—उन्होंने तो तीन ही कदम में पूरी दुनिया नाप डाली थी। उसी तरह हम भी तीन कदम का लग्गा बनाकर न केवल अपने गाँव की, बल्कि आस-पास के गाँवों की ज़मीन भी नाप देंगे।"

बिलटा की बात सुनकर रामाकान्त मुस्कराते हुए बोले- "बहुत बढ़िया, बहुत बढ़िया।"

इसके बाद सब लोग उठे और धीरे-धीरे सभा से विदा हो गए।

दोपहर ढलते ही पूरे गाँव की स्त्रियाँ, बड़ी संख्या में बच्चियाँ और छोटे-छोटे लड़के खेतों की ओर निकल पड़े। सभी के हाथों में खुरपी और टोकरी थी। वे चिकनी मिट्टी खोदने में लग गए।

सबके हाथों में खुरपी और टोकरी देखकर श्रीचन मन ही मन सोचने लगे, लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं? न तो नवरात्री आया है, न कोई पर्व-त्योहार। फिर अचानक औरतों में ऐसी हलचल क्यों? कौन-सा जादू फैल गया गाँव में कि मर्दों को तो भनक भी न लगी और औरतें सब समझ गईं?

और ये क्या, उनकी अपनी घरवाली भी छमकती हुई मिट्टी खोदने निकल गई!

जितना सोचते, उतना ही श्रीचन की उलझन बढ़ती गई। चिढ़कर वे रूदल के पास पहुँचे, जो घर के सामने ही बैठा था। रूदल भी खुद उलझन में था। श्रीचन को देखते ही उसने पूछा,

“अरे श्रीचन भाई, इन औरतों को कौन-सा नशा चढ़ गया है जो इतनी धूप में मिट्टी लाने भागी जा रही हैं?”

रूदल की बात सुनकर श्रीचन और उलझन में पड़ गए। मन में सोचा, मैं तो बाहर था, इसलिए नहीं जान पाया, लेकिन रूदल तो गाँव में ही है। इसे भी खबर नहीं! फिर मन में तय किया कि जब घरवाली मिट्टी लेकर लौटेगी, तब उससे पूछ लेंगे। लेकिन इस वक्त तो ऐसा लग रहा है मानो औरतों ने कोई बड़ा काम कर डाला हो, वह भी बिना पूछे।

भीतर से खुश, लेकिन ऊपर से गंभीर दिखते हुए श्रीचन ने रूदल से कहा- “अरे रूदल भाई, लगता है तुम्हारी पत्नी से तुम्हारा मेल-मिलाप नहीं होगा, तभी तो बिना बताए चली गई?”

श्रीचन की बात समझ न आने पर रूदल झुंझलाकर बोला- “क्या कहूँ भाई! औरतों पर भरोसा नहीं करना चाहिए। जब अपना काम होता है, तब तो हँस-हँसकर बातें करेंगी। लेकिन जब तुम्हारा काम होगा, तो कहेंगी सिर दर्द हो रहा है!”

श्रीचन मुँह दबाकर हँसते रहे, लेकिन रूदल का चेहरा गुस्से से लाल हो

गया।

विदा लेते हुए श्रीचन बोले- “अब जा रहा हूँ भाई। औरतों का हाल देखकर तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है।”

यह सुनकर रूदल भड़क उठा- “बहुत होशियार हो गई हैं औरतें। चले मेरे साथ कुदाल चलाने, तब पता चलेगा होशियारी कैसी होती है।”

थोड़ा आगे जाकर श्रीचन रुके और मुस्कराते हुए बोले- “क्या करें भाई, अब तो औरतों का ही राज हो गया है।”

रूदल बोला- “मुझे राज-पाट से क्या मतलब है। हल जोतता हूँ, कुदाल चलाता हूँ, दिन भर की मेहनत से तीन सेर लाता हूँ, खाता हूँ। इतने दिन तो बस मर्द ही चोर थे, अब औरतें भी चोरनी बनेंगी! जब जेल जाएँगी, तो पुलिसवालों से यारी बढ़ाएँगी!”

श्रीचन तो आगे निकल गए, लेकिन रूदल दोनों हाथ सिर पर रखे वहीं बैठा रह गया, सोचता रह गया।

सबने मिट्टी लाकर अपने-अपने आँगन में ढेर कर दी। पसीने से तर-बतर औरतें थोड़ी देर सुस्ताईं, फिर दीया बनाने के लिए मूसल और ओखली से मिट्टी को पीसने लगीं। गोबर मिलाकर उसे सानने लगीं। कुएँ और घड़ों से पानी लाकर सूखी मिट्टी में डालतीं। जैसे ही मिट्टी भीगी, उससे उठी मिट्टी की सौंधी सुगंध पूरे गाँव में फैल गई।

गाँव का वातावरण जैसे बदल गया। जैसे संध्या के समय चमेली और रातरानी की खुशबू हवा में घुल जाती है, वैसे ही भीगी मिट्टी की महक ने पूरे गाँव को महका दिया।

मिट्टी को गूँथकर औरतें छोटी-छोटी दीया बनाने लगीं। फिर उन्होंने पुराने साफ़ कपड़ों को फाड़कर दाहिने हाथ की हथेली से जाँघ पर रगड़-रगड़कर बातियाँ बनाईं और दीप तैयार किए। वे दीप दीवारों पर सजाए गए। किसी ने उन्हें फूलों की डाली में, किसी ने चँगेरी (बाँस की छोटी टोकरी) में, किसी ने छिपली (स्टील के प्लेट) में और किसी ने केले के पत्ते पर रख दिया। फिर सब स्नान करने निकल पड़ीं।

यह एक नया दृश्य था। एक नया उत्सव, नई उमंग, नई जिज्ञासा। सबके

मन में एक नई आशा जाग चुकी थी।

सूरज डूबा नहीं था, लेकिन क्षितिज की ओर झुक चला था। पेड़ों पर से धूप गायब हो चुकी थी। सबने अपने-अपने पूजास्थल पर जाकर घर के सामने दीप रखे और फिर एक टाँग पर खड़े होकर आराधना की कि आई हुई लक्ष्मी फिर लौटकर न जाए।

देवता के चरण छूकर सब लोग गाँव के देवस्थान की ओर चल पड़े। गाँव में एक अद्भुत दृश्य बन गया था। अपने-अपने आँगनों में सब अकेले थे, लेकिन जैसे ही आँगन से निकलकर देवस्थान की ओर बढ़े, राह में मिलते ही सब एक हो गए। मिलते ही वे उस देवता के गीत गाने लगे जिनकी ओर जा रहे थे। गाँव की गलियों में एक नहीं, अनेक समूह गीत गाते हुए उल्लास से भरे देवस्थान पहुँचे।

सबके मन में भूमि मिलने की खुशी थी। उनके चेहरों पर वही मुस्कराहट थी जो कई वर्षों के अंधकार के बाद दीप जलाने से आती है। सबके भीतर भाव नाच रहा था कि "एक से इक्कीस हो जाए।"

खेत मिलने की उम्मीद से गाँव के गरीब और वंचितों के मन में दीपों की रोशनी की तरह आशा के दीप जल उठे। ऐसा लगा जैसे सदियों से जमी हुई गरीबी की चट्टान पर कोई तेज़ धार पड़ गई हो। सबने अपने-अपने मन में नई-नई योजनाएँ बनानी शुरू कर दीं, जिससे वे ज़िंदगी की दुखभरी बेड़ियों को तोड़कर सुख की ओर बढ़ सकें।

एक नया जीवन जीने की उत्कंठा सबके मन में जाग चुकी थी। ❑

12.

खेत मिलने के बाद भजुआ-परिवार के सभी सदस्यों की सोच में बदलाव आ गया। वे सब मिलकर सोचने लगे कि जैसे रामाकान्त काका ने हमें अपनाया, वैसे ही हमें भी समाज का एक जिम्मेदार हिस्सा बनकर रहना चाहिए। तय किया गया कि सबसे पहले रामाकान्त काका, सुबुध, शशि शेखर और मास्टर साहब को घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया जाएगा।

लेकिन इसके लिए अब तक की हमारी जीवनशैली में बदलाव जरूरी है। आँगन, घर और दरवाज़े की जो अव्यवस्था है, वह सम्माननीय मेहमानों के बैठने योग्य नहीं है। अब तक तो हम जैसे-तैसे रहते आए हैं, पर अच्छे लोग ऐसी जगह नहीं आ सकते। उनका मन उदास हो जाएगा। इसलिए सुबह से ही हम सब आँगन और दरवाज़े को साफ-सुथरा और आकर्षक बनाएँगे।

इसके अलावा, अब हमें अपने पहनावे पर भी ध्यान देना होगा। अभी तक तो हम काम के वक्त पुराने, फटे और मैले-कुचैले कपड़े पहन लेते थे, और इसमें कोई हर्ज़ भी नहीं था। लेकिन जब हम किसी को आदरपूर्वक आमंत्रित करें और भोजन कराएँ, तब वैसा पहनावा उचित नहीं होगा।

भजुआ के बड़े बेटे का ससुराल दरभंगा के बेला मोड़ पर है। जब वह वहाँ जाता और वहाँ के लोगों का रहन-सहन, बातचीत और सोच देखता, तो उसके भीतर आगे बढ़ने की प्रेरणा जगती। लेकिन गाँव की गरीबी उस भावना को दबा देती। फिर भी दरभंगा में देखे हुए परिवार उसके मन में बसे रहते।

भजुआ का बड़ा बेटा 'झोलिया' सातों भाइयों में सबसे बड़ा है, इसलिए सभी उसकी बात मानते हैं। उसने कहा- "रामाकान्त बाबा ने सातों भाइयों को सात बीघा ज़मीन दी और एक पैसा भी नहीं लिया। ऐसा कौन करता है इस दुनिया में? अगर उनके मन में हमारे प्रति स्नेह और करुणा न होती, तो वे ऐसा नहीं करते। इसलिए हमें भी उन्हें उतना ही मान और सम्मान देना चाहिए। गाँव

में भाड़े पर कुर्सी, मेज़, दरी, कालीन और बर्तन सब मिल जाते हैं। जैसे बारात में पूरी व्यवस्था की जाती है, वैसे ही हम भी करेंगे।"

झोलिया की बात सुनकर सभी भाइयों और उनके माता-पिता ने सिर हिलाकर सहमति जताई। झोलिया ने आगे कहा- "बाबू, तुम रामाकान्त बाबा के पास जाकर उन्हें और उनके चारों साथियों को न्योता दे आओ। साथ ही उनसे दो-चार बातें भी कर लेना। इधर दो भाई भाड़े पर ज़रूरी सामान लाएँगे, और दो लोग बाज़ार से खाने-पीने की सारी सामग्री खरीद लाएँगे। सुबह से ही सब लोग अपने-अपने काम में लग जाएँगे।"

उधर, दलान पर रामाकान्त और हीरानन्द चाय पीते हुए गाँव की बातें कर रहे थे। बातचीत के दौरान रामाकान्त की नज़र बौएलाल और सुमित्रा पर पड़ी। उन्होंने ग्लास रखा और हीरानन्द से पूछा- "महेंद्र बेटा कह रहा था कि छह महीने की शिक्षा के बाद दोनों को भेज देगा, लेकिन अब तक क्यों नहीं आए?"

हीरानन्द ने जवाब दिया- "कोई वजह रही होगी, तभी अब तक नहीं आए। वैसे भी, चिकित्सा तो कठिन विद्या है। उसमें दक्ष होने में थोड़ा समय लग ही जाता है।"

दोनों की बातचीत चल ही रही थी कि तभी भजुआ आ पहुँचा। आते ही वह रामाकान्त के पैर छूकर फिर हीरानन्द के भी पैर छूने लगा। हीरानन्द ने आशीर्वाद देते हुए पूछा- "भज्जु भाई, सब कुशल तो है न?"

भजुआ बोला- "हाँ मास्टर बाबू! मुझे तो एक समय गाँव छोड़कर भागने की नौबत आ गई थी, लेकिन काका ने ऐसा नहीं होने दिया।"

रामाकान्त चौंककर बोले- "अरे! वह कैसे? क्या हुआ था?"

भजुआ ने गाँव में बसने की कहानी सुनानी शुरू की- "इस गाँव में पहले हमारी जाति के लोग नहीं रहते थे। लेकिन डोम का काम तो हर गाँव में जन्म से मृत्यु तक ज़रूरी होता है। हमारे पूर्वजों का घर गोनबा में था। पूरब से बहती कोसी नदी जब गोनबा तक पहुँची, तो अखाड़ चढ़ते ही वह उफान पर आ गई। पहली ही बाढ़ में ऐसा कहर टूटा कि बाँध तो दूर, घरों तक में पानी भर गया। तीन दिन तक न मवेशी बाहर निकल सके, न ही लोग। चीख-पुकार मची रही और समय यूँ ही बीतता गया।

हालाँकि वह पहली बाढ़ थी, इसलिए तीसरे दिन पानी उतर गया। तब हमारे बाबा और दादी केवल पति-पत्नी ही थे, पिता का जन्म भी नहीं हुआ था। जैसे ही पानी घटा, दोनों ने दस सुगर और घर का सामान समेटा और गाँव छोड़ने का निर्णय लिया। विदा होते समय दादी ने बाबा से कहा- "और कहाँ जाएँगे? मेरे माता-पिता अब भी जीवित हैं, वहीं चलो।' बाबा मान गए और दोनों इसी गाँव में आ बसे।"

गाँव में पहुँचते ही सुगरों को चरने के लिए छोड़ दिया गया और दोनों विश्राम करने लगे। उस समय इस गाँव में डोम जाति के लोग नहीं रहते थे, इसलिए गाँव के बच्चे-बूढ़े सभी सुगरों को देखने जमा हो गए। पूरे गाँव में कौतूहल फैल गया। लोग हमारे बाबा से कहने लगे कि वे यहीं बस जाएँ। बाबा रुक गए। गाँव के किनारे एक परती ज़मीन थी। गाँववालों ने मिलकर उसी परती पर उनके लिए एक घर बनवा दिया।

तब परती ज़मीन काफी फैली हुई थी, लेकिन चारों ओर खेत भी थे। धीरे-धीरे खेत मालिकों ने उस परती को काटकर अपने खेत में मिला लिया। परती छोटी होती गई। अब बस घर, आँगन और खलिहान ही शेष रह गए हैं। फिर भी तब तक कोई परेशानी नहीं हुई।

हमारे पिता भाइयों में अकेले थे। लेकिन हम दो भाई हुए। जब हम दोनों अलग हुए तो घर और ज़मीन का बँटवारा हो गया। फिर भी गुज़ारा चलता रहा। अब हम दोनों भाइयों के कुल सात बेटे हैं, चार मेरे और तीन मेरे भाई के। मेहनत से गुज़ारा तो हो जाता है, लेकिन घर में तंगी और अभाव बना ही रहता है।"

भजुआ की बात सुनकर रामाकान्त ने पूछा- "अब तो खेत बहुत मिल गए होंगे?"

भजुआ बोला- "हाँ काका, अब तो कई पीढ़ियाँ आराम से रह सकती हैं। अभी घर तो नहीं बना सके हैं, लेकिन खेती शुरू कर दी है।"

बीच में ही हीरानन्द ने पूछा- "सुबह-सुबह कहाँ निकल पड़े थे, भज्जु भाई?"

भजुआ मुस्कराकर बोला- "रात में हम सबने सोचा कि जिस तरह रामाकान्त काका ने हमें समाज का हिस्सा मानते हुए ज़मीन दी, उसी तरह हमें

भी उन्हें आमंत्रित करना चाहिए, भोजन कराना चाहिए, और एक धोती देकर विदा करना चाहिए। इसी निमंत्रण के लिए आया हूँ।"

न्योते का ज़िक्र आते ही रामाकान्त बोले- "कब का न्योता दे रहे हो? हीरानन्द भी वहीं हों और सुबुध-शशि को भी बुला लेना।"

भजुआ ने कहा- "काका, आप लोगों को थोड़े ही अकेले बुलाएँगे। उन दोनों को भी ले चलेंगे। यहाँ तो आप दोनों ही हैं, शशि भाई और सुबुध भाई नहीं हैं, इसलिए पहले उन्हें बुलाने ही गया था। आप दोनों स्नान-ध्यान कर लीजिए।"

हीरानन्द ने पूछा- "तो आज ही का न्योता है?"

"हाँ, मास्टर साहब," भजुआ ने उत्तर दिया।

रामाकान्त बोले- "बहुत अच्छा। शशि तो पोखर की ओर गए हैं, आते ही होंगे। तब तक तुम सुबुध को बुला लाओ।"

भजुआ सुबुध के घर पहुँचा। सुबुध चाय पीते हुए दोनों बच्चों को पढ़ा रहे थे। भजुआ को देखते ही उन्होंने पूछा- "भज्जु भाई, कैसे हो?"

भजुआ ने प्रणाम किया और बोला- "भाई, आपके ही पास आया हूँ। रामाकान्त काका और मास्टर साहब दोनों को न्योता दे चुका हूँ, अब आपको बताने आया हूँ।"

सुबुध ने पूछा- "क्या बताने आए हो?"

"न्योता देने।"

"किस काम का है?"

"कोई विशेष काम नहीं है। बस यही सोचा कि आप चारों को भोजन कराएँ।"

भजुआ की यह बात सुनकर सुबुध के मन में एक आंतरिक द्वंद्व पैदा हो गया। विचारों की एक लहर-सी उठी, भजुआ भी तो समाज का ही हिस्सा है। जैसे शरीर में अच्छे और बुरे दोनों अंग होते हैं, जिनसे सारी शारीरिक क्रियाएँ संचालित होती हैं, वैसे ही समाज में भी हर प्रकार के लोग होते हैं।

लेकिन शरीर और समाज की तुलना सीधी नहीं की जा सकती। समाज को जाति और सम्प्रदाय ने इस तरह बाँध रखा है कि उसमें ऊँच-नीच का भेद हर

स्तर पर मौजूद है। एक ओर धर्म के नाम पर सभी हिन्दू कहे जाते हैं, लेकिन भीतर ही भीतर समाज जातियों में बँटा हुआ है। एक जाति दूसरी जाति का छुआ तक नहीं खाती, न ही आपसी रिश्ते बनाती है।

इतना ही नहीं, हिन्दुओं के देवी-देवता भी जातियों में विभाजित हैं। जिस देवता को एक जाति पूजती है, दूसरी जाति उसे नकार देती है। यदि स्वीकार भी कर ले, तो उसकी पूजा एक साथ नहीं करती, न साथ में प्रसाद खाती है। शायद दिल से प्रणाम भी नहीं करती। कई बार देवताओं को भी जाति के आधार पर अछूत या शूद्र मान लिया जाता है।

यदि ये केवल सतही सवाल होते तो बात अलग थी, लेकिन यह भेदभाव तो समाज की गहराई तक फैला हुआ है। डर यही है कि कहीं ये छोटे-छोटे प्रश्न किसी बड़े सामाजिक विस्फोट का कारण न बन जाएँ। समाज के लोग इन मुद्दों के बीच ऐसे फँसे हैं कि इन्हीं को जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई मान बैठे हैं, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है।

इन विचारों के बावजूद सुबुध मुस्कराए और भजुआ से बोले- “तब तुम रामाकान्त काका के पास जाओ, मैं स्नान करके आता हूँ।”

भजुआ विदा हो गया। सुबुध मन ही मन सोचते रहे कि क्या किया जाए। भीतर तर्क-वितर्क चलता रहा और धीरे-धीरे उनका मन दृढ़ होने लगा। अंततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब तक ऐसी छोटी-छोटी बातों का कठोरता से पालन होता रहेगा, समाज कभी आगे नहीं बढ़ पाएगा। दरअसल, समाज के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण यही सामाजिक संकीर्णता है। इसलिए इसे जितनी जल्दी तोड़ा जाए, उतना ही अच्छा होगा।

यह विचार आते ही सुबुध स्नान के लिए चले गए। स्नान कर, वस्त्र धारण कर वे रामाकान्त के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचते-पहुँचते रामाकान्त, शशि शेखर और हीरानन्द स्नान करके वस्त्र पहन चुके थे और पूरी तरह तैयार थे। सुबुध के पहुँचते ही हीरानन्द बोले- “सुबुध भाई भी आ गए। अब अनावश्यक देर करना ठीक नहीं।”

सुबुध बैठ भी नहीं पाए थे कि सब चलने को तैयार हो गए। सबसे आगे रामाकान्त और पीछे-पीछे बाकी लोग। थोड़ी दूर चलने के बाद हीरानन्द ने भजुआ

से पूछा,

“भज्जु, किस-किस खेत में खेती हुई है?”

भजुआ ने थोड़े संकोच के साथ जवाब दिया- “भाई, हमारे पास बैल नहीं हैं। इसलिए जुताई नहीं हो पाई थी। लेकिन लड़कों ने ज़ोर देकर दस कुदालें खरीद लीं। सब लोग रोज़ सुबह-सवेरे खेत में लग जाते थे। पंद्रह दिन में सारे खेत तैयार कर लिए। बहुत अच्छा हुआ। अबकी बार फसल अच्छी हो गई तो बैल खरीद लेंगे।”

हीरानन्द ने फिर पूछा- “जब खेत मिल गए थे, तभी बैल क्यों नहीं खरीदे?”

भजुआ ने समझाते हुए कहा- “भाई, एक साथ सब काम कैसे करते? बैल खरीदते तो उन्हें बाँधते कहाँ? खिलाते क्या? अगर बैल खरीदने, घर बनाने और खाने का बंदोबस्त, ये सब काम एक साथ शुरू कर देते, तो कैसे संभाल पाते? इसलिए सोचा कि धीरे-धीरे, जैसे-जैसे साधन बनें, वैसे-वैसे करते चलें।”

हीरानन्द बोले- “बहुत अच्छा विचार है। सोच-समझकर किया है।”

बातों-बातों में वे सभी भजुआ के घर पहुँच गए। घर के सामने दो कट्ठा ज़मीन थी, जिस पर एक सुंदर मंडप टँगा हुआ था। एक ओर कुर्सियाँ सजाई गई थीं, दूसरी ओर शतरंजी, ज़ाजीम और तकिए बिछे थे। भजुआ का पूरा परिवार—पुरुष और महिलाएँ—स्नान कर नए वस्त्रों में सजे-धजे थे। जैसा स्वागत बारातियों के लिए होता है, वैसी ही पूरी व्यवस्था थी।

यह सब देखकर रामाकान्त, सुबुध, हीरानन्द और शशि शेखर चकित रह गए। किसी को यह विश्वास ही नहीं हुआ कि यह डोम का घर है। चारों कुर्सियों पर जाकर बैठ गए। बैठते ही भजुआ का एक बेटा शरबत लेकर आया। सबसे पहले रामाकान्त ने दो ग्लास शरबत पीकर डकार ली और बोले- “अब पान भी खिलाओ।”

शरबत बाँटा ही जा रहा था कि बीच में भजुआ की पोती चाय लेकर आ गई। शशि शेखर ने जल्दी-जल्दी शरबत खत्म किया। चाय स्टील के कप में थी, शुद्ध दूध से बनी, न ज्यादा मीठी, न फीकी। रंग उत्तम और ऊपर से कॉफी जैसी चमकती झाग। चाय पीते-पीते रामाकान्त को पेट भरने का एहसास हुआ। संतुष्ट

होकर उन्होंने कहा- “ये तीनों लोग कुर्सी पर बैठकर खाएँ, मैं तो बिस्तर पर लेट जाऊँ।”

कहते-कहते वे उठकर बिस्तर पर लेट गए। फिर पान आया, सबने पान खाया। मुँह में पान खत्म भी नहीं हुआ था कि भजुआ ने नाश्ता करने का आग्रह किया।

रामाकान्त बोले- “मैं बिस्तर पर ही खा लूँगा। इन्हें टेबल पर परोस दो, लेकिन थोड़ी देर बाद।”

भजुआ का पूरा परिवार जैसे सेवा में जुट गया था। चारों अतिथियों के आने के बाद से ही घर में एक नया उत्साह उमड़ पड़ा था। केवल पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी उल्लासित थीं। जो महिलाएँ हमेशा घर के झगड़ों में उलझी रहती थीं, उनके चेहरे पर भी आज हँसी चमक रही थी। सबके मन में यह विचार झलक रहा था कि मनुष्य ही इस दुनिया का सबसे बड़ा कर्ता-धर्ता है।

भजुआ की पोती, जो अपनी माँ के घर दरभंगा में रहकर पढ़ाई करती थी और हाई स्कूल में पढ़ रही थी, कामकाज और व्यवहार में खास सलीका दिखा रही थी। उसके संस्कार और ढंग देखकर सुबुध और हीरानन्द ने आँखों-आँखों में बात की। इशारे में सुबुध ने कहा- “अगर किसी को अच्छा वातावरण मिल जाए तो वह कुछ भी कर सकता है, चाहे उसका जन्म कितने ही पिछड़े परिवार में क्यों न हुआ हो।”

सुबुध की बात पर हीरानन्द बोले- “यह सब तो ढकोसला है जो लोग कहते हैं कि पिछले जन्म के कर्म का फल इस जन्म में मिलता है। हाँ, अगर इसे इस रूप में समझा जाए कि इसी जीवन के पहले चरण पर आगे की ज़िन्दगी निर्भर करती है, तब बात कुछ हद तक ठीक लगती है। देखो इस बच्ची को, भजुआ की पोती है, लेकिन बेहतर माहौल और परिवार में रहने के कारण कितनी व्यवहारिक और आत्मविश्वासी बन गई है। क्या किसी बड़े घर की बेटी से कम है?”

नाश्ते में चूड़ा, दही, चीनी, केला, अचार, दाल की सब्ज़ी और पाँच तरह की मिठाइयाँ परोसी गईं। चारों अतिथियों ने भरपेट भोजन किया। फिर सभी अपने-अपने ढंग से बैठकर बातें करने लगे। रामाकान्त ने हाथ धोकर बिस्तर

पकड़ लिया और ऊँघने लगे, जबकि सुबुध, हीरानन्द और शशि शेखर कुर्सियों पर ही बातचीत में जुटे रहे। उधर, भजुआ का पूरा परिवार भी नाश्ता कर सरियाती की तरह व्यवस्थित होकर बैठा था।

सुबुध ने पूछा- "जब इतने सदस्य हैं, तो मवेशी क्यों नहीं पालते?"

नए पीढ़ी के सदस्यों में झोलिया सबसे समझदार था। परिवार के लोग भी उसे ही अपना मार्गदर्शक मानते थे। सुबुध के सवाल का उत्तर देते हुए झोलिया बोला,

"मास्साब, अब तक हमारे परिवार में सिर्फ सूअर ही पाले जाते रहे हैं। लेकिन सूअर तो सिर्फ खाने का जानवर है, न उससे खेत जुतवाया जा सकता है, न दूध मिलता है, न गाड़ी खिंचाई जा सकती है। और जिन्हें रोटी तक नसीब नहीं होती, वे सूअर का मांस कहाँ से खाएँगे?

फिर भी, जब अपने पाले हुए जानवर होते हैं तो त्योहार-परब में कभी-कभी खा लेते हैं। चूंकि खाने वाले कम हैं, इसलिए नेपाल जाकर बेचते भी रहे हैं। नेपाल में यहाँ से ज़्यादा लोग सूअर का मांस खाते हैं। वहाँ इसे बकरी या खस्सी के मुकाबले अधिक गरम भोजन माना जाता है।

हमारे यहाँ का मौसम गरम है, जबकि सूअर का मांस ठंडी जगहों के लिए उपयुक्त होता है। फिर भी हम सूअर ही पालते रहे, क्योंकि अगर गाय-भैंस पालते तो हमारा दूध कौन खरीदता?"

झोलिया की बात सुनकर सुबुध ने पूछा- "तो अब वह भी दिखाई नहीं देता?"

झोलिया बोला- "पहले के ज़माने में गाँवों में सूअर खूब पाले जाते थे और उनका पालन भी आसान था। एक आदमी अकेले डेढ़-दो सौ सूअर पाल सकता था। सुबह थोड़ा-बहुत खिला-पिलाकर उन्हें खोवहारी से बाहर चराने ले जाते थे। घर पर कुछ ज़्यादा खिलाने की ज़रूरत नहीं होती थी। साल भर पालते और एक बार नेपाल जाकर बेच देते।

पिछले साल मेरे पिता और चाचा डेढ़ सौ सूअर लेकर नेपाल गए थे। वहाँ मंगलवार को हाट लगता है, जहाँ सबसे ज़्यादा सूअर बिकते हैं। बड़े-बड़े व्यापारी वहीं मिलते हैं। हमारे सूअर भी उसी हाट में थे। पिता एक ओर बैठे और चाचा

दूसरी ओर।

एक व्यापारी सात-आठ लोगों के साथ आया। दाम-भाव हुआ और सौदा तय हो गया। सभी सूअर गिनकर, व्यापारी का एक आदमी रुक गया, बाकी सूअर हाँककर ले गए। व्यापारी ने पिता और चाचा से कहा कि चलिए, पहले कुछ खा-पी लें, मुझे भी भूख लगी है। तीनों पास की एक दुकान पर चले गए और नाश्ता करने लगे।

नाश्ते में कुछ मिला हुआ था। खाते-खाते दोनों को नशा चढ़ गया। वे लड़खड़ाकर दुकान में ही गिर पड़े। इसके बाद क्या हुआ, उन्हें कुछ भी याद नहीं रहा।

अगली सुबह जब होश आया, तो न वह व्यापारी वहाँ था और न ही दुकान। क्योंकि वह दुकान तो केवल हाट के दिन ही लगती थी। दोनों भाई रोते-खीजते वहाँ से लौटे। साथ में न एक भी पैसा बचा, न कोई खाने की चीज़। भूख और थकावट से बेहाल दोनों किसी तरह डगमगाते हुए डगमारा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही दोनों बेहोश हो गए।"

डगमारा में हमारा एक कुटुंब रहता है। जब दोनों भाइयों की हालत देखी, तो वह अवाक रह गया। कुछ समझ ही नहीं पाया कि क्या करे। काफी देर बाद जब दोनों को होश आया, तो पहले पानी पिया। फिर थोड़ा-बहुत सुधार हुआ, तो नहाए। नहा-धोकर खाना खाया और खाकर सो गए। जब उठे तो तबीयत और भी ठीक लगने लगी। दो दिन वहीं रहे और तीसरे दिन गाँव लौट आए। उसी दिन से उन्होंने सूअर पालना छोड़ दिया।

आश्चर्यचकित होकर सुबुध ने पूछा- "तो क्या तुम्हारे घर में रुपया-पैसा नहीं है?"

झोलिया बोला- "थोड़ा-बहुत पैसा है। बाबा ने पिता को दिया था और कहा था कि जब मैं मरूँ, तब इस पैसे से भोज करना। ये रुपये कभी गिने नहीं गए। बाँस की नली में, सूअर के खोवहारी में रखे हैं।"

उत्साहित होकर रामाकान्त बोले- "लाओ, देखे तो सही कितना रुपया है।"

भजुआ बाँस की सातों नलियाँ खोवहारी से निकाल लाया और रामाकान्त

के सामने रख दीं। वे बाँस के खोखले टुकड़े थे, जिनके एक सिरे को मिट्टी से बंद किया गया था और दूसरे छोर में कपड़ा ठूँसकर ढक दिया गया था। जब कपड़ा निकाला गया, तो सातों नलियों से रुपये निकालकर ज़मीन पर उँड़ेल दिए गए।

रामाकान्त ने एक रुपया उठाकर गौर से देखा। वे चाँदी के असली सिक्के थे। रुपयों के ढेर पर सबकी नज़रें टिक गईं। रामाकान्त ने हीरानन्द से कहा- “मास्साब, ज़रा गिनिए तो।”

हीरानन्द कुर्सी से उठे और गिनने लगे। सातों नलियों से कुल सात सौ चाँदी के रुपये निकले।

यह देखकर सुबुध मन ही मन हिसाब लगाने लगे। एक चाँदी के रुपये की कीमत पचहत्तर रुपये मानें तो सौ रुपये से पचहत्तर सौ बनते हैं। सात सौ रुपये से बावन हज़ार पाँच सौ रुपये होंगे।

अगर एक जोड़ी बैल खरीदी जाए तो पाँच हज़ार में हो जाएगा। एक बोरिंग-पंप लगेगा तो पंद्रह हज़ार में बन सकता है। तीसरे दर्जे की ईंटें लेकर, गारे से जोड़कर और ऊपर एस्बेस्टस की छत डालकर सात कमरों का एक घर बनवाया जा सकता है, लगभग पच्चीस से तीस हज़ार में।

परिवार के लोग मेहनत करते ही हैं और सात बीघा खेत की उपज भी मिलेगी। साल भर में यह एक आत्मनिर्भर किसान-परिवार बन सकता है। जबकि पूँजी तो पहले से मौजूद है। सारे संकट सुलझाए जा सकते हैं।

यह सोचते हुए सुबुध के मन में एक विचित्र स्थिति पैदा हो गई। एक ओर यह परिवार संपन्न प्रतीत होता है, और दूसरी ओर न तो रहने लायक ढंग का घर है, न भोजन-पानी की समुचित व्यवस्था।

फिर भी, सुबुध ने भजुआ के परिवार में एक विशेषता अवश्य देखी। गाँव के अन्य डोम परिवारों की तरह इस परिवार में न ताड़ी पीने की आदत है, न शराब की। केवल एक चीज़ की कमी है, सही समझ और सही मार्गदर्शन।

गहरी साँस छोड़ते हुए सुबुध ने भजुआ और उसके परिवार के सभी सदस्यों से कहा- “भजु भैया, हम सब चाहते हैं कि समाज हँसता-खिलखिलाता दिखाई दे, रोता नहीं। इसलिए हम कभी किसी के नुकसान की बात सोचते ही नहीं। हमारा मकसद है कि सबका भला हो, हर परिवार खुशी-खुशी जीवन

बिताए। हर बेटे-बेटी को पढ़ाई-लिखाई का अवसर मिले और रहने के लिए अच्छा घर हो। दवा के अभाव में किसी की जान न जाए।

इसीलिए मैं कहूँगा कि इस पैसे को सही दिशा में खर्च करो। वैसे, बाबू ने श्राद्ध-भोज के लिए कहा था, तो उसका भी थोड़ा-बहुत कर लेना चाहिए। लेकिन जब इतने दिन टाल ही दिए हैं, तो कुछ दिन और टाल सकते हो। पहले घर बनवाओ, बैल लो और खेत के लिए बोरिंग गराओ। जब खेत उपज देने लगेगा, तब आराम से भोज भी कर लेना।”

सुबुध की बात का समर्थन करते हुए रामाकान्त बोले- “भज्जु, सुबुध ने बहुत अच्छा सुझाव दिया है। जीवन को समझो, यही असली जीवन है। और देखो कि इसे कैसे सँवारा जाए। जब तक यह नहीं सीखोगे, तब तक ऐसे ही उलझे रहोगे।”

भजुआ चुप रहे, लेकिन झोलिया तुरंत बोल पड़ा- “बाबा जो कह गए, उसे हमने गाँठ बाँध लिया है। आप लोग हमें छोटा भाई मानिए। जब तक हमारा परिवार रहेगा, जब तक हम रहेंगे, तब तक हम आपके साथ-साथ चलते रहेंगे।”

झोलिया के विचार सुनकर हीरानन्द प्रसन्न होकर झूम उठे। हँसते हुए बोले- “भज्जु भैया, अब आप बूढ़े हो गए हैं, इसलिए आपकी नज़र नई दिशा की ओर नहीं जाती। लेकिन बेटे-भतीजे सभी जवान हैं, उन्हें नए कामों की ओर बढ़ने दीजिए। जब तक लोग समय के अनुसार कदम नहीं बढ़ाते, तब तक समय के साथ चलना संभव नहीं। फिर समय बाढ़ के पानी की तरह आगे बढ़ता जाएगा और लोग पेड़-पौधों की तरह कटकर किनारे होते जाएँगे। इसलिए समय को थामकर चलने की कोशिश करनी चाहिए।

अब तो आप सब भाइयों के पास मिलाकर सात बीघा खेत है। इतना खेत अच्छा गृहस्थ बनाने के लिए पर्याप्त है, बशर्ते खेती के सारे साधन जुटाए जाएँ। पानी के बिना फसल नहीं होगी और बैल के बिना खेत नहीं जोते जाएँगे। खेत का महत्व तभी है जब उसकी उपज के सारे साधन मौजूद हों। आपके पास बहुत सारा रुपया है। इस रुपया का उपयोग जीवन को सँवारने में होना चाहिए।”

गपशप चल ही रही थी कि हाँफते-फुफकारते डॉक्टर महेन्द्र और बौएलाल आ पहुँचे।

रामाकान्त महंथ की तरह पलंग पर तकिए के सहारे लेटे हुए थे। महेन्द्र को देखकर सब चकित रह गए। वह और बौएलाल सीधे रामाकान्त के पास गए और उनके चरणों में झुक गए।

रामाकान्त ने आशीर्वाद देते हुए कहा- "यहाँ क्यों आए? थोड़ी देर में तो हम सब वहीं आ रहे थे। गाड़ी से थक गए होगे। पहले नहाओ, खाओ और आराम करो। क्या मैं कहीं और पड़ा था कि तुमसे भेंट नहीं हो सकती थी?"

डॉक्टर महेन्द्र चुपचाप अपने पिता को देख रहे थे। उन्हें देखकर मन ही मन पछताने लगे कि जो खबर उन्हें दी गई थी, वह ग़लत निकली। फिर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा।

इस बीच भजुआ ने इशारे से झोलिया से कहा- "बेटा, पहले दोनों को खाना खिलाओ।"

महेन्द्र और बौएलाल को भोजन कराने की ज़िम्मेदारी झोलिया ने सँभाली। ओरियान तो पहले से तैयार था। परोसकर दोनों अतिथियों को भोजन कराया गया। भोजन के बाद दोनों घर की ओर विदा हुए।

पीछे से कुशेसरी ने महेन्द्र को पुकारा- "चाचाजी, पान-सुपारी ले लीजिए।"

कुशेसरी के आग्रह पर दोनों अतिथि रुक गए। वह तश्तरी में पान-सुपारी लेकर आ गई। पास आकर उसने पान अपने हाथ से न देकर तश्तरी ही महेन्द्र के सामने बढ़ा दी।

पान-सुपारी देखकर महेन्द्र मुस्कराते हुए बोले- "बुच्ची, मैं तो पान नहीं खाता। अगर घर में इलायची और सिगरेट हो, तो ले आओ।"

कुशेसरी तुरंत आँगन गई और थोड़ी देर बाद सिगरेट का पैकेट, माचिस और इलायची लेकर लौटी। महेन्द्र ने उत्तर दिशा की ओर मुँह करके छिपते हुए सिगरेट जला ली, ताकि पिता न देख लें। फिर दोनों अतिथि बातें करते हुए विदा हो गए।

कुशेसरी को देखकर महेन्द्र अचम्भित नहीं हुए। क्योंकि जो लड़की मिथिला के गाँव में असाधारण मानी जाती, वह मद्रास में बिल्कुल सामान्य लगती।

दरअसल, महेन्द्र को गाँव से एक गुमनाम पत्र मिला था। उसमें लिखा था- “आपके पिताजी पागल हो गए हैं। गाँव में उल्टा-सीधा काम कर रहे हैं। अगर समय रहते इलाज नहीं करवाया गया, तो वे पूरी तरह पागल हो जाएँगे।”

पत्र पढ़ते ही महेन्द्र ने गाँव आने का निश्चय किया। उन्होंने अपने भाई रविन्द्र से विचार-विमर्श करना जरूरी समझा और एक दिन रुक गए। अगले दिन महेन्द्र, उनकी भावों सुजाता, बौएलाल और सुमित्रा, चारों लोग गाड़ी पकड़कर गाँव के लिए रवाना हो गए।

गाँव पहुँचते ही जब महेन्द्र ने अपने पिताजी को नहीं देखा, तो मन ही मन और अधिक सशंकित हो उठे। उन्होंने माँ से सिर्फ इतना पूछा- “पिताजी कहाँ हैं?”

माँ ने उन्हें सब कुछ बता दिया। अटैची रखकर महेन्द्र, बौएलाल के साथ सीधे भजुआ के घर चले गए। डॉक्टर सुजाता घर पर ही रहीं। गाँव की परंपरा समझाते हुए सास ने उन्हें बाहर जाने से मना कर दिया।

चार बज चुके थे। न रामाकान्त को और न ही किसी अन्य अतिथि को खाने की इच्छा थी। हालांकि खाना तैयार था, लेकिन जितनी देर होती, भोजन उतना ही बेस्वाद होता जाता। भजुआ चाहता था कि सब गरम-गरम भोजन कर लें, लेकिन भूख न होने के कारण चारों अतिथि टालमटोल करने लगे।

असमंजस में भजुआ ने रामाकान्त से कहा- “काका, भोजन तैयार है। जितना मन मानें, वही खा लीजिए।”

रामाकान्त डकार लेते हुए बोले- “नाश्ते में इतना खा लिया है कि अब पेट में ज़रा भी जगह नहीं बची। अभी तक मन भारी लग रहा है। हाँ, चलो, मुँह ही छू लेते हैं।”

भजुआ बोला- “जितना मन करें, उतना खा लीजिए।”

चारों अतिथि उठकर आँगन में आ गए। पूरा आँगन ताज़ी मिट्टी से लीपा गया था। मिट्टी की सोंधी महक से वातावरण सुगंधित हो रहा था। आँगन आकार में छोटा था, लेकिन लोगों की उपस्थिति से वह बड़ा और भरा-पूरा लग रहा था। चौकोर कम्बल बिछाए गए थे। थाली, लोटा, कटोरी और ग्लास सभी चमक रहे थे, जैसे अभी-अभी खरीदे गए हों।

भोजन की साज-सज्जा देखकर रामाकान्त भाव-विभोर हो उठे। क्या पवित्रता, क्या सत्कार! मन ही मन सोचने लगे- “अगर अच्छी भूख लगी होती, तो जी भरकर खा लेते।”

लेकिन भूख न होने के कारण खाने का मन नहीं हो रहा था।

भोजन के बाद चारों अतिथि विदा होने लगे। विदा से पहले झोलिया एक रंगीन चँगेराम (बाँस की टोकरी) में चार जोड़ी धोती लेकर आया और चारों अतिथियों के सामने रख दी।

धोती देखकर रामाकान्त बोले- “झोली, तुम लोग गरीब हो। इन्हें अपने लिए रख लो। तुमने हमें पहनाया, वही बहुत है।” ❑

13.

डॉ. महेंद्र मद्रास में रोज़ सुबह चार बजे उठ जाते थे और तुरंत अपने काम में लग जाते थे, लेकिन गाँव में पाँच बजे तक भी उन्हें गहरी नींद घेरे रही। ऐसा क्यों हुआ?

सुबह जब रामाकान्त महेंद्र के कमरे में गए, तो देखा कि वह गहरी नींद में खर्राटे मार रहे हैं। उन्होंने उन्हें जगाया नहीं, बस मन ही मन मुस्कुराते हुए सोचा कि बाप के घर में बेटा कितना निश्चिंत होकर रह रहा है। फिर लोटा लेकर स्नान के लिए निकल पड़े।

सुबह के छह बजे महेंद्र की नींद खुली। जागते ही उनके मन में सवाल कौंधा कि इतनी गहरी नींद क्यों आई। क्या यह मिथिला की मिट्टी, पानी और हवा का असर है, या फिर काम की कमी का परिणाम। वे इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे कि तभी जुगेसर चाय लेकर आ पहुँचे।

उधर रामाकान्त टहलते हुए दिशा-मैदान होते हुए टोले की ओर निकल गए। टोले में प्रवेश करते ही रास्ते के किनारे चापाकल पर मुँह-हाथ धोने लगे।

चापाकल के पास ही मंगल का घर था। रामाकान्त को देखते ही मंगल चुपचाप आँगन से बेंत की कुर्सी और टेबल निकालकर डेढ़ी पर सजा दिया। मुँह-हाथ धोकर जब रामाकान्त घर लौटने लगे तो रास्ता काटते देख मंगल ने आवाज़ दी- “काका, ज़रा एक पल मेरे यहाँ बैठ जाइए।”

रामाकान्त ने मुस्कुरा कर उसकी बात मान ली और कुर्सी पर बैठ गए। बैठते ही बोले- “बहुत सुंदर कुर्सी है। कब बनवाई?”

मंगल ने कहा- “आठ दिन पहले छोटा दिल्ली से आया था। वही लाया।”

उधर मंगल का बेटा रबिया आँगन में चाय बना रहा था। चाय तैयार करके उसने तश्तरी में बिस्कुट, नमकीन भुजिया और चाय का ग्लास सजा कर रामाकान्त के सामने टेबल पर रख दिया। फिर उनके पैर छूकर बोला- “बाबा,

ज़रा चाय पी लीजिए।"

रबिया की बात सुनकर रामाकान्त सोचने लगे कि यही तो मंगल है जो आँधी में घर उजड़ जाने के बाद रिश्तेदारों के यहाँ रहने को मजबूर हो गया था। सात दिन तक वह हमारे ही घर में रहा था। लेकिन अब देखिए, कितना सुंदर घर बना लिया है और कितनी अच्छी कुर्सी-टेबल रख ली है। वाह।

रामाकान्त मुस्कुराकर पूछते हैं- "बेटा कहाँ नौकरी करता है, मंगल?"

मंगल जवाब देता है- "दिल्ली में, काका। बहुत अच्छे से रहता है।"

रामाकान्त भुजिया-बिस्कुट खाते, पानी और चाय पीते रहे। तभी रबिया आँगन से एक जर्मन बना पॉकेट रेडियो लेकर आया और रामाकान्त के सामने रखकर बोला- "बाबा, यह आपके लिए ही लाया हूँ।"

रेडियो देखकर रामाकान्त बोले- "ऐसे शौक अब इस बुढ़ापे में मैं क्या करूँगा। तुम लोग जवान हो, तुम्हें शोभा देता है। मैं इसका क्या करूँगा।"

रबिया ने दाहिने हाथ से रेडियो और बाएँ हाथ से रामाकान्त की कलाई पकड़कर कहा- "बाबा, यह हमने आपके लिए ही खरीदा है।"

रामाकान्त चाय पीकर कुर्सी से उठे और घर की ओर चल पड़े। आगे-आगे रामाकान्त और पीछे-पीछे मंगल, हाथ में रेडियो लिए, घर तक पहुँचा।

सूरज एक बाँस ऊपर चढ़ आया था। महेंद्र दलान के ओसारे पर बैठे ब्रश कर रहे थे। तभी पाँच-सात बच्चे सिर पर टोकरी और हाथ में लोटा लिए वहाँ पहुँचे।

डॉ. महेंद्र ब्रश करते हुए उन्हें चुपचाप देख रहे थे।

टोकरी-लोटा ओसारे पर रखकर एक बच्ची महेंद्र के पास आकर बोली- "बाबा कहाँ हैं?"

बच्ची के इस प्रश्न का उत्तर महेंद्र नहीं दे पाए, क्योंकि वे उसका आशय समझ नहीं सके। उन्होंने सबकी टोकरी और लोटे को ध्यान से देखना शुरू किया। किसी टोकरी में गोभी थी, किसी में टमाटर, किसी में करेला, और किसी में भिंडी। लोटों में दूध भी था।

यह सब देखकर महेंद्र सोच में पड़ गए कि आखिर यह क्या हो रहा है। ये

सब क्यों लाए गए हैं?

मन उलझन में था। कुछ देर बाद उन्होंने पूछा- “बच्चो, यह सब क्यों लाए हो?”

एक छोटी बच्ची बोली- “बाबा ने अपनी सारी ज़मीन हमें दे दी है। अपने लिए कुछ नहीं रखा, तो खाएँगे क्या? इसलिए...।”

बच्ची की बात सुनकर महेंद्र अवाक रह गए। वे सोचने लगे कि मैं उनका बेटा हूँ, उनकी चिंता मुझे करनी चाहिए थी।

सही ही कहा गया है, जैसा करोगे वैसा पाओगे।

महेंद्र ने मुँह पर हाथ रखा और मन ही मन सोचा कि लोग यूँ ही इस दुनिया में किसी को अपना और किसी को पराया मानते हैं। जिसके लिए आप कुछ करेंगे, वह भी आपके लिए कुछ करेगा, चाहे वह अपना हो या पराया।

इसी सोच में डूबे थे कि तभी उन्होंने पिता को आते देखा। उन्हें देखकर महेंद्र चुपचाप उठे और कमरे की ओर बढ़ गए।

रामाकान्त पर नज़र पड़ते ही सभी बच्चियाँ ओसारे से उठकर उनके चरण छूने के लिए आगे बढ़ीं। उनकी नज़र लोटे में रखे दूध और टोकरी में रखी सब्ज़ियों पर गई। सब सामान देखकर वे बोले- “बच्चों, इतना सब क्यों ले आए? खैर, अब जब ले ही आए हो तो आँगन में रख आओ।”

सभी बच्चियाँ अपनी-अपनी टोकरी और लोटा लेकर आँगन में रख आईं।

इधर, डॉ. महेंद्र के गाँव आने की खबर पूरे टोले में फैल गई। अचानक लोग पहुँचने लगे और अपने-अपने रोगों का इलाज कराने की इच्छा जताने लगे। लेकिन महेंद्र तो विशेष तैयारी के साथ नहीं आए थे। उनके पास न तो जाँच के उपकरण थे, न ही दवाइयाँ। फिर भी उन्होंने जुगेसर से कहा कि बोएलाल और सुमित्रा को बुला लाए।

जुगेसर बोएलाल को बुलाने गया। जितने जाँच यंत्र और सामान्य शल्य-चिकित्सा के औजार बोएलाल और सुमित्रा ने अब तक खरीद रखे थे, वे सब लेकर दोनों वहाँ पहुँचे। बोएलाल महेंद्र के पास बैठ गया और सुमित्रा, सुजाता के साथ दरवाज़े के पीछे वाले ओसारे पर जा बैठी। स्त्रियाँ सुजाता के पास जाँच

कराने लगीं और पुरुष महेंद्र के पास।

महेंद्र ने चार-पाँच मरीजों की जाँच की ही थी कि तभी चार-पाँच और रोगियों को खाट पर लादकर लाया गया। वे दूसरे गाँव के थे। खाट देखकर महेंद्र को आशंका हुई कि कहीं हैजा जैसी कोई महामारी तो नहीं फैल गई है। वे और बोएलाल ओसारे से उठकर नीचे आ खड़े हुए।

खाट लेकर लोग पास आ गए। सब रो-चिल्ला रहे थे। किसी का सिर फटा था, किसी का हाथ टूटा था, तो किसी के शरीर पर मारपीट की वजह से सूजन थी।

महेंद्र के पास दवाइयाँ नहीं थीं। उन्होंने फौरन बोएलाल से कहा कि ड्रेसिंग-प्लास्टर का सामान और ज़रूरी दवाइयों की पर्ची बना कर तुरंत बाजार से ले आए। बोएलाल साइकिल लेकर तेज़ी से निकल गया।

रामाकान्त रोगियों के पास जाकर एक खाट उठाने वाले से पूछने लगे- "सिर कैसे फटा?"

डरते हुए उसने जवाब दिया- "मारपीट में सिर फटा।"

यह सुनकर रामाकान्त ने महेंद्र से कहा- "बेटा, सबका इलाज अच्छे से कर देना।"

इतना कहकर वे ओसारे पर बिछे बिछावन पर बैठ गए और खाट उठाने वालों को भी पास बुलाकर पूछा- "मारपीट कब हुई थी?"

"खाने-पीने की रात में।"

"तो क्या खाना-पीना नहीं हुआ?"

"नहीं।"

उन्हें भूखा जानकर रामाकान्त ने जुगेसर से कहा- "पहले सबको खाना खिलाओ।"

पंद्रह-बीस लोगों का जलपान घर में तैयार नहीं था। जुगेसर ने सुमित्रा को आवाज़ देकर कहा- "बिटिया, काकी तो बूढ़ी हैं और बहू अनभिज्ञ है। तुम ही बड़ा बर्तन चढ़ाकर खिचड़ी बना दो। बेचारे सब रात से भूखे हैं। हम लोग सामग्री जुटा देते हैं।"

जैसा जुगेसर ने कहा, सुमित्रा तुरंत रसोई में लग गई। सुजाता भी बीच-बीच में आकर देखती रहीं।

उधर, बोएलाल तेजी से साइकिल हाँककर बाज़ार गया और थोड़ी ही देर में सारा सामान खरीदकर लौट आया। आते ही महेंद्र और बोएलाल ने रोगियों को दर्द की सुई दी। सुई लगते ही थोड़ी देर में कराहना बंद हो गया।

खिचड़ी और आलू का चोखा बनाकर सुजाता और सुमित्रा रोगियों के पास ले आईं। सबको खाना खिलाया गया। पेट भरते ही सबका मन कुछ शांत हुआ। फिर फटे हुए कपड़े बदले गए और इलाज शुरू हुआ।

तीन लोगों के सिर फटे थे और दो के हाथ टूटे थे। सुजाता और सुमित्रा प्लास्टर लगाने में जुट गईं। महेंद्र सिर पर टांके लगाने लगे। बोएलाल दौड़धूप में व्यस्त था, कभी कुछ ला रहा था, कभी कुछ बाँट रहा था।

करीब दो घंटे बाद सभी की हालत कुछ सँभल गई। तब रामाकान्त ने पूछा- “मारपीट क्यों हुई थी?”

आँसू पोंछते हुए जोखन कहने लगा- “मकशूदन की बेटी सितिया सब्ज़ी बेचने हाट गई थी। उसकी उम्र सत्रह-अठारह साल रही होगी। लंबा कद, गठीला शरीर, भोला चेहरा और गोल आँखें। आमतौर पर हाट पर उसकी माँ जाती है, लेकिन पाँच-सात दिन से वह बीमार है।

सितिया ने डेढ़ कट्ठा खेत में बैंगन लगया था। फसल अच्छी आई थी। उसने बड़े भाँटे चुनकर एक गठरी बाँधी। सब्ज़ी बेचकर माँ के लिए दवा खरीदना ज़रूरी था। दवा की पर्ची उसने अपनी साड़ी के खूट में बाँध ली, ताकि लौटते समय दवा खरीद सके।

हाट में बैंगन बेचकर और दवा लेकर जब वह अकेली लौट रही थी, तब तक साँझ ढल चुकी थी। पूरी तरह अंधेरा नहीं था, लेकिन धुँधलका छा गया था। रास्ता सुनसान होता जा रहा था। हाट जाने वाले लोग लौट चुके थे। लौटने वाले अब इक्का-दुक्का ही रह गए थे।

उसी समय लालबा और उसका नौकर गुलेतिया पीछे से साइकिल पर आ रहे थे। लालबा अपने पिता का इकलौता बेटा है और बीस-पच्चीस बीघा ज़मीन का मालिक है। बचपन से ही उच्छृंखल और बदतमीज़ रहा है। दोनों शराब

पीकर बकवास करते हुए घर लौट रहे थे।

जब वे सितिया के पास पहुँचे तो लालबा बोला- "गुलेती, शिकार फँस गया।"

लालबा की बात सुनकर सितिया चुप रही, लेकिन भीतर उसका गुस्सा भड़क उठा। उसने कदम तेज़ कर दिए। लालबा साइकिल से उतरा, रास्ता रोककर साइकिल खड़ी की और जेब से सिगरेट और माचिस निकालकर पीने लगा। सितिया को शक तो हुआ, लेकिन वह डरी नहीं। वह साइकिल के पास आई और किनारे से आगे निकल गई।

लालबा और गुलेतिया भी आगे खड़े होकर सिगरेट पीते रहे और अश्लील बातें करते हुए आगे बढ़ते गए। लालबा ने सिगरेट मुँह में दबाए हुए जेब से पचास रुपये का नोट निकाला और सितिया की ओर बढ़ाया। रुपये देखकर उसका शरीर गुस्से से काँप उठा, पर उसने कुछ कहा नहीं और चलती रही। लालबा फिर पीछे से नोट लेकर उसके पास आया।

दोनों को पीछे आते देखकर सितिया रुक गई। उसने सिर पर रखी टोकरी कसकर पकड़ी और मन ही मन तय कर लिया कि जरूरत पड़ी तो उसी टोकरी से दोनों को मार देगी।

तभी लालबा ने फिर नोट उसकी तरफ बढ़ाया। मौके का फायदा उठाकर सितिया ने उस नोट पर थूका। थूक नोट से ज्यादा लालबा के चेहरे पर पड़ा।

चेहरे पर थूक पड़ते ही लालबा ने उसका हाथ पकड़कर खींचना चाहा, लेकिन सितिया पहले से तैयार थी। उसने टोकरी सँभालते हुए जोर से दो वार लालबा पर कर दिए। दोनों ने उसकी बाँहें पकड़कर खींचा। टोकरी गिर गई और सितिया रास्ते से लुढ़ककर खेत में जा गिरी।

गिरते ही वह उठ खड़ी हुई। दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर मुक्कों और पैरों से लगातार प्रहार करने लगी। मार के डर से गुलेतिया किनारे हट गया, पर लालबा नहीं माना। वह भी मुक्के चलाने लगा।

गुलेतिया को भागते देख सितिया का जोश और बढ़ गया। शराब के नशे में लालबा लड़खड़ाकर गिर पड़ा। जैसे ही वह गिरा, सितिया उस पर टूट पड़ी और लगातार मारती रही।

उसी समय सब्ज़ी बेचने वाली औरतें वहाँ से लौट रही थीं। उनकी आहट से सितिया का हौसला और बढ़ गया। इज्ज़त बचाने का सवाल था। उसके भीतर जैसे बाघिन की ताकत आ गई हो। उसने लालबा को मारते-मारते बेहोश कर दिया।

इसी बीच औरतें पास आ पहुँचीं। सितिया को इस रूप में देखकर हसीना ने पूछा- “बहन, क्या हुआ?”

सितिया ने कहा- “अभी कुछ मत पूछो। इस दुष्ट का खून पिए बिना नहीं छोड़ूँगी।”

वह बोलती भी जा रही थी और लगातार वार भी करती जा रही थी। चार औरतों ने मिलकर किसी तरह उसे पकड़ा और किनारे खींचा, लेकिन हसीना, जुलेखा, रेहना और खातून भी उसे रोक नहीं सकीं। सितिया उन्हें झटककर फिर लालबा पर टूट पड़ी और उसे लात घूँसों से मारने लगी।

आखिरकार चारों ने मिलकर उसे काबू में किया और गाँव की ओर खींचा। लेकिन सरहद पर पहुँचते ही सितिया ने फिर खुद को छुड़ा लिया और लालबा की तरफ दौड़ पड़ी।

रेहना और खातून दौड़कर उसके आगे खड़ी हो गईं। हसीना और जुलेखा ने पीछे से पकड़ लिया। सितिया का मन क्रोध से उबल रहा था। उसके मन में बस एक ही बात थी कि लालबा को छोड़े बिना वह नहीं रुकेगी, चाहे इसके लिए जान ही क्यों न चली जाए। चारों ने मिलकर उसे सँभाला और घर पहुँचा दिया।

पूरे गाँव में यह घटना आँधी की तरह फैल गई। हर ओर हलचल मच गई और तनाव का माहौल बन गया। रात बढ़ती गई और गाँव के बूढ़े से लेकर नौजवान तक सब इकट्ठा हो गए।

इसी बीच चारों औरतें लालबा को भी खाट पर लिटाकर ले आईं। उसकी बेहोशी टूटी, पर वह बड़बड़ाता रहा। लालबा के चचेरे भाई ने डॉक्टर बुलाया और इलाज शुरू हुआ। डॉक्टर ने उसे सलाईन चढ़ाया और उसके पास बैठकर नाड़ी और पानी की गति देखते रहे।

तभी लालबा के चाचा ने गाँव के लोगों को लाठी उठाने के लिए उकसाना शुरू किया। जितने भी ताकतवर और प्रभावशाली लोग थे, वे लालबा के पक्ष में

इकट्ठा हो गए। अपने पक्ष की यह ताकत देखकर लालबा के पिता ने कहा- "जब इज्जत चली गई तो संपत्ति रखकर क्या होगा।"

'दुर्गा महरानी की जय' के नारे लगाते हुए पंद्रह-बीस गाँव के हुड़दंगी लाठी लेकर सितिया के घर की तरफ बढ़े। रास्ते में लगातार जयकार होती रही।

मकशूदन का टोला केवल बारह परिवारों का था। गरीब लोगों का टोला था, इसलिए सभी कमजोर माने जाते थे। फिर भी जितने पुरुष थे, सबने लाठी उठाई और ठाना कि इज्जत के लिए मर जाना धर्म है। जो होगा देखा जाएगा, पीछे हटना नहीं।

दूसरी ओर, टोले की महिलाएँ भी तैयार हो गईं। उन्होंने तय किया कि जब तक पुरुष खड़े रहेंगे, वे उनके साथ रहेंगी। लेकिन अगर पुरुष गिर पड़े, तो वे भी लाठी उठाएँगी।

सितिया का मन पहले ही आग की तरह जल रहा था। यह सुनकर वह और भड़क उठी। उसने पुकारा- "सभी जवान बेटियाँ और बहुएँ अपनी साड़ी कसकर बाँध लें और माथे पर पगड़ी की तरह लपेट लें, ताकि सिर न फूटे। बूढ़ियों को छोड़ दो। जो मरुआ बीआ उघने वाली पटइ घर में हो, उन्हें निकाल कर एक जगह सुरक्षित रखो। अब देखना कि आगे क्या होता है। जैसे सब बहनें मिलकर मरेंगी, वैसे ही साथ-साथ फिर जन्म लेंगी।"

टोले के छोटे बच्चों को बूढ़े-बुज़ुर्ग बगीचे की ओर ले गए ताकि वे सुरक्षित रहें। उसी बीच हँसेरी टोले के लोग नजदीक आ पहुँचे और ललकारने लगे। यह सुनकर सितिया का मन हुआ कि वह अकेली जाकर उन्हें रोके, लेकिन उसने खुद को रोका, क्योंकि लड़ाई में अनुशासन ज़रूरी होता है।

टोले के लोग पूरी ताकत से हँसेरी को रोकने लगे। दोनों ओर से लाठियाँ चलने लगीं। पाँच लोग घायल हो गए, लेकिन हँसेरी नहीं रुके। वे धन और इज़्ज़त लूटने की मंशा से लगातार आगे बढ़ते रहे।

अपने लोगों को कमजोर पड़ता और हँसेरी को बढ़ते देख, सिर पर पगड़ी बाँधे सितिया सामने आ गई। उसके पीछे टोले की सभी महिलाएँ पटइ लेकर खड़ी हो गईं। सितिया बिजली की तरह चमकी। सचमुच, मिथिला सिर्फ कर्मभूमि और धर्मभूमि ही नहीं, वीरभूमि भी है। अकेली सितिया ने चार आदमियों को

धराशायी कर दिया। चारों गिर पड़े और खून बहने लगा। हँसेरी टोले में अफरा-तफरी मच गई। सब भाग खड़े हुए। थोड़ी दूरी तक झगड़ा चलता रहा।

दोनों ओर के लोग अपने-अपने घायल साथियों को उठाने लगे, लेकिन हँसेरी वाले डर से तुरंत पास नहीं आ सके। उन्हें आशंका थी कि कहीं हम भी जाएँ और वैसा ही हाल हमारा भी हो जाए। देर रात वे चुपचाप लौटे और अपने घायल साथियों को उठाकर ले गए।

गाँव में केवल दो डॉक्टर थे, वे भी डिग्रीधारी नहीं, बल्कि देहाती प्रैक्टिशनर। दोनों उसी रात लालबा के घर में ही रह गए। बाहर निकलना संभव नहीं था। दोबारा हमले का डर भी था।

हालात तनावपूर्ण थे, लेकिन घायल होने के बावजूद किसी के चेहरे पर मलाल नहीं था। सबके मन में एक गहरा संतोष था, जिससे दर्द भी सह लिया गया।

टोले की स्त्रियों ने पानी गरम किया, घावों पर सिंदूर लगाकर पट्टी बाँधी और खून रोक दिया। पूरी रात किसी ने आँख नहीं लगाई।

सुबह जब डॉक्टर महेंद्र को यह सब पता चला, तो वे गाँव पहुँचे।

जोखन की बात सुनकर रामाकान्त उछल पड़े। खड़े होकर ज़ोर से बोले-"अगर कोई अपनी इज़्ज़त और आबरू बचाने के लिए मुझे पुकारेगा, तो मैं अपनी सारी संपत्ति दाँव पर लगा दूँगा, पर छोड़ूँगा नहीं। बेटा, जितनी तुम्हें हूनर मिली है, उसमें कोई कोताही मत करना। खाने-पीने, दवा-दारू की जो भी मदद होगी, मैं करूँगा।

हम फिर से इस धरती पर जन्म लेंगे? यह कर्मभूमि है। मनुष्य यहाँ कुछ करने के लिए आता है, केवल अपने लिए नहीं, बल्कि उन लोगों के लिए भी, जो कर्मनिष्ठ हैं। जहाँ तक हो सके, उनकी मदद करते रहना।

जोखन, जो हो चुका सो हो चुका, पर सुन लो, जब कभी कोई संघर्ष हो, मुझे एक बार अवश्य बुलाना। जब तक इस शरीर में प्राण है, मैं ज़रूर मदद करूँगा।"

कुछ देर बाद चार बच्चियाँ अपने-अपने घर के आदमियों के साथ खाने का सामान लेकर पहुँचीं। एक कठौत में भात था, बड़े बाल्टी में दाल, छोटे बाल्टी

में तरकारी, साथ में खाने के लिए केले के पत्ते और दो लोटे भी थे।

उन्हें देखकर रामाकान्त ने पूछा- “बेटियों, खाना क्यों लाई हो?”

रामाकान्त की बात सुनकर सितिया बोली- “बाबा, हमें नहीं पता था, इसलिए ले आईं।”

“अच्छा, जब ले ही आई हो तो सबको पूछ लो कि खाएँगे या लौट जाएँगे।”

रामाकान्त और सितिया बातें कर ही रहे थे कि बीच में जोखन बोल पड़ा- “काका, यही बच्चियाँ उस पार्टी को मारकर भगा दीं।”

चौंकते हुए रामाकान्त बोले- “अरे! ये ही हैं? वाह! तुम जैसी बेटियाँ ही इस धरती का मान रख सकती हैं।”

जोखन की यह बात बिजली की तरह रामाकान्त के दरवाज़े और आँगन से निकलकर पूरे गाँव में फैल गई, कि सितिया ने मर्दों की दूसरी टोली को पीटकर भगा दिया, उनके सिर फोड़ डाले और गाँव की सीमा तक खदेड़ दिया।

समाचार सुनते ही गाँव की स्त्रियाँ और पुरुष उमड़कर उन बच्चियों को देखने आने लगे। एक अजीब और गौरवपूर्ण दृश्य बन गया।

श्यामा ने आँगन से सुमित्रा के हाथ संदेश भिजवाया कि उन बच्चियों को आँगन में भेज दीजिए ताकि हम भी उन्हें देख सकें।

दरवाज़े पर आकर सुमित्रा ने रामाकान्त से कहा। आँगन का संदेश सुनकर रामाकान्त ने चारों बच्चियों से कहा- “बेटियों, ज़रा आँगन चली जाओ।”

चारों बच्चियाँ सुमित्रा के साथ आँगन की ओर रवाना हुईं। ओसारे पर बिछी चटाई पर श्यामा और सुजाता बैठी थीं। आगे-आगे सुमित्रा और पीछे-पीछे चारों बच्चियाँ आ पहुँचीं।

चारों बच्चियों ने श्यामा और डॉक्टर सुजाता के चरण स्पर्श किए। अचानक गाँव की स्त्रियाँ और बेटियाँ भी आँगन में जाकर सितिया और उसकी साथियों को देखने लगीं। श्यामा ने चारों को अपने पास बैठा लिया। सुजाता बार-बार उन्हें ऊपर से नीचे तक निहारती रहीं।

चारों के चेहरों पर अजीब-सी शक्ति झलक रही थी। वे भी कभी श्यामा

की ओर, कभी गाँव की स्त्रियों की ओर देखकर मुस्करातीं। सबके मन में प्रसन्नता थी, पर होंठों पर हँसी नहीं थी, जैसे उस खुशी के पीछे अदम्य उत्साह, साहस और जोश लहर मार रहा हो। उनके चेहरे का विशेष आकर्षण सबको अपनी ओर खींच रहा था। जो स्त्रियाँ थोड़ी दूर खड़ी थीं, वे भी धीरे-धीरे पास आने लगीं।

श्यामा ने सुमित्रा से कहा- "सुमित्रा, ऐसे लोग आँगन में बार-बार नहीं आते। इन्हें कुछ खिलाए-पिलाए बिना मत जाने देना।"

श्यामा की बात सुनकर सुजाता उठीं और अपने घर से लाई हुई मद्रासी भुजिया की डिब्बी ले आईं। डिब्बा देखकर सितिया बोली- "बाबी, अभी खाकर आई हैं। ज़रा भी भूख नहीं है।"

उसी समय रामाकान्त ने चारों को बुलाने के लिए जुगेसर को आँगन भेजा। जुगेसर आकर सबको संदेश दे गया। उठकर चारों बच्चियों ने श्यामा के चरण छुए और विदा लेने लगीं।

आशीर्वाद देती हुई श्यामा बोलीं- "भगवान करे, मेरी आयु तुम्हें लग जाए। तुम्हारा जीवन हमेशा हँसी-खुशी से भरा रहे।"

चारों बच्चियाँ आँगन से निकलते ही बाक़ी लोग भी विदा हो गए।

समय बीतता गया। धूप की तपिश कम होने लगी। डॉक्टर महेंद्र ने जोखन से कहा- "अब रोगियों को यहाँ रखने की ज़रूरत नहीं है। घर पर ही सुबह-शाम बोएलाल जाकर सूइयाँ लगाता रहेगा। दवाइयाँ भी लगातार चलती रहेंगी। पंद्रह-बीस दिन में सब ठीक हो जाएँगे।"

इसके बाद सभी लोग लौट गए।

साँझ ढलते ही रामाकान्त और जुगेसर दरवाज़े पर बैठकर मद्रास की बातें करने लगे। मुस्कराते हुए जुगेसर बोला- "काका, एक बार फिर मद्रास चलिए।"

नाक सिकोड़ते हुए रामाकान्त बोले- "धत्त मूर्ख! वहाँ तो गाड़ियों में लोग मरते हैं। कैसी तंगहाली है वहाँ! न गाड़ियों-बसों में शांति है, न रास्तों में ठहरने का ठिकाना। सड़क पर चलो तो हर समय धक्का-मुक्की। कितना सुंदर है हमारा गाँव, जहाँ रास्ते की क्या बात, खेत-पथारों से होकर जहाँ मन हो वहाँ चले जाइए। न गाड़ियों की भीड़, न शोर-शराबा। जिससे मन हो, बातें कीजिए, कुशल-क्षेम

पूछ लीजिए। वहाँ तो मुँह से बोल ही नहीं निकलते। जैसे हम भी बेजुबान होकर रह जाते थे।"

व्यंग्य करते हुए जुगेसर बोला- "कैसे ठंडे घर में रहते थे। न नहाने के लिए कहीं जाना पड़ता था और न शौच के लिए।"

रामाकान्त हँसते हुए बोले- "धत्त पगले! अगर वहाँ दो महीने और रह जाते तो काहिल हो जाते। हर वक़्त उठने-बैठने में घुटन लगती थी। सच कहूँ, इतने दिन वहाँ रहे, पर न जी भरकर पानी पी सके, न ही कभी चैन से शौच कर पाए। जैसे हर दिन कब्ज ही रहता था। पानी मुँह में लगते ही मन बेचैन हो जाता था।"

फिर मुस्कराते हुए जुगेसर ने कहा- "अंगूर का रस पीने में कैसा लगता था! भूल गए क्या?"

अंगूर का रस सुनते ही रामाकान्त थोड़े स्थिर हो गए और बोले- "लोग कहते हैं कि अंगूर में बड़ी ताकत होती है, पर हमारे यहाँ जो केला, आम, बेल, लताम आदि हैं, उतनी ताकत अंगूर में कहाँ से आएगी? अंगूर से शराब बनती है, लेकिन हमारे भाँग का मुकाबला करेगी क्या? अंग्रेज़ी शराब सनसनी पैदा कर सिर पर चढ़ जाती है और फिर तुरंत उतर भी जाती है। मगर हमारी भाँग तो राजसी नशा है। न अपराध की सनक चढ़ाती है और न ही तनिक भर चिंता आने देती है।"

रामाकान्त और जुगेसर की बातचीत आँगन में खड़ी सुजाता भी सुन रही थीं। तभी हीरानन्द और शशिशेखर टहलते हुए वहाँ पहुँच गए।

दोनों को बैठते ही रामाकान्त ने हीरानन्द से कहा- "मास्साब, खेत का झंझट तो अब खत्म हो गया। बहुत अच्छा हुआ। एक बात बताइए, क्या जितने लोग गाँव में हैं, वे सब इस गाँव को अपना गाँव मानते हैं?"

हीरानन्द बोले- "हाँ, यह तो कोई नई बात नहीं है। आदिकाल से ऐसा कहा जाता रहा है और आगे भी कहा जाता रहेगा।"

"तो जब गाँव सबका है, तो गाँव की चीजें भी सबकी हुईं न?"

"यही थोड़ी-सी गड़बड़ है। हाँ, गड़बड़ यही है कि अब तक जो गाँव और समाज बनते-बनते तैयार हुए थे, वे अब टूटकर खंड-खंड हो गए हैं। इसलिए अब

एक-एक को जोड़कर समाज बनाना पड़ेगा, जो तुरंत तो संभव नहीं है।”

हीरानन्द बोल ही रहे थे कि उत्तर दिशा से सुबुध और दक्षिण दिशा से महेंद्र तथा बोएलाल भी वहाँ पहुँच गए।

रामाकान्त ने बोएलाल से कहा- “बोएलाल, अब तो तुम डॉक्टर बन गए हो, लेकिन यहाँ तुम सबसे छोटे ही हो। जाओ, चाय बना लाओ।”

‘डॉक्टर’ शब्द सुनकर महेंद्र और हीरानन्द मन ही मन प्रसन्न हो उठे, क्योंकि कभी बौएलाल ही उन्हें पढ़ाया करता था। मुस्कराते हुए बोएलाल चाय बनाने चला गया।

रामाकान्त ने सुबुध से कहा- “सुबुध, ज़मीन की व्यवस्था तो हो गई है, अब केवल पोखर की बात बाकी है। शशि जवान भी हैं, पढ़े-लिखे भी हैं और सक्षम भी। पोखर में मछली पाला करो।”

सुबुध बोले- “बहुत सुंदर विचार है आपका, काका। मैं भी यही सोच रहा था कि गाँव में तो केवल दो ही चीजें हैं, मिट्टी और पानी। इन दोनों का ऐसा उपयोग होना चाहिए, जैसे किसी व्यक्ति के पाँच बेटे हों तो उसका परिवार पाँच गुना बढ़ जाता है। वैसे ही खेत और पानी भी बढ़ें। अगर सही मेहनत और आधुनिक तरीके अपनाए जाएँ, तो ये भी मनुष्य की तरह पाँच गुना गति से क्यों न बढ़ें?

अगर हम इस रफ्तार को पकड़ लें, तो गाँव को प्रगति करने में देर थोड़े ही लगेगी। गाँव में बीस बीघे से ज़्यादा पानी है, जो बैसाख-जेठ की गर्मी में भी नहीं सूखता। बड़ा अकाल भी पड़ जाए, तो बोरिंग के सहारे फसल ली जा सकती है। लेकिन अभी तक सारे पोखर वैसे ही पड़े हैं, उन्हें किसी ने साफ़ नहीं किया। पूरा पोखर घास-फूस और कजली से भर गया है। न नहाने-धोने लायक है, न ही मछली या मखाना उत्पादन के योग्य।

जहाँ मछली और मखाना पैदा होना चाहिए, वहाँ के लोगों को वह न मिलना कितनी शर्म की बात है। इसका ज़िम्मेदार कौन है? क्या हम लोग नहीं हैं? बिल्कुल हैं। चाहे हम कितनी भी बहानेबाजी करें, सच्चाई यही है कि दोष हमारा है।

मैं देखता हूँ कि कुछ सम्पन्न परिवारों को मछली-मखाने की क्या बात,

और भी अच्छी-अच्छी चीजें आसानी से मिल जाती हैं। लेकिन विशाल जनसमूह की हालत क्या है? उन्हें केवल जितिया पर मछली मिलती है, और कोजगरा पर दो-चार मखाने दिख जाते हैं।

इसलिए इंसान को खुशहाल बनाने के लिए वस्तुओं की पर्याप्तता ज़रूरी है। जब तक चीज़ों की कमी रहेगी, तब तक खुशहाली कैसे आएगी?”

सुबुध बोल ही रहे थे कि बोएलाल चाय लेकर आ गया। चाय देखकर कोई कुल्ला करने लगा, कोई पान की पीक थूकने उठा। जुगेसर चाय बाँटने लगा।

एक घूँट चाय पीकर हीरानन्द ने महेंद्र से पूछा- “डॉक्टर साहब, कितने दिन की छुट्टी में आए हैं?”

यह सुनकर महेंद्र असमंजस में पड़ गए। मन ही मन सोचने लगे, चिट्ठी की बात कैसे करें? वह बात तो पूरी तरह झूठ निकली। अगर ज़्यादा छुट्टी बताऊँ, तो वह भी झूठ होगा। दरअसल, मैं जल्दबाज़ी में ही चला आया। अब क्या कहूँ, क्या न कहूँ?

महेंद्र एक अजीब स्थिति में फँस गए थे।

तभी बीच में जुगेसर बोल पड़ा- “अरे मास्साब, डॉक्टर साहब तो अब बहुत ऊँचाई पर पहुँच चुके हैं। किसी चीज़ की कमी नहीं है। जब अपने गाड़ी में घुमाते थे, तो लगता था मानो इन्द्रासन पर बैठे हों।”

जुगेसर की बात ने हीरानन्द की जिज्ञासा को वहीं दबा दिया। वे मन ही मन सोचने लगे कि शायद महेंद्र अपने पिता के कारण ही बिना बताए गाँव चले आए हैं।

सभी ने चाय पीकर अपने-अपने ग्लास बोएलाल को थमा दिए। सारे ग्लास लेकर बोएलाल आँगन के कुएँ की ओर चला गया।

इसी बीच सुबुध ने महेंद्र से कहा- “महेंद्र भाई, गाँव के लोगों का शरीर देखकर क्या लगता है? क्या आपको नहीं लगता कि कोई-न-कोई बीमारी सबको दबाए हुए है? इसलिए सबकी जाँच करके इलाज कर दीजिए।”

सुबुध का प्रश्न सुनकर महेंद्र चौंक गए। बोले- “मेरा भी यही विचार है।

चार-पाँच दिन तो जाँच में ही लग जाएँगे। सबकी जाँच करके जहाँ तक संभव होगा, वहाँ तक इलाज भी कर दूँगा। आज तो पूरा दिन दूसरी उलझनों में बीत गया, लेकिन कल से इसी काम में लग जाऊँगा।"

तभी शशिशेखर ने पूछा- "डॉक्टर साहब, बुजुर्ग जो अपनी सारी ज़मीन बाँट दिए, उसमें आपको...?"

शशिशेखर की बात सुनकर महेंद्र मुस्कराते हुए बोले- "हम दो भाई हैं। पिताजी ने दोनों को डॉक्टर बना दिया। इससे अधिक कोई पिता अपने पुत्र के लिए क्या कर सकता है? ज़मीन की बात है, मैं थोड़े ही खेती करने आऊँगा! तब तो जो खेती करने वाले हैं, अगर ज़मीन उनके हाथ में गई, तो इससे उचित क्या होगा? पिताजी की अर्जित ज़मीन है, मालिक वही हैं। अगर वे अपनी संपत्ति दान में दे दें, तो मुझे उसमें क्या आपत्ति हो सकती है?

वैसे भी वैरागी पुरुष को आसक्ति में बाँधना पाप है।"

पुनः शशिशेखर ने पूछा- "मद्रास में कैसा लगता है?"

महेंद्र जैसे कुछ याद करने लगे। थोड़ी देर चुप रहने के बाद गहरी साँस लेकर बोले- "जब डॉक्टरी की शिक्षा मिली, तो अच्छा लगा और मद्रास चला गया। लेकिन अब गाँव का स्नेह मेरे हृदय को इस तरह पकड़ चुका है कि क्या कहूँ। जैसे छाती में धँसे तीर से कोई पक्षी तड़पता है, वैसे ही समझिए कि मैं तड़प रहा हूँ।

मन होता है कि मद्रास की सारी चीजें छोड़-छाड़कर यहीं रहूँ। लेकिन सवाल यह है कि जीवन की लीला कहाँ से शुरू की जाए। यही एक गंभीर प्रश्न है। इसी प्रश्न में मन उलझा हुआ है। स्पष्ट उत्तर नहीं मिल पा रहा, क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर दृष्टिकोण के अनुसार बदलता रहता है।" ❑

14.

गाँव में यह खबर फैल गई कि बीमारों की जाँच कर दवा दी जाएगी। अगली सुबह से हर टोले के रोगियों की बारी-बारी से जाँच होगी और दवा भी दी जाएगी।

सुबह होते ही वे टोले के लोग आने लगे, जिनकी बारी थी। पुरुषों की जाँच डॉक्टर महेन्द्र करते थे, और स्त्रियों की डॉक्टर सुजाता। डॉक्टर महेन्द्र के सहयोगी बौएलाल थे, और सुजाता की सहयोगी सुमित्रा।

तीन दिनों में पूरे गाँव के रोगियों की जाँच पूरी हो गई और दवाएँ बाँट दी गईं। गाँव में खुशी इस तरह फैल गई, मानो बीमारी पूरी तरह भाग गई हो। सबके मन की प्रसन्नता एक रंगीन छवि बनकर नाचने लगी। हर किसी को लगा, अब न शरीर में कोई रोग है, न मृत्यु का डर। यह खुशी ऐसी थी, जैसे बीमारी डर के मारे सामने आते ही भाग गई हो।

लेकिन ज़िंदगी में सिर्फ यही एक बीमारी थोड़े होती है। और भी न जाने कितनी बीमारियाँ होती हैं। यह तो बस मन की तसल्ली है। पर अगर यह सिर्फ मन की बात है, तो सच्चाई क्या है, यह जानने के लिए लोगों के बीच जाकर देखना होगा।

हमेशा बीमार दिखने वाला भलेसरा भी अब खेत की ओर बड़े टोकरे में गोबर लिए जाते देखा गया। उसने तो काम-काज तक छोड़ दिया था, लेकिन आज उसे चलते देखकर रास्ते में सोनमा ने पूछा- “अब कैसा लग रहा है?"

भलेसरा बोला- “अब शरीर में कोई पीड़ा नहीं है। जा रहा हूँ राख फेंकने और गरमा धान काटकर लाने।”

इसी तरह तेतरा भी बाँस की बहंगी में दो गठ्ठर धान कंधे पर लादे आ रहा था। सोनमा के मन में खुशी और हैरानी एक साथ उमड़ने लगी। यह सब कैसे हो गया? वह सोचने लगी, लहेरियासराय अस्पताल में तो लोग छह-छह महीने तक

लोहे की खाट पर पड़े रहते हैं। इंजेक्शन भी लगते हैं, दवा-गोली भी खाते हैं, फिर भी मर जाते हैं। लेकिन इस गाँव में रोगियों का दर्द इतनी आसानी से कैसे मिट गया?

अजीब लगा। शायद यही समझ नहीं आता कि असल में दुख किसे कहते हैं। विचारों में डूबी सोनमा के मन में उठा कि जब समझ में ही नहीं आता, तो समझे कैसे? अगर खुद से सोचने लगो और सोच ही गलत हो जाए, तो गलत ही समझोगे। गलत समझना और न समझना, दोनों एक ही बात हुई। बिना समझे भी लोग काम करते जाते हैं और गलतियाँ करते ही रहते हैं। भले ही दोनों के फल अधूरे हों, लेकिन कर्म तो होते ही हैं। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? जिसे बुद्धिमान मानते हैं, अगर वह भी न समझे और झूठ-मूठ कुछ भी कह दे, तो उलझन और बढ़ेगी। यहाँ तक कि जो सचमुच जानकार है, उससे पूछो और वह भी गलती से गलत कह दे, तब भी वही स्थिति बनी रहेगी। लेकिन इसमें एक बात जरूर है, वह कहे और हम करें, और यदि उसका फल गलत निकले, तो दोषी कौन होगा? तब क्या करना चाहिए?

अब उम्र भी नहीं है कि स्कूल जाकर पढ़ सकें। बच्चे तो सब स्कूल में पढ़ रहे हैं। सोचते-सोचते सोनमा के मन में उठा कि जब स्कूल जाते थे, तब क्यों न पढ़े? पढ़ाई तो की थी, स्कूल में नाम भी लिखा था। पाँचवीं कक्षा तक तो पढ़े भी। फिर क्यों छोड़ दिया? क्या खुद छोड़ दिए या मास्टर ने मार-पीट कर भगा दिया? मास्टर ने मारकर क्यों निकाला? जब छठी कक्षा में पहुँचे और अंग्रेज़ी मास्टर पढ़ाने आए कि But 'बट' और Put 'पुट', तभी तो कहे थे कि आप गलती पढ़ा रहे हैं। वह तो कोई गलती नहीं कहा था। जब गलती नहीं कहा था, तो उसने मारा क्यों? अगर पढ़ाने का मन न था, तो साफ कह देता कि तुम्हें नहीं पढ़ाएँगे, स्कूल से चले जाओ। मारा क्यों? अगर मार ही दिया, तो कम से कम मेरे मन को समझा देता। मन मान लेता, बात वहीं खत्म हो जाती। लेकिन उसने तो ऐसा नहीं किया। इसी से मैं मूर्ख रह गया। वरना क्या मेरे हाथ-पाँव में कोई कमी है कि दरोगा नहीं बन सकी? मेरी जो दरोगाई की नौकरी छिन गई, वह मास्टर देगा जिसने मारकर स्कूल छुड़वा दिया? बच्चों में भी वही हाल हुआ। चेतन में भी वैसा ही देख रहा हूँ। अब कैसे जियूँ?

तर्क-वितर्क करते हुए सोनमा के मन में शंका उठी कि शायद कहीं मैं भी

तो किसी झूठे दुख में फँस तो नहीं गया हूँ! लेकिन किससे पूछूँ, कौन बताएगा? सबको तो वही दिखाई देता है।

क्या मैं सारी जिंदगी हल ही जोतती रहूँगा? घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने कब जाऊँगा?

दोनों हाथ सिर पर रखे, सोनमा पेड़ के नीचे बैठकर सोच-विचार में डूबा रहा। उसने मन ही मन सोचा कि जिस तरह आम का पेड़ लगाया जाता है, उसी तरह खैर और बबूल का पेड़ भी लगाया जाता है। लेकिन आम पर मीठे फल लगते हैं और खैर-बबूल पर काँटे। जबकि लगाने की प्रक्रिया तो एक ही होती है। वैसे भी, अनेरूआ (वनजन्मा) पेड़ तो होते ही हैं। आम का पेड़ भी अनेरू होता है और खैर-बबूल भी।

सात दिन की छुट्टी में महेन्द्र गाँव आए थे, और अब आठ दिन बीत चुके थे। मद्रास आने-जाने में भी पाँच दिन लगते हैं। छुट्टी बढ़ानी पड़ेगी। कल सुबह की गाड़ी से चल देंगे, यह बात सुबुध को मालूम थी। इसलिए सुबुध के मन में आया कि महेन्द्र बचपन के मित्र हैं, पर अब तक पूरी तरह मन खोलकर बातचीत एक दिन भी नहीं हो पाई। कल सुबह ही वे चले जाएँगे, इसलिए आज ही पूरा समय है। सुबुध ने अपने सारे काम छोड़कर महेन्द्र से बातचीत करने का निश्चय किया।

दरवाज़े पर बैठे डॉ. महेन्द्र अपने पिता से कह रहे थे- "बाबू, गाँव के जितने भी मरीज़ों की जाँच की, उनमें कोई भी बड़ा रोग, जैसे टीबी, कैंसर, एड्स आदि—से ग्रस्त नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि जो बीमारियाँ शहर-बाजारों में धड़ल्ले से फैलती हैं, उनका नामोनिशान गाँव में नहीं है। यह बड़ी खुशी की बात है।"

महेंद्र की रिपोर्ट सुबुध ने भी सुनी। 'खुशी की बात' सुनकर रामाकान्त ने पूछा- "तो फिर इतने लोग बीमार हैं, वे किस रोग से ग्रस्त हैं?"

मुस्कराते हुए महेन्द्र बोले- "साधारण रोग। जो बिना दवा-दारू के भी ठीक हो सकते हैं। अगर उनका खान-पान सुधर जाए, तो ये सारे रोग नहीं होंगे। आधे से अधिक मरीज तो ऐसे हैं, जिन्हें कोई रोग ही नहीं है, केवल शंका है। लेकिन यदि उन्हें दो-चार गोली न दी जाए, तो उनका मन शांत नहीं होता। इसलिए

मैंने पर्ची बना दी, साथ ही उनका छाती भी जाँच लिया और कुछ गोलियाँ दे दीं।”

महेंद्र की बात सुनकर रामाकान्त और सुबुध मन ही मन हँसने लगे। हँसी रोककर सुबुध ने महेन्द्र से कहा- “महेन्द्र भाई, कल तो तुम चले जाओगे, फिर मुलाकात कब होगी कुछ पता नहीं। इसलिए तुमसे बातचीत करने के लिए मैंने अपने सारे काम छोड़ दिए हैं। ज़िंदगी के तो ढेरों विषय हैं, लेकिन तुम डॉक्टर हो और मैं शिक्षक था, जो अब नहीं हूँ। पर रोगों के कारण समझने की जिज्ञासा अवश्य है। इसलिए अभी मैं रोग के विषय में कुछ जानना चाहता हूँ।”

“क्या?”

“पहला सवाल है पागलपन के बारे में। जब लोगों की ओर देखता हूँ, तो लगता है कि जितने भी मनुष्य हैं, सब किसी न किसी रूप में पागल हैं।”

चौंककर रामाकान्त ने बीच में ही पूछा- “वह कैसे?”

सुबुध ने कहा- “काका, जो लोग बड़े-बड़े प्रशासक होते हैं, जो एक इलाके से लेकर पूरे देश का शासन सुचारु रूप से चला लेते हैं, वही अपने परिवार के छोटे-से शासन में उलझ जाते हैं। उसी तरह देखते हैं कि बड़े-बड़े गणितज्ञ जीवन के हिसाब-किताब में असफल हो जाते हैं। बड़े इंजीनियर परिवार का नक्शा बनाने में चूक जाते हैं। नेताओं की तो बात ही छोड़ दीजिए। वे तो वैसे ही हैं, जैसे कभी-कभी मानसून जल्दी उतर जाए और खूब बरस जाए, तो मेंढ़कों की बाढ़ आ जाती है।”

मुस्कराते हुए रामाकान्त बोले- “हाँ, ठीक ही कहते हो।”

“इतना ही नहीं, काका। कोई ताड़ी-दारू के पीछे पागल है, तो कोई धन के पीछे। कोई पढ़ाई के पीछे बताह है, तो कोई ऐशो-आराम के पीछे। कोई खाने के पीछे, तो कोई पहनने-ओढ़ने के पीछे। कोई काम के पीछे पागल है, तो कोई आराम के पीछे। किसी को खेल-कूद का पागलपन है, तो किसी को नाच-तमाशे का। इतने तरह के पागलों का इलाज कहाँ होगा?

इतना ही नहीं, एक प्रकार का पागल दूसरे को पागल कहता है, और दूसरा तीसरे को। इसी तरह, कोई शरीर के रोग से दुखी है तो वह रोगी कहलाता है, कोई अन्न के अभाव से दुखी है, कोई वस्त्र या घर के अभाव से। कोई तो किसी अनुचित बात को सुनकर ही दुखी हो जाता है।

इस दृष्टि से देखा जाए, तो कितने लोग सचमुच निरोग हैं? इतना ही नहीं, अगर हर व्यक्ति के भीतर झाँकें, तो उसमें कई-कई रोग मिलेंगे। लेकिन यह सब ऊपरी बातें हुईं। मूल प्रश्न तो यह है कि जीवन वसंत ऋतु के गुलाब की तरह हर दिन कैसे खिलता रहे?”

“गुलाब के फूल की तरह जीवन हर दिन कैसे खिले” -यह सुनकर डॉक्टर महेन्द्र ने गहरी साँस छोड़ी। उन्होंने आँखें उठाकर सुबुध की आँखों में देखा। नजर मिलते ही जैसे महेन्द्र को अनुभव हुआ कि सुबुध तो जैसे किसी अथाह समुद्र में डूबे हुए हैं, और वे स्वयं एक छोटे-से तालाब में ऊपर-नीचे हो रहे हैं।

यह विचार आते ही महेन्द्र की दृष्टि अपने माता-पिता, भाइयों और बच्चों की ओर दौड़ गई। कितनी आशा के साथ पिताजी ने हम दोनों भाइयों को पढ़ाया, लेकिन हम उनसे कितनी दूर हटकर रह रहे हैं। इतनी दूरी बनाकर रहते हुए हम उनकी सेवा कैसे कर पाएँगे? अब उन्हें सेवा की ज़रूरत दिन-ब-दिन बढ़ती जाएगी। उम्र भी अधिक हो गई है, और आगे और बढ़ेगी। जैसे-जैसे उम्र बढ़ेगी, वैसे-वैसे शरीर के अंग कमजोर होते जाएँगे। और जैसे अंग कमजोर होंगे, शरीर की क्रियाओं में रुकावट आएगी, जिससे तरह-तरह की बीमारियाँ शरीर में प्रवेश करेंगी। जितनी बीमारियाँ बढ़ेंगी, उतनी ही पीड़ाएँ बढ़ेंगी। क्या उन पीड़ाओं के लिए हम ज़िम्मेदार नहीं होंगे? होंगे। लेकिन तब करेंगे क्या? शायद कुछ भी नहीं।

अभी तो हम दोनों भाई और हमारी पत्नियाँ जवान हैं, लेकिन कुछ वर्षों बाद हम भी इन्हीं की तरह बूढ़े हो जाएँगे। यह आवश्यक नहीं कि हमारे बेटे भी हमारे पास रहेंगे। अभी तो हम देश में ही हैं, फर्क बस इतना है कि देश के एक छोर पर माता-पिता रहते हैं और दूसरे छोर पर हम। लेकिन आजकल जो हवा चल रही है कि लोग विदेश जाकर बस जाते हैं, अगर ऐसा ही हमारे साथ हुआ तो क्या होगा?

महेन्द्र का चेहरा उदास हो गया। भीतर ही भीतर उनका मन घबराने लगा, जैसे वे किसी सुनसान जंगल में भटक गए हों और वहाँ डर महसूस करने लगे हों। शरीर से पसीना निकलने लगा। कुछ देर बाद उन्हें लगा कि शरीर निर्बल हो रहा है।

पसीने से भीगे हुए महेन्द्र ने सुबुध से कहा- “सुबुध भाई, जीवन का अजीब रास्ता है। जितने भी मनुष्य इस धरती पर जन्म लेते हैं, उन्हें जीवन बिताना ही पड़ता है। लेकिन जीवन का मार्ग इतना टेढ़ा-मेढ़ा है कि बहुत कम लोग ही उसे समझ पाते हैं। बाकी सब अधूरे ही रह जाते हैं।”

मुस्कुराते हुए सुबुध बोले- “महेन्द्र भाई, आप तो डॉक्टर हैं। पढ़े-लिखे लोगों के बीच ही रहते हैं। फिर भी आप ऐसी बात क्यों कह रहे हैं? जब तक मैं अध्यापन करता रहा, तब तक बच्चों को पढ़ाता रहा। और जब नौकरी छोड़ गाँव में रहने लगा, तब से समाज को जैसे देख रहा हूँ, वैसा ही सोच रहा हूँ।”

महेंद्र बोले- “भाई, आपने जो कहा, वह तो आँखों के सामने जरूर है। लेकिन आपमें मनुष्य को पहचानने की कला और जीवन जीने का ज्ञान अवश्य है। आप खुद को छिपा रहे हैं।”

महेंद्र की बात सुनकर रामाकान्त के मन में विचार आया कि जो आदमी घर से हजारों कोस दूर जाकर कमा कर इतना कुछ बना चुका है, वह खुद को इतना कमजोर क्यों समझ रहा है। लेकिन दोनों मित्रों की बातचीत में हस्तक्षेप न करते हुए रामाकान्त चुप ही रहे। बैठे-बैठे कभी महेन्द्र की ओर देखते और कभी सुबुध की ओर।

‘खुद को छिपा रहे हैं’ -यह सुनकर सुबुध बोले- “महेंद्र भाई, जिस प्रश्न में आप उलझे हैं, वह प्रश्न इतना उलझा हुआ भी नहीं है, लेकिन आसान भी नहीं है। केवल आँखों में ज्योति लाकर देख-देखकर चलने की ज़रूरत है।”

आँगन की ओर की भीतरी कोठरी में बैठी सुजाता खिड़की से सबको देख भी रही थीं और उनकी बातचीत भी सुन रही थीं। उनके मन में कभी प्रसन्नता आती और कभी कसक। लेकिन वे कुछ बोलती नहीं थीं। बोलना उचित भी नहीं लगता था। हालाँकि पढ़ी-लिखी होने के कारण कभी-कभी बोलने का मन अवश्य होता था। पर कुछ ही दिनों में सास ने मिथिला की रीति-नीति और व्यवहार के बारे में इस तरह समझा दिया कि “मद्रास की सुजाता” अब “मिथिला की सुजाता” बन गईं।

इस कारण मुँह पर कपड़ा रखना तो उन्हें उचित नहीं लगता था, पर बोलचाल पर निगरानी अवश्य रखने लगीं, किससे किस प्रकार बोलना है, कितनी

आवाज़ में बोलना है, कौन-से शब्दों का प्रयोग करना है, इन सब बातों पर वे ध्यान देने लगीं। जिससे उनकी वाणी संयमित हो गई थी। हालाँकि यहाँ के तौर-तरीकों को उन्होंने अब तक पूरी तरह स्वीकार नहीं किया था, लेकिन उन्हें अपनाने का पूरा प्रयास अवश्य कर रही थीं।

सुबुध की ऊटपटाँग बातों से महेंद्र को दुख नहीं होता था। वे हल्की-सी बात में भी गहरे अर्थ तलाशने लगते थे।

महेंद्र की गंभीर मुद्रा देखकर सुबुध समझ गए कि वे अब जीवन की गंभीर बातों को समझने के लिए तैयार हैं। इसलिए उन पर खुलकर बात करना उचित होगा।

वे बोले- “महेंद्र भाई, हमारे गाँव में तुम्हारा परिवार सबसे अग्रणी है, चाहे वह धन-संपत्ति की बात हो या शिक्षा की। लेकिन सोचकर देखो, इतनी संपत्ति होने के बावजूद तुम घर से हजारों कोस दूर रह रहे हो। तुम ही बताओ, कितनी संपत्ति होने पर संतोष मिलेगा?”

पर इस प्रश्न का दूसरा पक्ष भी है, और वह है ‘विश्व-बन्धुत्व’ का विचार। यहाँ के महान चिंतकों ने इस विचार को केवल स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि उसे साकार करने का प्रयत्न भी किया। सैद्धान्तिक रूप से यह विचार अत्यंत महान है, पर व्यवहार में उतारना उतना आसान नहीं।

लोग अपने गाँव या दूसरे गाँव के देवस्थान में दीप जलाते हैं। अर्थात, शाम ढलने से पहले अपने घर के देवस्थान पर दीपक जलाना न केवल उचित है, बल्कि यह एक गहरे और गंभीर विचार का संकेत भी है। इसी प्रकार जीवन की शुरुआत हर किसी को अपने आप से करनी चाहिए। स्वयं से आगे बढ़ते हुए समाज, फिर क्षेत्र और फिर देश-दुनिया की ओर निरंतर बढ़ना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार और समाज को छोड़कर सीधे दुनिया सुधारने में लग जाए, तो कहीं न कहीं असंतुलन उत्पन्न होगा।

दुनिया में जितने समस्याग्रस्त लोग हैं, उतने ही समस्याओं का सामना करने वाले लोग भी हैं। एक अकेले व्यक्ति के प्रयास से दुनिया की सभी समस्याएँ समाप्त नहीं हो सकतीं। इसलिए, जहाँ भी जन्म हुआ है, वहाँ ईमानदारी और मेहनत से कर्म करना ही सबसे बड़ा कर्तव्य है।”

सुबुध की बात सुनकर महेन्द्र बोले- “हाँ, यह दायित्व तो हर मनुष्य का है।”

सुबुध ने आगे कहा- “जब यह दायित्व सभी मनुष्यों का है, तो अपने गाँव को देखो। इस साल जब सबको खेत मिला, तब थोड़ी-बहुत खुशहाली आई। पर इससे पहले स्थिति यह थी कि न सबको पेट भर भोजन मिलता था, न पर्याप्त वस्त्र, न ही सुरक्षित घर। आज भी यह स्थिति पूरी तरह सुधरी नहीं है और न ही रोगों से बचने के उपाय बने हैं।”

बीच में डॉक्टर महेन्द्र ने कहा- “हाँ, यह तो सच है।”

सुबुध बोले- “अब सोचो, हमारा और तुम्हारा जन्म इसी समाज में हुआ है। क्या हम इतने कमजोर हैं कि गाँव छोड़कर भाग जाएँ? यानी जहाँ पेट भरता हो, वहीं चले जाएँ? यदि कोई अपने गाँव और समाज को छोड़कर दूर चला जाता है, तो उसे कायर या कामचोर ही कहा जाएगा। फिर भी लोग क्यों जाते हैं? इसके पीछे कारण हैं, ज्यादा धन कमाना और कम मेहनत में जीवन जीना। पर आसान जीवन उतना ही संभव है, जितना कि देश को मेहनत से समृद्ध बनाने का प्रयास किया जाए।

अगर केवल कुछ लोग समृद्ध हो जाएँ और उसी को देश की समृद्धि मान लिया जाए, तो यह सोच अंततः गुलामी की ओर ले जाएगी।”

“कोई देश अपने आप गुलाम नहीं होता, उसके लोग ही उसे गुलाम बनाते हैं, और उनकी जीवन-क्रियाएँ ही गुलाम हो जाती हैं। आज पैसा कमाने का मोह इस तरह फैल गया है, जैसे हम पोखर में थोड़ा पानी डालकर बंसी से बड़ी मछली फँसाने की कोशिश करते हैं। उसी तरह लोग भी लालच में आकर आसानी से फँस जाते हैं। यही स्थिति आज के समाज में दिखाई दे रही है।”

सुबुध के इन विचारों को महेन्द्र ने सिर हिलाकर स्वीकार तो किया, लेकिन उनके मन में संदेह अब भी बना रहा। उनके चेहरे के भाव पढ़कर सुबुध ने बात आगे बढ़ाई।

“महेन्द्र, अपने यहाँ की दशा देखो। जिन्हें हम ‘क्रीम ब्रेन’ कहते हैं, जैसे वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, वे दूसरे देशों में जाकर अपनी बुद्धि बेच देते हैं। भले ही वे अधिक धन कमा लें, लेकिन वह धन उन्हीं अमीर देशों को और भी

अमीर बनाता है। वे देश इसी धन से नए-नए हथियार और मशीनें बनाते हैं, जिनसे पिछड़े देशों पर हमला करते हैं या अपने माल बेचकर उन्हें और पीछे धकेल देते हैं।

कभी-कभी यह सवाल उठता है कि जब हमारे देश में पर्याप्त साधन नहीं हैं कि ये लोग अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकें, तो वे उसे उपयोग में लाने के लिए बाहर क्यों न जाएँ? पर मुझे लगता है, इस तर्क में कोई दम नहीं है। दुनिया का इतिहास यही बताता है कि सम्पन्न देश हमेशा कमजोर देशों को लूटते रहे हैं, चाहे युद्ध के माध्यम से हो या व्यापार के माध्यम से। जिस देश के पास जितने अधिक साधन होते हैं, वे अंततः लूट लिए जाते हैं। और जब सब कुछ लुट जाएगा, तो फिर कोई देश आगे कैसे बढ़ेगा?"

सिर झुकाते हुए महेन्द्र बोले- "तो फिर क्या करना चाहिए?"

सुबुध ने कहा- "जरा आँख उठाकर देखो, क्या दुनिया में कोई बिना ए-बी-सी पढ़े विद्वान बन सका है या बन सकता है? अगर नहीं, तो पिछड़े देश या पिछड़े लोग बिना कठिन परिश्रम किए कैसे आगे बढ़ सकते हैं? इसलिए पिछड़े देशों के लोगों को यह बात समझनी ही होगी।

अगर वे यह नहीं समझेंगे और केवल आगे बढ़े लोगों का अंधानुकरण करेंगे, तो वे गुलामी के रास्ते पर ही चढ़ते जाएँगे। सोचो, यह कितनी शर्म की बात है कि हम अपने ही बनाए हथियारों से घायल हो रहे हैं। अब चलो, दूसरी ओर चलते हैं।"

डॉक्टर महेन्द्र के चेहरे की ओर देखते हुए सुबुध फिर बोले- "हमारे यहाँ जो पारिवारिक ढाँचा आरंभ से चला आ रहा है, वह दुनिया में सबसे अच्छा रहा है। आज की सोच में पूरी दुनिया फिर से परिवारवाद की ओर लौट रही है, जो हमारे संयुक्त परिवार की धरोहर है।

जीवन को देखो, तो तीन अवस्थाएँ निश्चित हैं: बचपन, जवानी और बुढ़ापा। इनमें बचपन और बुढ़ापा ऐसी अवस्थाएँ हैं, जब हर किसी को दूसरों की मदद की ज़रूरत पड़ती है, और यह सहायता अकेले परिवार में संभव ही नहीं है। आज जो एकल परिवार बन गए हैं, उनका हाल कुम्हार की चाक जैसा है, जो अधिक दिन तक स्थिर नहीं रह सकती। यही हाल एकल परिवार का भी है।

माता-पिता कहीं, बेटे-बहू कहीं और बेटियाँ-पुत्र कहीं और रह रहे हैं। मानवीय स्नेह जैसे निरर्थक हो गया है और सब निश्चिंत हैं। सब जानते हैं कि मनुष्य मिट्टी के बर्तन जैसा है। कब क्या हो जाएगा, इसकी कोई गारंटी नहीं। स्वस्थ अवस्था में तो आदमी कहीं भी रह सकता है, पर जब वह बीमार और लाचार हो जाता है, तब अकेला जीवन अत्यंत कष्टकर हो जाता है। इस पर तुम्हें भी सोचना होगा।"

सुबुध के विचारों ने महेन्द्र को भीतर तक झकझोर दिया। उनके शरीर में कंपन होने लगा, आवाज थरथराने लगी। कुछ देर तक वे स्थिर रहे, फिर धीरे-धीरे मन को स्थिर किया। मन स्थिर होते ही महेन्द्र बोले-

"सुबुध भाई, भले ही हमने हाई स्कूल तक साथ-साथ पढ़ाई की, पर जीवन को जितनी गहराई से आपने पहचाना, उतनी मैं नहीं पहचान सका। सच कहूँ तो आज तक मैं आपको केवल साधारण हाई स्कूल का शिक्षक ही मानता रहा। पर यह मेरा भ्रम था। संग-साथ रहते हुए भी आप मेरे गुरु हैं।

कई बार जब अकेला होता हूँ, सोचता हूँ कि इतनी कमाई है, फिर भी दिन-रात खटते-खटते बेचैन क्यों रहता हूँ? कभी चैन क्यों नहीं मिलता? किस सुख के पीछे इस तरह बेहाल हूँ, यह समझ ही नहीं पा रहा हूँ। घर में टीवी है, पर देखने का समय नहीं मिलता। खाने के लिए बैठता हूँ, तो पक्षी की तरह दो-चार कौर खाकर ही मन उड़ जाता है कि फलाँ को समय दिया है या नहीं। नहीं गया तो आमदनी कम हो जाएगी। यही हाल नींद का भी है।

इतनी परेशानी से मिलता क्या है? केवल पैसा। क्या पैसा ही जीवन है?"

महेन्द्र के बदले विचार सुनकर मुस्कुराते हुए सुबुध ने कहा- "भाई, पैसा जीवन चलाने का साधन भर है, जीवन नहीं। पैसों के भीतर इतनी बड़ी बुराई छिपी है कि यह मनुष्य को कुकर्मी बना देता है। और जब वह कुकर्मी बनता है, तो सबसे पहले उसका मनुष्यत्व समाप्त हो जाता है। इससे उसकी पहचान भी मिट जाती है और आपराधिक वृत्तियाँ उसमें पनपने लगती हैं।

अपराधी वृत्ति आते ही मनुष्य बड़े से बड़े अपराध की ओर धकेला जाता है। इसलिए अपने जीवन को देखते हुए परिवार और समाज का जीवन देखना ही सच्चा जीवन है। मनुष्य को हर समय सेवा के लिए तत्पर रहना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, उतना करना ही चाहिए।

लेकिन कर्म की दुनिया बहुत कठिन है। इतनी कठिन कि कर्मठ से कर्मठ लोग भी बीच राह में थक जाते हैं। पर वह थकना हारना नहीं होता, बल्कि वही असली जीत है। जिस समाज रूपी वृक्ष को सूखा दिया गया है, उसकी जड़ों में पानी देकर नई जान डालनी है, ताकि वह निरंतर फूलता-फलता रहे। इस काम के लिए हमें अपने आपको समर्पित कर देना चाहिए।"

सुबुध के दृढ़ विचारों से महेन्द्र का मनोबल बढ़ने लगा। उनके चेहरे पर तेज चमकने लगा और स्वर में दृढ़ता आ गई। उन्होंने पिता और सुबुध से कहा- "आप दोनों से कह रहा हूँ कि साल का कोई दिन ऐसा नहीं होगा जब हम चारों में से कोई न कोई गाँव में न रहेगा। वैसे मद्रास में भी अब बहुत काम हो गया है, उसे पूरी तरह छोड़ना सही नहीं होगा। लेकिन परिवार और समाज को भी नहीं छोड़ूँगा। मद्रास की कमाई परिवार और समाज में लगाऊँगा। अभी अनुभव भले ही कम है, पर मेरी इच्छा है कि समाज में जो भी बीमारी है, उसे दूर करने के लिए जितना खर्च होगा, उतना पूरा करूँगा। जैसे पिताजी ने समाज को खाने का सहारा दिया, वैसे ही मैं स्वस्थ समाज के लिए सेवा में लग जाऊँगा। समाज को कह दीजिए कि जिसे भी कोई रोग या बीमारी हो, वह आँख मूँदकर यहाँ चला आए। उसका इलाज ज़रूर होगा। इस बार बिना तैयारी के गाँव आया हूँ, इसलिए कुछ लाया नहीं। लेकिन कह रहा हूँ कि जहाँ तक जाँच के औजारों का इंतज़ाम हो सकेगा, वह मैं मद्रास से भेज दूँगा। फिलहाल, अभी भावो गाँव में ही रहेगी। बौएलाल और सुमित्रा भी यहीं रहेंगे। अब जब आऊँगा तो लंबे समय के लिए आऊँगा। और यहाँ आकर अधिक से अधिक लोगों को चिकित्सकीय ज्ञान दूँगा और गाँव से रोगों को मिटा दूँगा। समाज मेरा है और मैं समाज का हूँ।"

❑❑❑
❑❑
❑

Notes